माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्तिगण

धनी राम महतो

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (पी॰ आई॰ एल॰) सं॰ 1235 वर्ष 2008. 20 अगस्त, 2009 को विनिश्चित।

लोक हित वाद—खनन गतिविधियों को रोकने की प्रार्थना जब कि पट्टे की अवधि समाप्त नहीं हुई हो—यह अभिवाक् कि प्रश्नगत क्षेत्र में खनन गतिविधि गाँववालों के जान-माल को खतरे में डाल सकता है एवं बाढ़ में परिणामित होगा क्योंकि प्रश्नगत प्लॉट नदी के तट पर स्थित है—अभिनिर्धारित, पट्टेधारी को जनता की गंभीर स्वास्थ्य समस्यायों की कीमत पर पट्टे के निबंधनों में खनन गतिविधि को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(पैरा 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.—M/s. M. K. Dey, For the Petitioner; Mr. Manish Kumar, For the Respondents.

आदेश

पक्षकारों को सुना।

2. प्रत्यर्थी सं॰ 7 को दस वर्षों के लिए पट्टे पर दी गयी रंगडुंगरी, समरम के प्लॉट सं॰ 787 एवं 807 के पत्थर खनन के पट्टे को एवं प्रत्यर्थी सं॰ 6 को पट्टे पर दी गयी छह एकड़ माप के उपरोक्त प्लॉट के एक भाग पर दिए गए पट्टे को अन्य के साथ-साथ इस आधार पर रद्द करने की प्रार्थना करते हुए लोक हित वाद के माध्यम से यह रिट याचिका दाखिल की गयी है कि उस क्षेत्र में किसी भी प्रकार की खनन गतिविधि बाढ़ के फलस्वरूप ग्रामीणों के जान-माल को खतरे में डाल सकती है क्योंकि प्रश्नगत प्लॉट करखई नदी के तट पर स्थित है।

3. तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा उपलब्ध कराये गए रिपोर्ट एवं प्रति-शपथपत्र में अपनाये गए दृष्टिकोण पर विचार करने के उपरांत, इस न्यायालय ने दिनांक 7.5.2009 के आदेश के द्वारा तकनीकी विशेषज्ञ जो कि मात्र कनीय अभियंता थे। द्वारा पेश रिपोर्ट की सत्यता को सत्यापित करने के लिए उस क्षेत्र के मुख्य अभियंता, जल संसाधन विभाग सहित सरायकेला-खरसवा के जिला न्यायाधीश को निर्देश दिया था। यहाँ पर यह वर्णन करना उपयोगी है कि तकनीकी विशेषज्ञ ने जो कि कनीय अभियंता है, अपनी रिपोर्ट में वर्णन किया कि खनन गतिविधि प्रश्नगत गाँव में नदी से बाढ़ उत्पन्न नहीं करेगा। जिला न्यायाधीश, सरायकेला-खरसवा द्वारा पेश इस रिपोर्ट में यह कहा गया है कि खनन गतिविधि ग्रामीणों को काफी क्षति कारित करेगा। बेहतर मूल्यांकन के लिए रिपोर्ट के पैराग्राफ 3 एवं 4 को यहाँ पर नीचे उत्कथित किया जाता है:-

> ''3. *एक बारहमासी सड़क जो गाँव समरूम को करखई नदी से जोड़ता है, पहाड़ी के अंतिम बिन्दु के उत्तर में 100 मीटर की दूरी पर स्थित है। सत्यापन करने पर यह प्रतीत होता है कि गाँव समरूम एच० एफ० एल० से चार मीटर प्लस की उँचाई पर स्थित है। चार मीटर की यह दूरी सड़क पर स्थित पहले मकान से प्राप्त की गयी है जो किसी शम्भु नाथ महतो की है। इस प्रकार भी उँचाई से जुड़ा रिपोर्ट का भाग सत्य प्रतीत होता है।*
>
> *4. एक काफी विशेष लक्षण जो इस स्थान पर मौजूद है, वह है, पहाड़ी की स्थिति एवं नदी का मोड़। चूँकि यह पहाड़ी नदी की धारा, मोड़ के ठीक विपरीत है, इसलिए, उंची बाढ़ के दौरान जल का अत्यधिक प्रवाह होता है। ऐसी स्थिति में, गाँव पहाड़ी से एवं इस स्थान पर उपलब्ध कुछ स्पर से भी सुरक्षा पाता है। मामले को देखने पर जो बात प्रकट होती है, जैसे पिछले वर्ष बाढ़ में कारित हुआ था। पहाड़ी के बिल्कुल विपरीत स्थित नदी का तटबंध बुरी तरह से नाश हुआ था। यदि पहाड़ी*

एवं स्पर पूर्वी किनारे पर नहीं होते तो उस दशा में, पूर्वी तटबंध को काफी क्षति कारित होती जिससे गाँव समरूम को क्षति कारित होता। वर्तमान मुख्य अभियंता द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि यदि पहाड़ी को काटे जाने की अनुमति दी जाती है, तो इसे पूरी तरह से हटाया नहीं जाना चाहिए बल्कि पहाड़ी में से एच० एफ० एल० से एक मीटर उपर की सतह को हटाया जा सकता है, क्योंकि पहाड़ी मनुष्य निर्मित बाँध की तरह तटबंध के किसी भी ओर से क्षरण को रोक रही है। यद्यपि पहाड़ी काफी छोटा होने के कारण यह उस क्षेत्र के मात्र एक भाग को ही क्षरण से बचायेगा एवं चूँकि नदी अपनी प्रारंभिक धारा में है इसलिए यह उस भाग का क्षरण कर सकती है जो पहाड़ी द्वारा संरक्षित नहीं है।''

जिला न्यायाधीश, सरायकेला-खरसवा द्वारा पेश रिपोर्ट के अनुसरण में एक अनुपूरक शपथपत्र इस प्रभाव का सुझाव देते हुए प्रत्यर्थी सं॰ 6 एवं 7 द्वारा दाखिल किया गया था कि यदि इन प्लॉटों से पत्थरों को हटाये जाने की अनुमति नहीं दी जाती है तब ऐसी स्थिति में प्रत्यर्थीगण को बाहर से पत्थर मंगाकर क्रशर मशीन का प्रयोग करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

4. हम प्रश्नगत प्लॉट में किसी प्रकार की खनन गतिविधि चलाने के लिए क्रशर मशीन का उपयोग करने की अनुमति प्रत्यर्थी सं॰ 6 एवं 7 को देने में कोई औचित्य नहीं पाते हैं क्योंकि वह न केवल सटे हुए गाँव/क्षेत्र को क्षति कारित करेगा अपितु वह स्वास्थ्य सम्बन्धी गंभीर समस्यायें भी उत्पन्न करेगा।

5. इसलिए, हम इस आवेदन को अनुज्ञात करते हैं एवं प्रत्यर्थीगण को प्रश्नगत प्लॉट पर किसी भी प्रकार की खनन गतिविधि को रोकने का निर्देश दिया जाता है।

6. सरकार के सम्बन्धित प्राधिकारी को प्रत्यर्थी सं॰ 6 एवं 7 के पक्ष में किए गए पट्टे को रद्द करने का भी निर्देश दिया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

नीता देवी

बनाम

अनीमा बिश्वास एवं एक अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2915 वर्ष 2008. 26 जून, 2009 को विनिश्चित।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 6, नियम 17—वादपत्र का संशोधन—अतिरिक्त वाद हेतुक कारित करने वाली पश्चातवर्ती उद्घटनाओं पर विचारण न्यायालय द्वारा संशोधन याचिका निस्तारित करते समय विचार किया जाना चाहिए था—मात्र विलम्ब के आधार पर संशोधन याचिका को अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था—वाद व्यय का अधिरोपण ऐसी विलम्बित आवेदन को अनुज्ञात करने के लिए एक शर्त होना चाहिए।

(पैरा 7 से 10 एवं 12)

निर्णयज विधि.—2007(1) CCC 1(SC); 2009 SAR (Civil) 149 SC; 2008 JLJR 335—Relied upon.

अधिवक्तागण.—Mr. Indrajit Sinha, For the Petitioner; Mr.Shekhar Prasad Sinha, For the Respondents.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री इन्द्रजीत सिन्हा एवं प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री शेखर प्रसाद सिन्हा को सुना।

2. इस रिट आवेदन में अभिधान वाद सं॰ 44 वर्ष 2005 में मुंशिफ, प्रथम, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 19.4.2008 के आदेश को चुनौती दी गयी है, जिसके द्वारा वादपत्र को संशोधित करने के लिए अनुमति प्रदान करने हेतु सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 17 के अन्तर्गत दिनांक 21.1.2008 की याची की आवेदन को आंशिक रूप से अनुज्ञात एवं आंशिक रूप से अननुज्ञात किया गया था।

3. याची के केस के तथ्य संक्षेप में निम्नवत है:-

याची ने अभिधान वाद सं० 44 वर्ष 2005 के माध्यम से अवर न्यायालय के समक्ष प्रतिवादीगण/प्रत्यर्थीगण के विरूद्व संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन हेतु एक अभिधान वाद दाखिल की थी। वाद दिनांक 2.5.1997 की एक संविदा पर आधृत था जिसके अन्तर्गत प्रतिवादीगण नियत प्रतिफल राशि पर अपनी भूमियों को याची को बेचने पर सहमत हुए थे।

वाद के लम्बित रहने के दौरान, किसी अनिल कुमार सिन्हा ने जिसे वादी की प्रार्थना पर प्रतिवादी सं० 2 के तौर पर पक्षकार बनाया गया था, इस आधार पर कि वाद के लम्बित रहने के दौरान प्रतिवादी सं० 1 ने दिनांक 25.2.2005 के विक्रय-विलेख के माध्यम से उक्त भूमि को अवैधानिक रूप से प्रतिवादी सं० 2 के पक्ष में हस्तांतरित कर दिया था एवं प्रतिवादी सं० 2 ने 18.2.2006 को वादी से बलपूर्वक वादित भूमि पर कब्जा ले लिया था।

इस आधार पर कि प्रतिवादीगण उद्घटनाये, जो वाद के लम्बित रहने के दौरान परिलक्षित हुआ था, ऐसी होने के कारण याची ने पश्चातवर्ती उद्घटनाओं से सम्बन्धित सुसंगत तथ्यों को पुरःस्थापित करने की अनुमति उसे प्रदान करके वादपत्र में संशोधन की ईप्सा एवं तत्सम्बन्ध में प्रार्थना करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 17 के अधीन अपनी याचिका दाखिल की थी।

याची की प्रार्थना पर प्रतिवादीगण ने वादपत्र में संशोधन का प्रतिवाद किया था।

विद्वान अवर न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के माध्यम से ईप्सित संशोधनों में से मात्र एक को अंतःस्थापित करने की याची की प्रार्थना को अनुज्ञात किया एवं शेष को अननुज्ञात किया।

4. आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने वादपत्र के पैरा 7 में प्रस्तावित संशोधनों हेतु प्रार्थना पर वादी द्वारा दावाकृत मूल अनुतोष को अनुषंगी होने के कारण विचार किया था एवं इसलिए, वादपत्र के पैरा 7 में संशोधन की प्रार्थना को अनुज्ञात कर दिया था। लेकिन, वादपत्र के पैरा 1 से 6 तक में संशोधन की प्रार्थना के सम्बन्ध में विचारण न्यायालय ने इसे इस सम्प्रेक्षण के साथ अस्वीकार कर दिया था कि प्रतिवादी सं॰ 1 द्वारा प्रतिवादी सं॰ 2 के पक्ष में विक्रय-विलेख के निष्पादन एवं वादित परिसर से वादी की बेदखली के सम्बन्ध में संशोधन के माध्यम से पुरःस्थापित किए जाने का दावा किए गए तथ्य भली-भाँति प्रकार से वादी के ज्ञान में था, जिसमें से कुछ, वादपत्र के प्रारूपण के समय भी थे एवं फिर भी, वादी ने प्रारंभिक स्तर पर वादपत्र में संशोधन के माध्यम से ऐसे तथ्यों को पुरःस्थापित करने के लिये कोई कदम नहीं उठाये। न्यायालय द्वारा बताया गया अगला कारण यह है कि ऐसे संशोधनों को उस प्रक्रम पर अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है जब विचारण प्रारम्भ हो चुका हो।

5. आक्षेपित आदेश की आलोचना करते हुए याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री इन्द्रजीत सिन्हा ने निवेदन किया कि याची द्वारा वादपत्र में इप्सित संशोधन पूर्णरूप से उन घटनाओं से सम्बन्धित है जो वाद के दाखिल किए जाने के उपरांत परिलक्षित हुए थे एवं इसे केस के उचित न्यायनिर्णयन के लिए अभिलेख पर लाना अनिवार्य था। विद्वान अवर न्यायालय ने याची के मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों का मूल्यांकन किए बिना मात्र इस आधार पर उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है कि संशोधन हेतु ऐसी प्रार्थना विलम्बित प्रक्रम पर की गयी थी।

विद्वान अधिवक्ता यह भी कहते हैं कि उस संशोधन को आंशिक रूप से अनुज्ञात करने एवं आंशिक रूप से अननुज्ञात करने का कोई पर्याप्त कारण नहीं है। यह भी अभिवाक् किया गया है कि याची अपूरणीय क्षति एवं हानि से ग्रस्त होगा यदि वादपत्र में ईप्सित संशोधन किए जाने की अनुमति नहीं दी जाती है।

विद्वान अधिवक्ता यह स्पष्ट करेंगे कि विचारण प्रारम्भ नहीं हुआ था क्योंकि यद्यपि वादी से साक्ष्य पेश करने की अपेक्षा की गयी थी परन्तु आक्षेपित आदेश पारित किए जाने की तिथि से पूर्व कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया था। विद्वान अधिवक्ता कहते हैं कि यह विधि की एक सुस्थापित प्रतिपादना है कि वाद को मूल वाद हेतुक के आधार पर विचारित किया जाना चाहिए एवं यह सिद्धांत न केवल वाद पर अपितु अपीलों पर भी लागू है। यद्यपि इस प्रतिपादना के कुछ अपवाद हैं। ऐसी उद्घटनाएँ एवं परिस्थितियाँ कार्यवाहियों के सभी प्रक्रमों पर किए गए दावों की प्रकृति एवं चरित्र को न्यायनिर्णित करने में सुसंगत हैं एवं यदि ऐसी पश्चातवर्ती उद्घटनाओं को संशोधन के माध्यम से अभिलेख पर लाए जाने की ईप्सा की जाती है, तो न्यायालय को प्रार्थित संशोधन को मंजूरी प्रदान करने के पक्ष में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए। पश्चातवर्ती घटनाओं को वादपत्र में अनिवार्य संशोधनों के माध्यम से अभिलेख पर लाया जा सकता है एवं सम्पूर्ण न्याय करने के लिए नए अनुतोषों का शामिल किया जाने की भी अनुमति दी जानी है।

6. याची के दावे पर विवाद करते हुए प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री शेखर प्रसाद सिन्हा निवेदन करते हैं कि याची का वर्तमान रिट आवेदन खारिज किए जाने योग्य है, क्योंकि आक्षेपित आदेश किसी अविधिमान्यता एवं अनौचित्य, जो कुछ भी हो, से ग्रसित नहीं है। आक्षेपित आदेश का समर्थन करते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यह तथ्य कि प्रतिवादी सं॰ 1 ने वादित भूमि को प्रतिवादी सं॰ 2 को बेच दी थी, भली-भाँति रूप से याची/वादी के ज्ञान में था, जैसा कि इस तथ्य से प्रकट होगा कि ऐसी जानकारी प्राप्त होने पर वादी ने वाद के एक आवश्यक पक्षकार के तौर पर प्रतिवादी सं॰ 2 को अभियोजित करने की ईप्सा की थी। इसके अतिरिक्त, वादी ने वादित भूमियों से उसे बेदखल करने से प्रतिवादी को अवरोधित करने के लिए व्यादेश की प्रार्थना करते हुए एक याचिका दाखिल की थी। उस समय भी, वादी ने अपने वादपत्र में ऐसी अभिप्रायित पश्चातवर्ती उद्घटनाओं को समाविष्ट करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। दूसरी ओर, जब वाद निष्कर्ष के अंतिम प्रक्रम पर पहुँचा तो याची ने न केवल अपने वादपत्र में सारभूत संयोजन करने, अपितु अतिरिक्त प्रार्थनाओं की एक श्रृंखला को समाविष्ट करने के लिए भी अपने वादपत्र में संशोधन करने की ईप्सा की है। विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यह विधि का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि विचारण के प्रारम्भ हो जाने के उपरांत किसी भी संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता **स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद बनाम टाउन म्युनिसीपल काऊंसिल, 2007(1) सी॰ सी॰ सी॰ 1 (एस॰ सी॰)** के मामले में, **विद्याबाई एवं अन्य बनाम पद्मलता एवं एक अन्य, 2009 एस॰ ए॰ आर॰ (सिविल) 149 एस॰ सी॰** के मामले में एवं साथ ही **हिमांशु शेखर बनाम कुमार महेश चन्द्र एवं एक अन्य,** 2008(2) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 335 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट एवं इसपर भरोसा किया है।

7. वर्तमान मामले में, याची के मूल दावे के अनुसार, वह उक्त परिसर की कब्जेधारी थी। स्वीकार्यत: उसे वाद के लम्बित रहने के दौरान इन भूमियों से बेदखल किया गया था। ये सभी पश्चातवर्ती उद्घटनायें हैं जिसने वादी के वाद हेतुक को उद्भूत किया है। इस तथ्य पर कि प्रतिवादी सं॰ 1 ने वादित भूमियों में प्रतिवादी सं॰ 2 को पुर:स्थापित किया था, विचारण न्यायालय द्वारा वाद को एक आवश्यक पक्षकार के तौर पर प्रतिवादी संख्या 2 को अभियोजित करने की वादी की पूर्व प्रार्थना को अनुज्ञात करते समय विचार किया गया था।

8. जैसा की प्रतीत होगा, प्रस्तावित संशोधन मात्र अनुषंगी एवं संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन हेतु वादपत्र में की गयी मुख्य प्रार्थना के अतिरिक्त हैं। वाद दाखिल किए जाने के उपरांत उसे वादित परिसर से बेदखल किए जाने का कृत्य एक पश्चातवर्ती घटना होने के कारण, यह एक वाद हेतुक उत्पन्न करता है एवं ऐसे वाद हेतुक पर इप्सित कोई संशोधन वाद की प्रकृति को परिवर्तित नहीं करता है।

9. पश्चातवर्ती उद्घटनाओं के कारण उद्भूत वाद हेतुक के आधार पर अभिवचनों में संशोधन की याचिका के दाखिल किए जाने में विलम्ब संशोधन के अस्वीकार किए जाने का आधार नहीं हो सकता है। विलम्ब की माफी प्रदान करने का विवेकाधिकार विचारण न्यायालय में निहित है जिसे उस पक्षकार से विलम्ब के लिए दण्ड अधिरोपित करने एवं दूसरे पक्षकार को इसका प्रतिकर प्रदान करने का प्राधिकार रखता है।

10. यह प्रतीत होता है कि इसके बारे में सुसंगत मुद्दों पर विचार किए बिना कि क्या पक्षकारों के बीच विवाद का न्यायनिर्णयन करने एवं निष्पक्ष निर्णय लेने के लिए ईप्सित संशोधन अनिवार्य होगा एवं इस तथ्य पर विचार किए बिना कि क्या ईप्सित संशोधन प्रतिवादीगण को प्रतिकूल प्रभाव कारित करने की प्रवृत्ति नहीं रखते हैं और न ही दावाकृत मूल अनुतोष की प्रकृति को परिवर्तित करता है एवं इस तथ्य पर विचार किए बिना कि क्या आवेदन दाखिल किए जाने में विलम्ब की माफी वादी पर व्यय अधिरोपित करके दी जा सकती है एवं कारित विलम्ब के लिए प्रतिवादी को प्रतिकर प्रदान की जा सकती है, विचारण न्यायालय ने वादी के संशोधन के दावे को मात्र विलम्ब के आधार पर ही अस्वीकार किया है।

यह भी सम्प्रेक्षित किया गया है कि यद्यपि अपनी राय में, विचारण न्यायालय ने सम्प्रेक्षित किया है कि वाद में विचारण प्रारम्भ हो चुका था, परन्तु जैसा कि याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा स्पष्ट किया गया है, जिसपर प्रत्यर्थीगण द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से इनकार एवं इसको विवादित नहीं बनाया गया है, वह प्रक्रम जिसपर विचारण प्रारम्भ कराया गया वह मुद्दों को विरचित किए जाने के उपरांत ही था। यद्यपि वादी से साक्ष्य पेश करने की अपेक्षा की गयी थी, परन्तु उसके द्वारा यहाँ तक कि किसी शपथपत्र के माध्यम से कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया था। इसलिए, यह कठोरतापूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि विचारण प्रारम्भ कराया गया था एवं इस प्रकार, संशोधन को यदि अनुज्ञात किया जाता है तो यह उस प्रक्रम पर प्रतिवादीगण को प्रतिकूल प्रभाव कारित करेगा।

11. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा **स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद (ऊपर)** के मामले में एवं **विद्याबाई एवं अन्य (ऊपर)** के मामले में भी निर्दिष्ट निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं होते है क्योंकि उपर निर्दिष्ट मामले में वास्तविक रूप से विचारण का प्रक्रम वास्तविक रूप से आगे बढ़ा था एवं पक्षकारों द्वारा साक्ष्य पेश किया गया था, जबकि वर्तमान मामले में, विचारण वादी की ओर से साक्ष्य पेश करके प्रारम्भ नहीं हुआ था। इसी प्रकार, **हिमांशु शेखर (ऊपर)** के मामले में निर्णय इन तथ्यों की दृष्टि में लागू नहीं होंगे जिसे संशोधन के माध्यम से पुर:स्थापित किए जाने की ईप्सा की गयी थी, यह भली प्रकार से वादी के ज्ञान में था, वादपत्र के दाखिल किए जाने के पूर्व भी, वादी के साक्षियों के साक्ष्य समाप्त होने के साथ-साथ विचारण काफी आगे बढ़ा था एवं प्रतिवादीगण के पाँच से अधिक साक्षियों के जाँच किए जाने के उपरांत विचारण की कार्यवाही आगे चली थी।

12. उक्त विवेचनों के आलोक में, मैं इस रिट आवेदन में बल पाता हूँ एवं तद्नुसार, इसे अनुज्ञात किया जाता है। पैरा 1 से 6 में प्रस्तावित संशोधन कराये जाने की याची/वादी की प्रार्थना को अस्वीकार करने वाले आक्षेपित आदेश के प्रवर्तन को एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है। वादी द्वारा ईप्सित अनुतोष को अनुज्ञात किया जाता है, लेकिन 5,000/- रू॰ के वाद व्यय के अध्यधीन।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

जुगनू महतो उर्फ रूपलाल महतो एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (क्रि॰) सं॰ 167 वर्ष 2009. 20 अगस्त, 2009 को विनिश्चित।

दांडिक विचारण–ज्ञापन सं॰ 1315, दिनांक 18.4.2007 में अंतर्विष्ट सरकारी संकल्प पत्र के मुताबिक वैसे दोषसिद्धों को जो 25 वर्ष से अधिक की सजा परिहार अवधि समेत काट चुके हैं, की निर्मुक्ति–अभिनिर्धारित, यदि सरकार ने दोषसिद्ध द्वारा कतिपय शर्तों को पूरा करने पर समय से पहले रिहाई का कोई नियम अथवा योजना विरचित किया है, तब प्राधिकारियों को उस समय प्रचलित नीति के आधार पर निर्णय लेना है–ऐसे व्यक्तियों को जो 25 वर्ष से अधिक की सजा काट चुके थे, उन्हें शीघ्र रिहा करने का आदेश दिया गया। (पैरा 7)

निर्णयज विधि.–AIR 2000 SC 986.

अधिवक्तागण.–Mr. R.P. Gupta, For the Petitioners; Mr. R.N. Roy, For the Respondents.

आदेश

यह रिट आवेदन प्रत्यर्थियों को ज्ञापन सं॰ 1315 दिनांक 18.4.2007 में अंतर्विष्ट सरकारी संकल्प के मुताबिक याचियों को कैद से शीघ्र निर्मुक्त करने का निर्देश देने के लिए दाखिल की गयी है क्योंकि याचीगण दोषी पाये जाने पर आजीवन कारावास की सजा पा चुके हैं और परिहार अवधि समेत 25 वर्ष से अधिक सजा काट चुके हैं।

2. याचियों की ओर से आँकड़े, जो रिट याचिका का अंश है, दिये गये हैं जो मुकदमों की संख्या जिनमें प्रत्येक याची को दोषसिद्ध किया गया था, अभिरक्षा की अवधि, परिहार अवधि और परिहार अवधि समेत अभिरक्षा अवधि दर्शायी गयी है और नीचे प्रत्युत्पादित है:–

S. No.	Petitioner	S.T. No. & Sections	Custody	Remission	Custody incl. remission
1	2	3	4	5	6
1.	Petitioner No. 1 Jugnu Mahto S/o Ruplal Mahto	S.T. No. 224/90 (Tenughat) offence 302/34, 302, 411 I.P.C.	18 yrs. 7 months 5 days	8 yrs. 0 month 15 days	26 yrs. 7 months 20 days
2.	Petitioner No. 2 Hasnain Mian S/o Lt. Bhikhu Mian	S.T. No. 164/91 (Haz) offence 396 I.P.C.	18 yrs. 0 month 21 days	6 yrs. 0 month 18 days	25 yrs. 1 month 9 days
3.	Bartu Mahto S/o Lt. Kitku Mahto (petitioner-3)	S. T. No. 164/91 (Haz) offence 396 I.P.C.	19 yrs. 9 months 29 days	6 yrs. 1 month 5 days	25 yrs. 4 months 4 days
4.	Petitioner-4 Raj Kumar Kuswaha S/o Hardeo Pd.	S.T. No. 328/92 offence-302, 34 I.P.C.	16 yrs. 9 months 17 days	8 yrs. 6 months 15 days	28 yrs. 4 months 2 days

5.	Petitioner-5 Triveni Bhuiyan S/o N. K. Bhuiyan	S.T. No. 151/92 Secs. 302/34, 201/ 34, 323/34 I.P.C.	17 yrs. 7 month 00 days	8 yrs. 9 month 19 days	26 yrs. 4 months 19 days
6.	Petitioner-6 Prithivi Bhuyan S/o Ram Jiwan Bhuiyan	S. T. No. 151/92 Sec. 302/34, 201/ 34, 323/34 I.P.C.	17 yrs. 6 months 23 days	8 yrs. 11 months 11 days	26 yrs. 5 months 24 days
7.	Petitioner-7 Ajay Anjola S/o Siril Anjola	S. T. No. -do-	17 yrs. 1 month 8 days	9 yrs. 1 month 19 days	26 yrs. 2 months 27 days
8.	Petitioner-8 Yogai Singh S/o Bishun Singh	S.T. No. 151/92, Secs. 302/34, 201, 323/34 I.P.C.	17 yrs. 7 months 2 days	7 yrs. 6 months 29 days	25 yrs. 2 months 2 days

3. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि याचियों ने परिहार अवधि समेत 25 वर्ष से अधिक सजा पूरी होने पर सचिव, गृह मंत्रालय, झारखण्ड राज्य, राँची और अन्य अधिकारियों के समक्ष ज्ञापन सं॰–1315 दिनांक 18.4.2007 में अंतर्विष्ट सरकारी संकल्प के अनुसार अपनी रिहाई के लिए अभ्यावेदन दिया था लेकिन अभी भी उन्हें निर्मुक्त नहीं किया गया है और इस परिस्थिति के अंतर्गत, याचियों की ओर से यह याचिका याचियों की शीघ्र निर्मुक्ति का निर्देश अधिकारियों को देने के लिए दायर की गयी है।

4. प्रत्यर्थियों की ओर से एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है जिसमें कहा गया है कि जब याचियों का मामला 'State Sentence Review Board' के समक्ष प्रस्तुत किया गया, तब बोर्ड ने यह महसूस किया कि परिहार अवधि समेत 25 वर्ष की सजा पूरी कर चुके कैदियों की निर्मुक्ति से संबंधित ज्ञापन सं॰–1315 दिनांक 18.4.2007 का खण्ड, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **लक्ष्मण नास्कर बनाम भारत संघ (AIR 2000 SC 986)** के मामले में अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांत के अनुकूल नहीं है क्योंकि इस निर्णय के अनुसार आजीवन कारावास का अर्थ आजीवन कारावास है, एवं, इसलिए, यह मामला सरकार के पास उक्त ज्ञापन में आवश्यक संशोधन हेतु निर्दिष्ट किया जा चुका है एवं इस परिस्थिति के अधीन, याची की निर्मुक्ति से संबंधित मामला आस्थगित है।

5. यह अभिकथित किया गया है कि झारखण्ड सरकार ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **लक्ष्मण नास्कर बनाम भारत संघ (ऊपर)** के मामले में अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धान्त के अनुसार कैदियों की समयपूर्व निर्मुक्ति से संबंधित ज्ञापन सं॰ 1315 दिनांक 18.4.2007 के अधीन नीति निर्धारण किया है जिसमें यह संकल्प लिया गया है कि एक कैदी परिहार अवधि समेत 20 वर्ष की सजा पूरी करने पर यद्यपि समयपूर्व निर्मुक्ति का अधिकार प्राप्त नहीं करता है लेकिन बोर्ड द्वारा उसकी शीघ्र निर्मुक्ति का विचारण किये जाने का हकदार होता है जो शीघ्र निर्मुक्ति पर निर्णय लेते समय निम्नलिखित बिंदुओं पर विशेष ध्यान रखेगा।

1. क्या अपराध एक व्यक्तिगत अपराध है जो समाज पर व्यापक प्रभाव नहीं डालता है;

2. क्या भविष्य में अपराध की पुनरावृत्ति की संभावना है;

3. क्या दोषसिद्ध ने अपराध करने की संभाव्यता खो दी है;

4. क्या इस दोषसिद्ध को और परिरूद्ध रखने का कोई लाभदायी उद्देश्य है;

5. दोषसिद्ध के परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति।

6. साथ ही साथ, यह भी संकल्प लिया गया है कि किसी भी परिस्थिति में, परिहार अवधि समेत कैद की अवधि 25 वर्ष से अधिक नहीं होगी। यह खण्ड स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि अगर कैदी ने 25 वर्ष की सजा पूरी कर ली है तो वह निर्मुक्ति पाने का हकदार है लेकिन बोर्ड इस खण्ड को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **लक्ष्मण नास्कर के मामले** में अधिकथित निर्णयाधार के असंगत पाता है। अगर बोर्ड ने ऐसा निष्कर्ष निकाला है, तब हमारी दृष्टि में, यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **लक्ष्मण नास्कर के मामले** में अधिकथित निर्णयाधार का सही पठन नहीं है जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

''यह कानून की निश्चित अवधारणा है कि आजीवन कारावास का अर्थ आजीवन कारावास है और परिहार उपार्जित करने पर कैदी को समयपूर्व निर्मुक्ति का अधिकार प्राप्त नहीं होता है; लेकिन यदि सरकार ने ऐसे कैदियों की समयपूर्व निर्मुक्ति हेतु कोई नियम या योजना विरचित की है, तब ऐसे नियम या योजनाओं को मार्गदर्शक सिद्धान्त माना जाएगा ताकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन उपलब्ध शक्ति का प्रयोग किया जा सके और अगर प्रासंगिक समय में प्रचलित नीति निर्देशों के तद्नुरुप कैदी नीति निर्देशों में उल्लिखित सजा की अवधि काट चुका हो, तब आजीवन कारावास की सजा पाये कैदी को सिर्फ यह अधिकार प्राप्त होता है कि उसका मामला कारा अधिकारियों द्वारा संबंधित अधिकारियों के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन उपलब्ध शक्तियों के प्रयोग हेतु विचारण के लिए समय पर रखा जाये। अगर किसी अधिकारी से संविधान के अनुच्छेद 161 के अधीन उपलब्ध शक्ति के प्रयोग की अपेक्षा की जाती है तब इसे विधिसम्मत और उस समय प्रचलित सरकारी नीति निर्देशों के अनुरुप करना होगा।''

7. अत: यह सुस्पष्ट है कि अगर सरकार ने कतिपय शर्तों को पूरा करने पर कैदी की शीघ्र निर्मुक्ति हेतु कोई नियम या योजना विरचित की है, तब अधिकारियों को उस समय प्रचलित नीति के अनुरुप निर्णय लेना होगा। हमने पहले ही उपदर्शित किया है कि सरकार ने समयपूर्व निर्मुक्ति के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत विरचित करते हुए यह संकल्प लिया कि यदि परिहार अवधि सहित कैद की अवधि 25 वर्ष या उससे अधिक हो चुकी है तब कैदी शीघ्र निर्मुक्ति का हकदार है। जब तक इस खण्ड का संशोधन नहीं किया जाता है, अधिकारी को प्रचलित सरकारी नीति के अनुरुप कार्य करना होगा। चूँकि याची ने स्वीकृत तौर पर 25 वर्ष से ज्यादा की सजा काट चुका है, वह सरकार के नीति निर्णय के अंतर्गत शीघ्र निर्मुक्ति का हकदार है।

8. मामले के इस स्वरूप को विचार में रखते हुए, इस न्यायालय के खण्ड पीठ ने समान परिस्थितियों में W. P. (Cr.) No. 176 वर्ष 2009 में उस मामले के याची को शीघ्र निर्मुक्त करने का निर्देश दिया था।

9. इन परिस्थितियों के अधीन, अधिकारियों को याचीगण को शीघ्र निर्मुक्त करने का आदेश दिया जाता है।

10. परिणामस्वरूप, याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

जगदीश झा

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) संख्या 5399 वर्ष 2007. 21 अगस्त, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–सेवांत देय–असंदाय–समस्त सेवाकाल के दौरान याची के विरूद्ध पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के अधीन अथवा विभागीय कार्यवाही के अधीन कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई–अभिनिर्धारित, चूँकि प्रत्यर्थीगण याची के विरूद्ध किसी विभागीय जाँच के अनुसरण में ऐसे किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे कि उसने धोखाघड़ी अथवा दुर्व्यपदेशन द्वारा अवैध लाभ प्राप्त किया था, इसलिए याची के सेवानिवृत्ति के पश्चात शुरू की गई दांडिक कार्यवाही का लंबित होना प्रत्यर्थी को सेवांत देयों को रोकने का हकदार नहीं बनाएगा–व्यक्तिक्रम अनुबद्धता के साथ तदनुसार निर्देश। (पैरा 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.–Mr. B.P. Pandey, For the Petitioner; J.C. to G.P.-II, For the Respondent Nos. 1 to 3; Mr. S.P. Roy, For the Respondent Nos. 5 and 7; Mr. S. Shrivastava, For the Respondent No. 8.

आदेश

याची के वरीय अधिवक्ता, श्री बी॰ पी॰ पाण्डेय, प्रत्यर्थी राज्य के सरकारी वकील-II के कनीय अधिवक्ता, प्रत्यर्थी सं॰ 8 के विद्वान अधिवक्ता, श्री एस॰ श्रीवास्तव एवं प्रत्यर्थी सं॰ 5 एवं 7 के विद्वान अधिवक्ता, श्री एस॰ पी॰ राय को सुना गया।

2. याची ने इस आवेदन में प्रत्यर्थियों को उसके सेवांत देय जिसमें पेंशन, गैच्यूटि, लीव इनकैशमेन्ट, जी॰ पी॰ एफ॰ 1975 से 1980-81 तक सम्मिलित है, विधिसम्मत ब्याज समेत भुगतान करने एवं विधि के अनुसार याची का पेंशन निश्चित करने और ऐसे भुगतानों को निर्मुक्त करने का निवेदन किया है।

3. याची प्रत्यर्थियों के अधीन सेवारत था और कार्यकारी अभियन्ता, क्वालिटी कन्ट्रोल एवं मॉनिटरिंग डिविजन, देवघर के अधीन जूनियर इंजीनियर (सिविल) के पद से सेवामुक्त हुआ था।

अधिवर्षिता के पश्चात, वह अपने सेवांत देय के भुगतान की अपेक्षा कर रहा था लेकिन उसे इनका भुगतान नहीं किया गया।

जब अवकाश प्राप्ति पश्चात देय नहीं दिया गया, याची ने पटना उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट आवेदन सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 10879 वर्ष 2002 दायर किया।

4. न्यायालय के आदेश दिनांक 8.5.2003 द्वारा रिट आवेदन निस्तारित किया गया था और याची को सम्बद्ध पदाधिकारियों के समक्ष एक नया अभ्यावदेन दाखिल करने और प्रत्यर्थियों के सम्बद्ध पदाधिकारियों को याची की शिकायतों पर गौर करने हेतु एक कमिटी गठित करने एवं याची के सेवांत लाभों से संबंधित दावों पर समुचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था। पहले दायर की गयी रिट आवेदन पर न्यायालय द्वारा दिये गए आदेश से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थियों द्वारा याची के दावे को इस आधार पर प्रतिवाद किया गया था कि ऐसा मानने का समुचित आधार है कि याची को जूनियर इंजीनियर के पद पर कभी प्रोन्नति नहीं दी गयी थी और वस्तुतः, याची के नाम वाला एक अन्य व्यक्ति था और यह कथित किया गया था कि मामले का अनुसंधान करना आवश्यक है ताकि पता चल सके

कि क्या याची वस्तुतः जूनियर इंजीनियर के तौर पर कार्यरत था और क्या वह जूनियर इंजीनियर के पद का लाभ प्राप्त करने का हकदार है। इसी संदर्भ में न्यायालय ने संपूर्ण मामले की जाँच के लिए एक कमिटी गठित करने और समुचित निर्णय लेने का निर्देश दिया था।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने सूचित करते हैं कि न्यायालय के उपरोक्त आदेश के बावजूद, प्रत्यर्थियों ने निर्धारण नहीं की और न ही याची को सेवांत देय के भुगतान के संबंध में कोई निर्णय लिया। इसके प्रतिकूल, जब याची अपनी मांग पर डटा रहा तब प्रत्यर्थियों ने याची के विरुद्ध मनगढ़ंत आरोपों के आधार पर प्राथमिकी दर्ज किया। यद्यपि आपराधिक मामले की शुरूआत की गयी लेकिन सम्बद्ध पदाधिकारियों ने इसे आगे नहीं बढ़ाया और यह मुकदमा बिना किसी निर्णय के अभी भी लंबित है।

विद्वान अधिवक्ता आगे कहते हैं कि यद्यपि प्रत्यर्थियों ने याची के सेवांत देयों के दावों से वंचित और विफल करने हेतु याची के विरूद्ध मनगढ़ंत आरोप लगाये, परन्तु याची के सेवाकाल के दौरान और अधिवर्षिता के पूर्व किसी भी विभागीय कार्यवाही की शुरूआत नहीं की गयी थी। इसके अतिरिक्त, यद्यपि याची वर्ष 2001 में ही अवकाश प्राप्त कर चुका था, परन्तु पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के अधीन याची के विरुद्ध किसी भी आरोप पर कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गयी थी और न ही किसी भी ऐसी कार्यवाही में याची के विरूद्ध ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलिखित किया गया है कि उसने धोखाधड़ी अथवा प्रत्यर्थियों के सम्बद्ध पदाधिकारियों को दुर्व्यपदेशन या धोखाघड़ी द्वारा कोई मौद्रिक या अन्य लाभ प्राप्त किया है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन करतें है कि ऐसी परिस्थितियों में, प्रत्यर्थी विधिसम्मत या वैध रूप से याची के सेवांत देयों का भुगतान नहीं रोक सकते हैं।

6. प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने पूर्ववर्ती रिट पर लिये गये अपने दृष्टिकोण को दुहराया और निवेदन किया कि कमिटी के निष्कर्षों के आधार पर याची के विरूद्ध दांडिक अभियोजन शुरू किया गया था जो अभी भी लंबित है। यद्यपि, विद्वान अधिवक्ता यह स्वीकार करते हैं कि याची के विरूद्ध उसके सेवाकाल के दौरान कोई विभागीय कार्यवाही शुरू नहीं की गयी थी और न हीं पेंशन नियमावली के नियम 43(b) के अधीन कोई कार्यवाही की गयी थी यद्यपि उच्च न्यायालय के आदेश में विहित निर्देश के आलोक में एक कमिटी गठित की गयी थी, जिसने जाँच किया और अपने निष्कर्षों को अभिलिखित किया जिसके आधार पर याची के विरूद्ध दांडिक अभियोजन की शुरूआत की गयी थी।

7. अभिवाकों एवं स्वीकृत तथ्यों के आधार पर, मैं संतुष्ट हूँ कि प्रत्यर्थीगण याची के विरूद्ध किसी विभागीय कार्यवाही के आधार पर ऐसे किसी भी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे हैं कि उसने धोखाधड़ी या प्रत्यर्थी के पदाधिकारियों पर दुर्व्यपदेशन द्वारा अवैध रूप से कोई लाभ प्राप्त किया था। यह भी इन्कार नहीं किया गया है कि याची के सेवाकाल के दौरान उसके विरूद्ध कोई भी कार्यवाही नहीं की गयी है। याची के सेवानिवृत्ति के बाद उसके विरूद्ध शुरू किये गये दांडिक अभियोजन के लंबित रहने से भी प्रत्यर्थियों को सेवांत देयों का भुगतान, जिसका याची अन्यथा हकदार है, रोकने का हक प्रदान नहीं करेगा।

8. उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों के आलोक में, मैं प्रत्यर्थियों के सम्बद्ध पदाधिकारियों को इस आदेश के प्रति की प्राप्ति की तारीख से तीन महीने के भीतर याची को भुगतान योग्य सेवांत देयों राशि का आकलन और सूद समेत भुगतान करने का निर्देश देता हूँ। अगर इस निश्चित अवधि के दौरान

भुगतान नहीं किया जाता है तो इस राशि पर 12 प्रतिशत की दर से ब्याज देना होगा जिसकी गणना अंतिम भुगतान तक उस तारीख से की जायेगी जबसे याची सेवांत देयों का हकदार है। प्रत्यर्थीगण याची को देय पेंशन का भी आकलन करेंगे और नियत अवधि के भीतर पेंशन के अधिशेषों सहित इसका भुगतान सुनिश्चित करेंगे।

इन संप्रेक्षणों के साथ, यह रिट आवेदन निस्तारित की जाती है।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता को दी जाये।

माननीय श्री अमरेश्वर सहाय एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

गंशु बैतरिया

बनाम

झारखण्ड राज्य

दाण्डिक अपील सं॰ 1141 वर्ष 2008. 24 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 134 वर्ष 1999 में सत्र न्यायाधीश, पश्चिमी सिंहभूम, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 28.9.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 302/34—हत्या—अभियोजन साक्षियों ने परीक्षा के अनुक्रम में, कभी भी यह नहीं कहा कि उनलोगों ने अपीलार्थीगण को मृतक की हत्या कारित करते हुए देखा था परन्तु विचारण के दौरान उनलोगों ने प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा किया एवं उनलोगों ने जो वृत्तांत पहले सुनाया था उससे अलग वृत्तांत सुनाया—मृत्योपरांत रिपोर्ट ने भी प्रहार की रीति का समर्थन नहीं किया—घटनास्थल पर अपीलार्थीगण की पहचान, जहाँ उस समय घना अंधेरा था, भी अत्यधिक संदेहास्पद है—अपीलार्थीगण को दोषमुक्त किया गया।

(पैरा 7)

अधिवक्तागण.—Mr. Pramod Kumar Choudhary (Amicus Curiae), For the Appellant; APP, For the State.

न्यायालय द्वारा.—अपीलार्थी को गनेश्वर पाईक की हत्या कारित करने के लिए सात अन्य अभियुक्तों के साथ विचारण पर रखा गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने सभी अभियुक्तों को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराध का दोषी पाकर उनमें से प्रत्येक को आजीवन कारावास की सजा भुगतने से दण्डित किया।

2. अभियोजन मामला यह है कि 13.10.1998 को लगभग 6 बजे शाम में मृतक गनेश्वर पाईक साथ ही उसका भाई जितेन्द्र पाईक, (अ॰ सा॰ 2) एवं प्रसन्ना पाईक (अपरीक्षित) मंगल बाजार, आनंदपुर से अपने गाँव आने के लिए निकले। जब वे 'भलदुंगरी' कहे जाने वाले स्थान पर पहुँचे, तो मृतक गनेश्वर पाईक ने अपने गाँव आने के लिए सतामरी के रास्ते जाने का एक अन्य मार्ग चुना, जबकि सूचनादाता जितेन्द्र पाईक एवं उसके भाई प्रसन्ना पाईक ने मुख्य सड़क के रास्ते साईकिल से गाँव आने का मार्ग अपनाया। जब वे लोग वहाँ से आगे बढ़े तो अभियुक्त शशि नाईक एवं कलिंदर नाईक को वहाँ देखा, जिसने मृतक गनेश्वर पाईक को अपने गाँव जाते हुए देखकर जल्दी से वहाँ से चल दिया। तदुपरांत सूचनादाता एवं उसके भाई ने उसका पीछा किया। जब वे लोग बन्धु मुखिया के एक बगीचे के निकट पहुँचे, तो उनलोगों ने उपरोक्त दोनों व्यक्तियों को छह अन्य व्यक्तियों के साथ बैठा हुआ देखा जो तीर-कमान एवं टांगी से लैस थे। वहाँ सूचनादाता ने उपरोक्त दोनों व्यक्तियों को अन्य

व्यक्तियों से यह कहते हुए सुना कि मृतक सतामरी के रास्ते गाँव जा रहा है। इसपर, सभी व्यक्ति उस स्थान से चले गए एवं वह तथा उसके भाई गाँव के लिये चल दिये ताकि वे लोग तीर-कमान लेकर वापस आ सकें परन्तु जब वे लोग कुछ दूर आगे गए, तो उनलोगों ने भाई की चीख की आवाज सुनी। इसपर, वे लोग घटनास्थल पर आए, जहाँ उनलोगों ने अपने भाई को मृत पाया क्योंकि उसका अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा सिर काट लिया गया था जिन्होंने उनलोगों को आते हुए देखकर उस स्थान से चले गए थे।

3. उसी दिन लगभग मध्यरात्रि में जब आनंदपुर थाने के प्रभारी-अधिकारी ने यह अफवाह सुनी कि गाँव चिरूमत्ता में किसी व्यक्ति की हत्या कर दी गयी है, तो वे अगले दिन, अर्थात 14.10.1998 को लगभग 5 बजे सुबह में घटनास्थल पर आए, जहाँ उन्होंने सूचक जितेन्द्र पाईक (अ० सा० 2) का फर्दबयान (प्रदर्श 4), अभिलिखित किया, जिसने उपर कही गयी रीति से घटना के घटित होने के बारे में बताया। अ० सा० 2 ने उस हेतुक के बारे में बताया जिसमें यह प्रकट किया गया था कि उसके भतीजे दामोदर पाईक को एतवा प्रधान एवं लम्बु पाईक द्वारा रोजगार के लिए पंजाब ले जाया गया था परन्तु वह नहीं लौटा, यद्यपि एतवा प्रधान एवं लम्बु पाईक गाँव वापस आ गए एवं उसके लिए एक पंचायती आयोजित की गयी थी ताकि दोनों व्यक्तियों को उसके भतीजे का वापस लाने पर बाध्य किया जा सके। उसके अतिरिक्त, सूचनादाता ने प्रकट किया कि कुछ भूमि विवाद भी रहा था। उक्त फर्दबयान के आधार पर, केस दर्ज किया गया था एवं एक औपचारिक प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श 6) तैयार किया गया था। अन्वेषण अधिकारी ने फर्दबयान अभिलिखित करने के उपरांत गरजन पाईक (अ० सा० 1) एवं राम किशोर प्रधान की उपस्थिति में शव का मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तैयार किया गया। तत्पश्चात, शव को मृत्योपरांत परीक्षण के लिए भेजा गया था जो डॉ० विजय कुमार सिंह (अ० सा० 5) द्वारा किया गया था, जिन्होंने शव परीक्षा के अनुक्रम में सिर एवं गर्दन का उपरी भाग शरीर के शेष भाग से पूर्णत: पृथक पाया। मृत्योपरांत परीक्षण रिपोर्ट को डॉक्टर द्वारा प्रदर्श 7 के तौर पर प्रमाणित किया गया है। अन्वेषण अधिकारी ने अभिग्रहण सूची (प्रदर्श 5) में घटनास्थल से रक्त मिश्रित मिट्टी एवं दो तीर अभिग्रहित किया एवं तब साक्षियों के बयान अभिलिखित किया।

4. अन्वेषण की समाप्ति के उपरांत, पुलिस ने अपीलार्थी एवं साथ ही सात अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध आरोपपत्र पेश किए। मामले को सुपुर्द किए जाने पर, आरोपों को विरचित किया गया था जिसका दोषी न होने का सभी अभियुक्तों ने अभिवाक् किया एवं विचारित किए जाने का दावा किया।

5. विचारण के अनुक्रम में, अभियोजन ने कुल पाँच साक्षियों की परीक्षा की है। उनमें से अ० सा० 2, जितेन्द्र पाईक, सूचनादाता एवं अ० सा० 3, पार्वती देवी, मृतक की विधवा ने स्वयं को प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा किया, यद्यपि फर्दबयान के अनुसार, न तो अ० सा० 2 और न ही अ० सा० 3 प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं और न ही अ० सा० 3 मृतक के साथ गया था, फिर भी विचारण न्यायालय ने अ० सा० 2 एवं अ० सा० 3 के कथनों पर भरोसा करके इस अपीलार्थी एवं अन्य अभियुक्त व्यक्तियों को गनेश्वर पाईक की हत्या कारित करने का दोषी पाया। दोषसिद्ध एवं दण्डित किए जाने पर, सभी सह-अभियुक्तों ने दाण्डिक अपील दाखिल किया, जो दां० अपील (डी० बी०) सं० 387 वर्ष 2000(R), दां० अपील (डी० बी०) सं० 431 वर्ष 2000(R) एवं दां० अपील (डी० बी०) सं० 426 वर्ष 2000 थी। इस न्यायालय ने पक्षकारों की सुनवायी करने के उपरांत उन सभी को दोषमुक्त किया क्योंकि न तो अ० सा० 2 और न ही अ० सा० 3 को विश्वसनीय पाया गया था। सभी सह-अभियुक्तों की दोषमुक्ति के काफी बाद, इस अपीलार्थी ने जेल अपील दाखिल किया जिसमें किसी प्रमोद कुमार चौधरी, अधिवक्ता को न्यायालय की सहायता करने के लिए न्याय मित्र के तौर पर नियुक्त किया गया था।

6. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यद्यपि अ० सा० 2, सूचक ने विचारण के अनुक्रम में घटना को देखने का दावा किया था परन्तु इस साक्षी द्वारा किया गया पूर्वतर कथन जिसपर प्रथम सूचना रिपोर्ट तैयार की गयी थी, स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि

वह कभी भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं था एवं यह कि अ॰ सा॰ 2 ने अपने फर्दबयान में कभी घटनास्थल पर अ॰ सा॰ 3 की उपस्थिति के बारे में नहीं कहा था परन्तु अ॰ सा॰ 3 ने बाजार से मृतक के साथ लौटने एवं अभियुक्त व्यक्तियों को हत्या कारित करते हुए देखने का दावा किया था एवं इस स्थिति में, उन दोनों साक्षियों के परिसाक्ष्यों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है क्योंकि विचारण न्यायालय मामले के इस पहलू पर विचार करने में असफल रहा है एवं इस प्रकार अपीलार्थी एवं अन्य सह-अभियुक्तों के विरूद्ध जिसे इस न्यायालय द्वारा पहले ही दोषमुक्त किया गया है, दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश अभिलिखित करने में एक भारी त्रुटि कारित की है।

7. पक्षकारों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुनने एवं अभिलेख का परिशीलन करने के उपरांत, हम यह पाते हैं कि प्रारंभ में मामला जैसा कि अ॰ सा॰ 2 द्वारा अपने फर्दबयान में पेश किया गया है, यह है कि वापस लौटने के अनुक्रम में उनलोगों ने उन सभी अभियुक्तों को एक बगीचे के निकट पाया, जो यह जानकर कि गनेश्वर पाईक घर जा रहा है, उस स्थान को जल्दी में छोड़ दिया एवं वह (सूचक) एवं उसका भाई घर की ओर जाने लगे क्योंकि वे लोग खाली हाथ थे परन्तु कुछ दूर आगे जाने के उपरांत, उनलोगों ने अपने भाई की चीख सुनी एवं जब वे लोग वहाँ पर वापस आए तो उन्होंने मृतक की गर्दन कटी हुई देखी एवं अभियुक्त को भागते हुए देखने का दावा किया परन्तु अपने साक्ष्य के अनुक्रम में उसने स्वयं को प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने के तौर पर पेश किया जिसमें उसने साक्ष्य दिया है कि जब अभियुक्त व्यक्तियों ने उसके भाई को छेड़ा तो अभियुक्त शशि नाईक एवं कलिंदर नाईक ने मृतक पर तीर चलाए जो इससे घायल होकर धरती पर गिर पड़ा एवं इसपर अभियुक्त काले प्रधान, लम्बु पाईक एवं इस अपीलार्थी ने मृतक की गर्दन काट डाली परन्तु चिकित्सीय साक्ष्य ने कभी भी इस साक्षी के परिसाक्ष्य का समर्थन नहीं किया क्योंकि डॉक्टर ने तीर द्वारा कारित किसी उपहति को नहीं पाया है। अ॰ सा॰ 3 का परिसाक्ष्य भी इसी प्रकार का है, जो और कोई नहीं बल्कि मृतक की विधवा है। इस साक्षी के अनुसार, जब वह अपने पति (मृतक) के साथ बाजार से लौट रही थी तो अभियुक्त व्यक्तियों ने रास्ते में उसके पति को छेड़ा एवं गर्दन काट डाली परन्तु अ॰ सा॰ 2 ने फर्दबयान में कभी भी यह नहीं कहा है कि उसने अपने पति का साथ दिया था। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 3 दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन किए गए अपने पूर्वतर कथन में कभी भी कोई कथन कर चुका प्रतीत नहीं होता है जैसा कि न्यायालय में उसके द्वारा अभिसाक्ष्य दिया गया है, बल्कि वह पुलिस के समक्ष यह कथन कर चुकी प्रतीत होती है कि शाम में जब उसने चीख सुनी तो वह वहाँ गयी एवं अपने पति को मृत पाया। इस साक्षी ने अपने प्रति-परीक्षण में यह भी कहा है कि जब वह घटनास्थल पर पहुँची, तो उसने शोर मचाया एवं तब अ॰ सा॰ 2 आया परन्तु उसके घटनास्थल तक पहुँचने से पहले ही अभियुक्त फरार हो चुके थे जो तथ्य स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अ॰ सा॰ 2 को अभियुक्त व्यक्तियों को भागते हुए देखने का कोई अवसर नहीं था। इसलिए, अभियुक्त व्यक्तियों की पहचान करने वाला अ॰ सा॰ 2 का कोई भी दावा निश्चित रूप से पश्चातवर्ती चिंतन प्रतीत होता है। यह इस तथ्य से भी प्रबलित हो जाता है कि अ॰ सा॰ 2, अपने साक्ष्य के अनुसार, अक्टूबर माह की 6 बजे शाम में मृतक के साथ मंगल बाजार से प्रस्थान किया था जो कि अन्वेषण अधिकारी के अनुसार घटनास्थल से 5 कि॰ मी॰ दूर है एवं, इसलिए, सूचक के घटनास्थल तक पहुँचने तक बिल्कुल अंधेरा हो चुका होगा क्योंकि यह अक्टूबर का माह था जो तथ्य अ॰ सा॰ 2 द्वारा अभियुक्त की पहचान के सम्बन्ध में किसी सम्भावना को स्पष्ट रूप से खारिज करता है। इन परिस्थितियों में, न तो अ॰ सा॰॰ 2 और न ही अ॰ सा॰ 3 विश्वसनीय प्रतीत होता है परन्तु फिर भी विचारण न्यायालय ने इन दोनों साक्षियों के परिसाक्ष्यों पर भरोसा करते हुए दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश अभिलिखित किया है एवं इस प्रकार, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय दण्डादेश को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामत: अपीलार्थी को दोषमुक्त किया जाता है।

8. परिणामस्वरूप, यह अपील अनुज्ञात किया जाता है एवं अपीलार्थी को तत्क्षण निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है, यदि किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हो।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

मदन लाल रवानी

बनाम

मेसर्स भारत कोकिंग कोल लि॰ धनबाद एवं एक अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2279 वर्ष 2005. 24 अगस्त, 2009 को विनिश्चित।

भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 226—रिट अधिकारिता—भूमि के अर्जन के लिए प्रतिकर का दावा—प्रत्यर्थीगण ने यह कहकर याची के दावे को इनकार किया कि वह भूमि का स्वामी नहीं है—लेकिन याची ने सी॰ एस॰ खतियान में की गयी प्रविष्टि एवं राजस्व अभिलेख पेश करके अपना स्वामित्व प्रमाणित करने की कोशिश की—अभिनिर्धारित, रिट अधिकारिता में भूमि के अभिधान के विवादित प्रश्न को विनिश्चित नहीं किया जा सकता है—याची को सक्षम सिविल न्यायालय से यथोचित आदेश प्राप्त करने का निर्देश दिया गया।

(पैरा 10 एवं 11)

अधिवक्तागण.—M/s D. K. Karamkar, A. Keshri, Rupesh Singh, P.C. Jha, For the Petitioner; M/s A. K. Mehta, A. Dutta, For the Respondents.

आदेश

यह रिट याचिका याची द्वारा दिनांक 23.12.2004 के पत्र (उपाबंध 14) के अभिखंडन हेतु दायर की गयी है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थीगण ने उसकी भूमियों के अभिप्रायित अर्जन हेतु प्रतिकर की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है।

2. याची ने दावा किया है कि वह धनबाद जिले में मौजा जमदाही में स्थित खाता सं॰ 59, प्लॉट सं॰ 1284, 388, 926, 348 एवं 381 की 15.07 एकड़ माप की रैयती भूमियों का स्वामी है, जो प्रत्यर्थी बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ द्वारा अर्जित किया गया था, परन्तु भूमियों के अर्जन के लिए उसे कोई प्रतिकर का भुगतान नहीं किया गया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करने हैं कि यद्यपि कार्मिक प्रबंधक, कोयला भवन, धनबाद के हस्ताक्षराधीन निर्गत दिनांक 1 जून, 2002 के पत्र (उपाबंध 3) द्वारा याची के दावे की अभिस्वीकृति दी गयी थी एवं भूमियों के अर्जन के विरूद्ध प्रतिकर के माध्यम से भुगतान की मंजूरी पर विचार करने के लिए सुसंगत दस्तावेजों सहित अपना शपथपत्र पेश करने की अपेक्षा याची से की गयी थी।

4. जब अपेक्षित दस्तावेजों सहित शपथपत्र के पेश किए जाने के उपरांत भी, प्रत्यर्थीगण ने कोई निर्णय नहीं लिया; तो याची ने इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 4792 वर्ष 2004 दाखिल किया एवं दिनांक 13.9.2004 के आदेश द्वारा रिट याचिका को निस्तारित करते समय, इस न्यायालय ने प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों को कार्मिक प्रबंधक द्वारा निर्गत पत्र (उपाबंध 3) के आधार पर याची के दावे को आदेश की तिथि से छह सप्ताह की अवधि के भीतर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया था।

5. आदेश के अनुपालन में, याची ने प्रत्यर्थीगण के सम्बन्धित प्राधिकारियों के समक्ष सभी सुसंगत दस्तावेजों सहित एक नवीन अभ्यावेदन पेश किया परन्तु प्रत्यर्थीगण ने आक्षेपित आदेश (उपाबंध

14) द्वारा याची के दावे को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया है कि भूमि याची की नहीं है एवं यह कि याची किसी प्रतिकर का दावा करने का हकदार ही नहीं है।

6. उपाबंध 1 को निर्दिष्ट करते हुए, जो कि राजस्व केस सं॰ 148 वर्ष 1962-63 में अंचलाधिकारी द्वारा पारित आदेश की एक प्रति है, जिसके द्वारा प्रश्नगत भूमि को राजस्व अभिलेखों में याची के नाम से प्रविष्ट करने का आदेश दिया गया था एवं भूमियों के लिए लगान तय किया गया था जिसका भुगतान याची राजस्व अभिलेखों में अपने नाम की प्रविष्टि की तिथि से ही कर रहा है। विद्वान अधिवक्ता यह भी निवेदन करतें है कि प्रत्यर्थी-प्राधिकारीगण ने राजस्व कार्यवाहियों में पारित अंचलाधिकारी के उपरोक्त आदेश पर विचार नहीं किया है और न ही याची द्वारा पेश लगान रसीदों पर विचार किया है।

7. विद्वान अधिवक्ता यह भी निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थीगण ने 1919 के सी॰ एस॰ बन्दोबस्ती में तैयार भूमियों के उपरोक्त प्लॉटों के सम्बन्ध में एक खतियान को निर्दिष्ट करके भ्रमित करने की कोशिश की है। राजस्व अभिलेख जो उपरोक्त भूमियों (उपाबंध-16) के सम्बन्ध में तैयार किए गए हैं, स्पष्ट रूप से याची के नाम की संपुष्टि करता है जो उसे इसका स्वामी घोषित करता है।

8. जहाँ तक कार्मिक प्रबन्धक द्वारा निर्गत पत्र के सम्बन्ध में विवाद के अन्य मुद्दों का सम्बन्ध है, याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थीगण ने एक तुच्छ एवं भ्रामक अभिवाक् अपनाया है कि पत्र जाली है यद्यपि पत्र कार्मिक प्रबन्धक, मेसर्स भारत कोकिंग कोल लिमिटेड के हस्ताक्षराधीन निर्गत किया गया था।

9. प्रति शपथपत्र में अंतर्विष्ट कथन को निर्दिष्ट करते हुए, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि खतियान सहित राजस्व अभिलेखों का सत्यापन होने पर यह प्रतीत होता है कि भूमियाँ याची की नहीं थी एवं वह किसी प्रतिकर का दावा करने का हकदार नहीं है।

10. चाहे जो भी हो, परस्पर विरोधी निवेदनों से यह प्रतीत होता है कि याची के प्रश्नगत भूमि के स्वामी होने के दावे पर सी॰ एस॰ खतियान में की गयी प्रविष्टियों एवं अन्य तथ्यों के संदर्भ में प्रत्यर्थीगण द्वारा विवाद किया गया है। इसलिए यह विवाद प्रत्यक्ष रूप से तथ्य का एक विवादित प्रश्न है जिसपर यह न्यायालय अपनी रिट अधिकारिता का प्रयोग करके विचार नहीं कर सकता है।

11. उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, याची को संदर्भाधीन भूमियों पर अपने अधिकार एवं अभिधान की घोषणा करने के लिए विधि के सक्षम न्यायालय के समक्ष यथोचित आदेश प्राप्त करने की छूट देते हुए यह रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

12. इन सम्प्रेक्षणों के साथ, यह रिट आवेदन निस्तारित किया जाता है।

13. इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुपुर्द की जाय।

माननीय अमरेश्वर सहाय एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

सुजन मंडल (816 में)

अमूल्य मंडल एवं अन्य (750 में)

बनाम

झारखण्ड राज्य (दोनों में)

दां अपील सं॰ 816, 750 वर्ष 2002. 22 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

सत्र केस सं॰ 41 वर्ष 2000/112 वर्ष 2002 में अपर सत्र न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय सं॰ 1, पाकुड़ द्वारा पारित दिनांक 7.10.2002 एवं 8.10.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध।

भारतीय दण्ड संहिता, 1860—धारा 302/34—हत्या—अभिनिर्धारित, साक्ष्य की असंगतता प्रत्यक्ष रूप से अभिलेख पर है—मृतक को गोली लगने से हुई उपहति की प्रकृति जिससे दायें फेफड़े के निचले भाग का फटाव एवं वक्षीय गुहा के दायें भाग में तरल रक्त का जमाव हुआ, यह इस बात को संदेहास्पद बनायेगा कि वह एक भी शब्द बोलने की स्थिति में था—अग्रेतर अभिनिर्धारित, उक्त कारण से अभियोजन द्वारा प्रतिपादित मृत्युकालिक घोषणा का सिद्धांत विश्वास ही उत्पन्न नहीं करता है एवं यह कहा जा सकता है कि अभियोजन अपीलार्थीगण के विरूद्ध लगाये गए आरोपों को प्रमाणित करने में पूर्णतया असफल रहा है—दोषसिद्धि एवं दण्डादेश अपास्त। (पैरा 14 से 18)

अधिवक्तागण.—M/s Bibhuti Pandey, Manish Kumar, For the Appellants; A.P.P., For the State.

न्यायालय द्वारा.—सम्मिलित निर्णय से उद्भूत दोनों अपीलों को एक साथ सुना गया था एवं इस सम्मिलित निर्णय द्वारा निस्तारित किया जा रहा है।

2. अपीलार्थीगण को अपने सामान्य आशय के अग्रसारण में किसी रंजीत मंडल की हत्या कारित करने के लिए विचारण पर रखा गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलार्थीगण को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषी पाकर उनमें से प्रत्येक को आजीवन कारावास एवं 2,000/- रू॰ के जुर्माने का भुगतान करने एवं व्यतिक्रम में एक वर्ष का कारावास भुगतने से दण्डित किया था।

3. अभियोजन का मामला यह है कि 31.8.1999 को सूचनादातृ पारूल मंडल (अ॰ सा॰ 9) के पति रंजीत मंडल लगभग 7.15 बजे शाम में बैटरी खरीदने के लिए बाहर गया हुआ था एवं इस प्रकार, सूचनादातृ लालटेन लेकर बरामदे में उसके आने का इंतजार कर रही थी। लगभग 15 मिनट के बाद जब रंजीत मंडल बैटरी खरीदने के उपरांत बरून मंडल के घर के निकट पहुँचा, तो अपीलार्थी सुजन मंडल ने उसपर गोली चला दी जिसपर रंजीत मंडल यह चिल्लाते हुए भाग गया कि उसे गोली मार दी गयी है परन्तु कुछ दूरी पर जाने के उपरांत वह गिर पड़ा। यह सब देखकर, जब सूचनादातृ उस स्थान पर दौड़ी, तो उसने अन्य अपीलार्थियों को अपने-अपने घरों की ओर भागते हुए देखा। वहाँ पहुँचकर उसने अपने पति को घायल पाया जिसने प्रकट किया कि यह सुजन मंडल था जिसने गोली मारी थी। तदुपरांत वह अन्य लोगों की मदद से अपने पति को घर ले आयी जहाँ उपहतियों के कारण उसके पति की मृत्यु हो गयी।

4. ऐसी सूचना को प्राप्त करके जब हीरनपुर थाने के प्रभारी अधिकारी, एम॰ सिंह सूचनादातृ के घर पहुँचे, तो उन्होंने सूचनादातृ का फर्दबयान 1.9.1999 को लगभग 2.30 बजे अभिलिखित किया जहाँ उसने बताया कि अभियुक्त व्यक्तियों ने उसके पति की हत्या कर दी थी क्योंकि अभियुक्त व्यक्तियों को मृतक ने ताड़ के पेंड़ को काटने नहीं दिया था जिससे झगड़ा हुआ था एवं उनलोगों बुरे परिणामों की धमकी दी थी। फर्दबयान के आधार पर एक औपचारिक प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श 5) दर्ज की गयी थी जिसके द्वारा केस को अपीलार्थीगण के विरूद्ध संस्थित किया गया था एवं मामले को अन्वेषण अधिकारी (अपरीक्षित) द्वारा अन्वेषण के लिए लिया गया था, जिन्होंने शव की मृत्यु समीक्षा करके मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तैयार किया। अन्वेषण अधिकारी ने गौर मंडल (अ॰ सा॰ 10) की उपस्थिति में अभिग्रहण सूची में घटनास्थल से बैटरी एवं रक्त मिश्रित मिट्टी को अभिग्रहित किया। जब शव को मृत्यापरांत परीक्षण के लिए भेजा गया था, तो इसे डॉ॰ सुशील कुमार मेहरोत्रा (अ॰ सा॰ 7) द्वारा किया गया था, जिन्होंने शव परीक्षण करके 2.5 cm. x 1.5 cm. के प्रवेश-जख्म मृत्यु पूर्व जख्म

पाया जिसके चारों ओर 16cm. x 16cm माप के व्यास के आकार में गोदन एवं जला हुआ था जो कमीज एवं गंजी के तत्सम था जिस जख्म से होकर कुछ तरल बाहर आ रहा था। 2.0 cm. x 1cm. आकार का एक निकास-जख्म इंटरकोस्टल स्पेस के बीच 2cm जगह में पूरे गंजी के तत्सम मध्य रेखा के दायें पाया गया था। आंतरिक परीक्षा करने पर दायीं चतुर्थ पसली का अस्थिभंग एवं दायें फेफड़े का निचला उद्‌गम बिंदू फटा हुआ था एवं वक्षीय गुहा मे दायें भाग में तरल रक्त पाया गया था।

5. डॉक्टर की राय के अनुसार, निकट से आग्नेयायुध उपहति के कारण मृत्यु दम घुटने एवं सदमे के कारण कारित हुआ था। मृत्योपरांत परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श 2 के तौर पर प्रमाणित किया गया है।

6. अन्वेषण की समाप्ति के उपरांत, पुलिस ने अपीलार्थीगण के विरूद्ध आरोपपत्र पेश किया जिसपर अपराध का संज्ञान लिया गया था। मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द किए जाने के उपरांत, आरोपों को विरचित किया गया था जिसका दोषी न होने का अपीलार्थीगण ने अभिवाक् किया एवं विचारित किए जाने का दावा किया।

7. अभियोजन ने आरोपों को प्रमाणित करने के क्रम में कुल दस साक्षियों की परीक्षा की। उनमें से, पारूल देवी (अ॰ सा॰ 9) सूचनादातृ ने स्वयं को घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा किया। अ॰ सा॰ 1, गौर मंडल मृतक के पिता ने बयान दिया है कि गोली चलने की आवाज सुनकर, जब वह घटनास्थल पर पहुँचा, तो उसने रंजीत कुमार को यह कहते हुए सुना कि सुजन मंडल ने बरून मंडल के आदेश पर गोली चलायी थी जबकि अ॰ सा॰ 8 शम्भु मंडल, मृतक के भाई ने बयान दिया है उसका भाई यह कह रहा था कि यह सुजन मंडल था जिसने उसपर गोली चलायी थी। अन्य साक्षीगण अ॰ सा॰ 2, 3, 4, 5 एवं 6 को जो उसी स्थान के निवासी हैं पक्षद्रोही घोषित किया गया है।

8. लेकिन, विचारण न्यायालय ने अ॰ सा॰ 8 एवं 9 के परिसाक्ष्यों पर अनुचित रूप से भरोसा करके अपीलार्थी को दोषी पाया एवं इस प्रकार यथा उपरोक्त दोषसिद्धि का निर्णय एवं दण्डादेश अभिलिखित किया।

9. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यद्यपि अ॰ सा॰ 9, मृतक की विधवा ने स्वयं को एक प्रत्यक्षदर्शी होने का दावा किया है परन्तु उसका अपने बरामदा से घटना को देखने का दावा अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य से असत्य प्रमाणित हो जाता है। इसके अतिरिक्त, उसके मकान के निकट होने वाली घटना के परिसाक्ष्य इस तथ्य से मिथ्या प्रमार्णित हो जाते हैं कि घटनास्थल उसके मकान से 30 गज दूर है एवं इस प्रकार, जब घटना रात में उसके मकान से इतनी अधिक दूरी पर घटित हुई तो वह घटना को देखने की स्थिति में नहीं होगी।

10. अग्रेतर निवेदन यह है कि दोनों व्यक्तियों, अर्थात्, बरून मंडल एवं सुजन मंडल की सह-अपराधिता के बारे में मृतक द्वारा किए गए प्रकटीकरण से सम्बन्धित अभियोजन वृत्तांत का अन्य भाग कभी भी विश्वास उत्पन्न नहीं करता है क्योंकि इस सम्बन्ध में साक्षियों के परिसाक्ष्य दुर्बलताओं से पूर्ण हैं, फिर भी विचारण न्यायालय ने वृत्तांत के उस भाग पर विश्वास किया एवं इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने अपीलार्थीगण को दोषी अभिनिर्धारित करने में अविधिमान्यता कारित किया एवं, इसलिए, दोषसिद्धि एवं दण्डादेश अपास्त किए जाने योग्य है।

11. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को भी सुना।

12. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने एवं अभिलेख का परिशीलन करने पर, हम पाते हैं कि पारूल देवी (अ॰ सा॰ 9), मृतक की विधवा ने स्वयं को प्रत्यक्षदर्शी होने का दावा किया है क्योंकि उसके अनुसार, जब उसके पति बैटरी खरीदने के लिए घर से बाहर गया, तब वह लालटेन लेकर बरामदा में ही थी एवं उसने वहाँ अमुल्य मंडल एवं अजय मंडल की उपस्थिति को नोटिस किया था यद्यपि वे कुछ दूरी पर थे। उसने अपीलार्थी सुजन मंडल एवं उसके पिता बरूण मंडल को वहाँ पर

खड़े होने को भी गौर किया एवं जब उसका पति उनलोगों के निकट आया तो सुजन मंडल ने अपीलार्थी बरूण मंडल के कहने पर उसपर गोली चलायी। उसका पति गोली से चोट खाकर गिर पड़ा जब उसके श्वसुर, अ॰ सा॰ 1 एवं देवर, अ॰ सा॰ 8 वहाँ पहुँचे, जो उसके पति (रंजीत मंडल) को उसके घर में ले आए जहाँ उसके पति ने ग्रामवासियों के समक्ष प्रकट किया कि सुजन मंडल ने उसे गोली मारी थी। इस साक्षी ने प्रथम बार प्रति-परीक्षण में यह प्रकट किया कि उसके पति को बाँस के पेड़ के निकट गोली मारी गयी थी जो 10 फीट की दूरी पर है परन्तु दूसरी बार, उसने प्रकट किया कि घटनास्थल किसी चौकीदार अर्थात् जतीन के मकान के निकट था जिसका मकान स्वयं उसके अनुसार, उसके मकान से 30 गज की दूरी पर था जो तथ्य अभिग्रहण सूची में दर्ज की गयी प्रविष्टि से प्रमाणित होता है जो दर्शाता है कि शव को बारूण मंडल के मकान से 30 गज की दूरी पर पाया गया था जिसका मकान मृतक के मकान से सटा हुआ है एवं इस प्रकार यह तथ्य निश्चित रूप से इंगित करता है कि घटना मृतक के मकान के निकट घटित नहीं हुई जैसा कि अ॰ सा॰ 1 द्वारा अभिसाक्ष्य दिया गया है, बल्कि यह प्रतीत होता है कि घटना उसके मकान से कम-से-कम 30 गज की दूरी पर घटित हुई एवं उस दशा में, सूचनादातृ निश्चित रूप से घटना देखने की स्थिति में नहीं होगी विशेषकर तब जब अंधेरा था जो तथ्य अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य से प्राप्त हुआ है जिसके अनुसार घटना के समय वह लालटेन लेकर बरामदे में थी जो यह सुझाव देता है कि उस समय तक अंधेरा हो चुका होगा। उसके अतिरिक्त साक्षियों में से एक अ॰ सा॰ 6 के साक्ष्य से हम पाते हैं कि घटना के समय बिल्कुल अंधेरा था।

13. उसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 9 के बरामदे में उपस्थित होने का दावा अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य से मिथ्या प्रमाणित हो जाता है जो कि और कोई नहीं, मृतक का पिता है, जिसने बयान दिया है कि जब उसने गोली चलने की आवाज सुनी तो वह बरामदे में ही था एवं सभी सदस्य मकान के भीतर ही थे एवं उसके साक्ष्य के अनुसार भी घटनास्थल उसके मकान से बिल्कुल दूर था। यदि अ॰ सा॰ 9 बरामदे में होती जैसा कि उसने दावा किया है तो अ॰ सा॰ 1 को उसकी उपस्थिति के बारे में कहना चाहिए था। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 1 का साक्ष्य अ॰ सा॰ 9 के इस साक्ष्य को मिथ्या प्रमाणित करता है कि उसने अभियुक्तों को मृतक की हत्या कारित करने हुए देखा था।

14. अब अभियोजन केस के दूसरे पहलू की ओर आते हुए जहाँ यह दर्शित किया गया है कि जब साक्षी घटनास्थल पर आये जहाँ मृतक गोली की चोट लगने से गिरा पड़ा था तो मृतक ने उनलोगों से प्रकट किया कि सुजन मंडल ने बरूण मंडल के आदेश पर उसपर गोली चलायी थी परन्तु साक्ष्य का यह भाग भी दुर्बलताओं से परिपूर्ण है।

15. जहाँ तक मृत्युकालिक घोषणा का सम्बन्ध है, इसे किसी मरते हुए आदमी द्वारा दिया गया पवित्र कथन माना जाता है जिसके बारे में यह समझा जाता है कि उस समय वह झूठ नहीं बोलेगा एवं इसलिए, किसी मृत्युकालिक घोषणा को अधिक महत्व प्रदान किया जाना चाहिए विशेष रूप से तब जब यह अन्य स्वतंत्र साक्षियों द्वारा सम्पोषित हो। परन्तु भरोसा करने से पूर्व इसे विश्वास उत्पन्न करना चाहिए ताकि इसपर कार्यवाही को सुरक्षित बनाया जा सके।

16. वर्तमान मामले में, अ॰ सा॰ 1 के साक्ष्य के अनुसार, जब वह गोली की आवाज सुनकर घटनास्थल पर आया तो उसने अपने पुत्र रंजीत मंडल को घायल पड़ा हुआ पाया जिसने उन्हें एवं अन्य व्यक्तियों को जो वहाँ पर आये थे यह बताया कि सुजन मंडल ने बरूण मंडल के आदेश पर उसपर गोली चलायी थी परन्तु यह तथ्य अ॰ सा॰ 9 के साक्ष्य से सम्पोषण नहीं प्राप्त करता है क्योंकि उसके अनुसार जब वह उस स्थान पर पहुँची जहाँ उसका पति गोली की चोट खाकर धरती पर गिर पड़ा था, तो उसके श्वसुर (अ॰ सा॰ 1) एवं देवर (अ॰ सा॰ 8) भी वहाँ पहुँचे और तब उनलोगों ने उसके पति को उसके घर ले आये जहाँ उसके पति ने उसे बताया कि सुजन मंडल ने बरूण मंडल के आदेश पर

उसपर गोली चलायी थी परन्तु उसके देवर शम्भु मंडल (अ॰ सा॰ 8) का साक्ष्य पूर्णतया विपरीत है जहाँ वह अपने प्रति-परीक्षण में कहता है कि जब वह घटनास्थल पर पहुँचा तो उसका भाई कई गाँववालों की उपस्थिति में कह रहा था कि उसे गोली मारी गयी थी। इसे गौर किया जाए कि साक्षी हमलावर के नाम पर स्पष्टत: चुप हैं इसके अतिरिक्त वह कहता है कि जब वह अन्य गाँववालों की मदद से अपने भाई रंजीत मंडल को अपने घर लाया तो उसके भाई ने घर में एक भी शब्द नहीं बोला। इस प्रकार, इस सम्बन्ध में साक्ष्य की असंगतता अभिलेख पर प्रकट है जहाँ एक साक्षी कहता है कि मृतक ने घटनास्थल पर हमलावरों के नाम बताये थे जबकि मुख्य साक्षी, अर्थात्, अ॰ सा॰ 9 कहता है कि इसे घर पर प्रकट किया गया था। उसके अतिरिक्त अ॰ सा॰ 9 अपने फर्दबयान में कहती है कि उसके पति ने बताया था कि सुजन मंडल ने उसपर गोली चलायी थी। उसने अपने फर्दबयान में बरूण मंडल द्वारा अदा की गयी भूमिका के बारे में कुछ भी नहीं कहा है, सर्वोपरि, मृतक को गोली लगने से हुई उपहति की प्रकृति से जिससे वक्षीय गुहा के दायीं भाग में तरल रक्त सहित दायें फेफड़े के निचले उद्‌गम बिन्दु का फटना कारित हुआ, यह सदैव संदेहास्पद होगा कि क्या ऐसी दशा में मृतक एक भी शब्द बोलने में सक्षम होगा। यह संदेह डॉक्टर (अ॰ सा॰ 7) के साक्ष्य की दृष्टि में और भी गहरा हो जाता है जिसने बयान दिया है कि सामान्यतया इतने निकट से गोली लगने से घायल व्यक्ति कोई कथन करने की स्थिति में नहीं होगा क्योंकि तत्काल मौत की संभावना होगी।

17. उपर विवेचित कारणों से, अभियोजन द्वारा प्रतिपादित मृत्युकालिक घोषणा के सिद्धांत पर बिल्कुल भी विश्वास नहीं किया जा सकता है एवं इस प्रकार, अभियोजन को अपीलार्थियों के विरूद्ध आरोप प्रमाणित करने में पूर्णतया असफल कहा जा सकता है। मामले की उस दृष्टि में, दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय एवं दण्डादेश को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

18. परिणामस्वरूप, सभी अपीलार्थियों को उनके विरूद्ध लगाये गए आरोप से दोषमुक्त किया जाता है। अपीलार्थी सुजन मंडल को तत्काल निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है जबकि अन्य अपीलार्थियों को जमानत बंधपत्रों के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

19. परिणामत:, दोनों ही अपीलों को अनुज्ञात किया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

बिनोद कुमार सिंह

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

डब्ल्यू पी॰ (क्रि॰) सं॰ 22 वर्ष 2009, 23 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

(क) कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984—धारा 7(2)(a) सह-पठित दंड प्रक्रिया संहिता 1973—धारा 125—संशोधन–दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन एक कार्यवाही में दाखिल किया गया–ऐसे संशोधन कुटुम्ब न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किये जा सकते हैं। (पैरा 15 से 20)

(ख) कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984—धारा 10(2) सह-पठित कुटुम्ब न्यायालय (झारखण्ड उच्च न्यायालय) नियमावली 2004—नियम 4(c)— कुटुम्ब न्यायालय का अधिकार क्षेत्र–दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन कोई कार्यवाही शुद्ध रूप से दांडिक

कार्यवाही नहीं है बल्कि ऐसी कार्यवाही अर्द्ध सिविल और अर्द्ध दांडिक कार्यवाही है–अगर विचारण न्यायालय ने संशोधन से संबंधित आवेदन स्वीकार कर लिया है, तब ऐसा नहीं कहा जा सकता कि न्यायालय ने अधिकारिता से संबंधित गलती की है। (पैरा 19)

निर्णयज विधि.–1997 Cr.L.J. 4306(FB); 2004 Cr.L.J. 2351; (1978)4 SCC 70; 1984 Cr.L.J. 1257—Discussed.

अधिवक्तागण.–Mr. Mahesh Tiwari, For the Petitioner; Mr. R.K. Singh, For the State; Mr. Ranjan Kumar, For the Respondent No. 2.

आदेश

इस आवेदन में उठाया गया प्रश्न यह है कि क्या कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 7(2)(a) के अधीन कुटुम्ब न्यायालय के अधिकारिता का प्रयोग करते हुए दांडिक न्यायालय होने के नाते दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में संशोधन के लिए दाखिल आवेदन को स्वीकार करने का अधिकार रखता है?

2. इस आवेदन को उत्पन्न करने वाले तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने याची से भरण-पोषण प्राप्त करने का दावा इस आधार पर करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन एक आवेदन दाखिल किया था कि उसने हिन्दु विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 8(1) के अधीन टौलीगंज विवाह अधिकारी, कोलकाता के समक्ष दिनांक 20.10.2003 को इस याची के साथ विवाह किया था परन्तु उसके द्वारा उसका भरण-पोषण नहीं किया जा रहा है। उक्त याचिका के आधार पर भरण-पोषण केस संख्या 142 वर्ष 2007, के तौर पर एक मामला दर्ज किया गया था जो शुरु में एकपक्षीय तौर पर अग्रसर हुआ लेकिन, तत्पश्चात्, प्रत्यर्थी सं॰ 2 के उपस्थित होने के पश्चात एकपक्षीय सुनवाई का आदेश वापस ले लिया गया था। तत्पश्चात सुनवाई का आदेश वापस ले लिया गया था। तत्पश्चात् याची ने अपना उत्तर दाखिल किया जिसमें उसने इन्कार किया कि आवेदक उसकी विधिपूर्वक विवाहिता पत्नी है। साक्ष्य प्राप्त करने हेतु मामले की सुनवाई शुरू की गयी जिसमें तीन गवाहों का परीक्षण किया गया था, जिन्होंने साक्ष्य दिया की विवाह टौलीगंज विवाह अधिकारी-कोलकाता के समक्ष संपन्न हुआ था। तत्पश्चात, प्रत्यर्थी 2 की ओर से संशोधित हेतु आवेदन दाखिल किया गया जिसमें उसने यह तथ्य सम्मिलित करना चाहा कि उसने याची के साथ दिनांक 16.8.2003 को टौलीगंज, कोलकात्ता स्थित काली मंदिर में विवाह किया था और यह विवाह दिनांक 20.10.2003 को विवाह रजिस्ट्रार, अगरपारा, कोलकत्ता के समक्ष निबन्धित किया गया था।

3. याची की ओर से संशोधन हेतु याचिका पर यह कथन करते हुए आपत्ति की गयी थी कि कुटुम्ब न्यायालय (झारखण्ड उच्च न्यायालय) नियमाबली, 2004 के नियम 4(c) सह-पठित कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 10(2) के निबंधनों के अनुसार भरण-पोषण के मामले की सुनवाई करने वाला कुटुम्ब न्यायालय एक दांडिक न्यायालय की तरह कार्य करता है जहाँ दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान लागू होंगे और अत: कुटुम्ब न्यायालय को याची का संशोधन संबंधित मामला सुनने का औचित्य नहीं है।

4. यद्यपि, विचारण न्यायालय ने इस आधार पर कि दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय IX के अधीन कार्यवाही सिविल सदृश है और न्यायालय संशोधन याचिका में विशिष्ट तथ्यों को सम्मिलित करने पर संपूर्ण न्याय करने में ज्यादा सक्षम होगा, दिनांक 5.1.2009 को पारित अपने आदेश, जिसे चुनौती दी गयी है, द्वारा याची की ओर से दाखिल संशोधन याचिका को अनुज्ञात किया।

5. इस आदेश से व्यथित होकर, यह याचिका दाखिल की गयी है।

6. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता यह निवेदन करते हैं कि कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 7(2)(a) के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते समय, कुटुम्ब न्यायालय (झारखण्ड उच्च न्यायालय) नियमावली, 2004 के नियम 4(c) सह-पठित कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 10(2) के निबंधनों के अनुसार, दांडिक न्यायालय की तरह कार्य करता है जहाँ धारा 125

के अधीन अथवा दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय IX के अधीन उपलब्ध प्रावधान मामले की सुनवाई पर लागू होंगे। अपने दावे के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा निर्णीत **सत्यभाभा बनाम रामचंद्रन (1997 Cr. L.J. 4306)** के मामले को निर्दिष्ट किया है।

7. अत:, यह निवेदन किया गया है कि कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 7(2)(a) के अधीन उपलब्ध शक्तियों का प्रयोग करते हुए कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष जारी कार्यवाही एक ऐसी कार्यवाही जहाँ सिर्फ दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान लागू होते हैं और इसलिए कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम अथवा दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत ऐसे प्रावधानों की अनुपस्थिति की दृष्टि में न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा दाखिल संशोधन याचिका को अनुज्ञात करके अधिकारिता संबंधी गलती की है और अत: आक्षेपित आदेश खारिज करने लायक है।

8. इसके विरुद्ध, प्रत्यर्थी सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय IX के अधीन चल रही कार्यवाही में संशोधन हेतु दाखिल याचिका अनुज्ञात करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता से कोई विशेष प्रतिषेध नहीं है और अत: ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि कुटुम्ब न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं॰ 2 की ओर से इप्सित संशोधन अनुज्ञात करने में अधिकारिता संबंधी गलती की है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **सैनुलअब्दीन बनाम बीना एवं एक अन्य (2004 Cr. L.J. 2351)** के मामले में हुए निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

10. परस्पर विरोधी निवेदनों के संदर्भ में सबसे पहले कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम के प्रावधानों पर गौर करने की आवश्यकता है। कुटुम्ब न्यायालय धारा 2(d) के अधीन परिभाषित किया गया है और जिसका अर्थ अधिनियम की धारा 3 के अधीन स्थापित न्यायालय है। अधिनियम की धारा 3 कथन करती है कि अधिनियम द्वारा कुटुम्ब न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता एवं शक्तियों के प्रयोग के उद्देश्य से राज्य सरकार उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात और अधिसूचना द्वारा राज्य के प्रत्येक क्षेत्र के शहर, जिसकी आबादी 10 लाख से अधिक हो, में कुटुम्ब न्यायालय की स्थापना करेगी।

11. धारा 7 वह प्रावधान करती है जो कुटुम्ब न्यायालय का अधिकारिता को परिभाषित अथवा प्रदत्त करता है और जो निम्नलिखित है:-

*7. **अधिकारिता.**-(1) इस अधिनियम के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए,-*

(a) कुटुम्ब न्यायालय को, स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट प्रकृति के वादों और कार्यवाहियों की बाबत, तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन किसी जिला न्यायालय या किसी अधीनस्थ सिविल न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य पूर्ण अधिकारिता होगी और वह उसका प्रयोग करेगा।

(b) कुटुम्ब न्यायालय के बारे में, ऐसी विधि के अधीन ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने के प्रयोजनों के लिये, यह समझा जायेगा कि वह ऐसे क्षेत्र के लिये, जिसपर कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता का विस्तार है, यथास्थिति, जिला न्यायालय या अधीनस्थ सिविल न्यायालय है।

***स्पष्टीकरण.**-इस उप-धारा में निर्दिष्ट वाद और कार्यवाहियाँ निम्नलिखित प्रकृति के वाद और कार्यवाहियाँ हैं, अर्थात□-*

(a) किसी विवाह के पक्षकारों के बीच (विवाह को, यथास्थिति, अकृत और शून्य घोषित करने के लिये या विवाह को बातिल करने के लिये) विवाह की अकृतता या दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन या न्यायिक पृथक्करण विवाह के विघटन की डिक्री के लिये कोई वाद या कार्यवाही;

(b) किसी व्यक्ति के विवाह की विधिमान्यता के बारे में या उसकी वैवाहिक प्रास्थिति के बारे में घोषणा के लिये कोई वाद या कार्यवाही;

(c) किसी विवाह के पक्षकारों के बीच ऐसे पक्षकारों की या उनमें से किसी की सम्पत्ति बाबत कोई विवाह या कार्यवाही;

(d) किसी वैवाहिक सम्बन्ध से उत्पन्न परिस्थितियों में किसी आदेश या व्यादेश के लिए कोई वाद या कार्यवाही;

(e) किसी व्यक्ति के धर्मजत्व के बारे में किसी घोषणा के लिए कोई वाद या कार्यवाही;

(f) भरण-पोषण के लिए कोई वाद या कार्यवाही;

(g) किसी व्यक्ति की संरक्षकता अथवा किसी अवयस्क की अभिरक्षा या उस तक पहुँच के सम्बन्ध में कोई वाद या कार्यवाही।

(2) इस अधिनियम के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुये किसी कुटुम्ब न्यायालय को-

(a) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) के अध्याय 9 के अधीन (जो पत्नी, सन्तान और माता-पिता के भरण-पोषण के लिए आदेश के सम्बन्ध में है) किसी प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोक्तव्य अधिकारिता; और

(b) ऐसी अन्य अधिकारिता, जो किसी अन्य अधिनियमिति द्वारा उसको प्रदत्त की जाये, भी होगी और वह उसका प्रयोग करेगा।''

धारा 8 ऐसे सभी विषयों से निपटने की सभी अन्य न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित करता है जिसके सम्बन्ध में, अधिनियम के अधीन कुटुम्ब न्यायालय को अधिकारिता प्रदान किया गया है। यह इस बात का भी प्रावधान करता है कि धारा 7 में निर्दिष्ट प्रकृति की प्रत्येक कार्यवाही या वाद कुटुम्ब न्यायालय को अंतरित हो जाएगा जब भी कोई कुटुम्ब न्यायालय स्थापित किया जाता है। धारा 10 कुटुम्ब न्यायालयों द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रिया का वर्णन करता है। यह इस प्रकार है:-

*10. **प्रक्रिया साधारणत.**-(1) इस अधिनियम के अन्य उपबन्धों और नियमों के अधीन रहते हुये, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (5 वर्ष 1908) और तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबन्ध किसी कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष वादों और (दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) के अध्याय 9 के अधीन कार्यवाहियों से भिन्न) कार्यवाहियों को लागू होंगे और संहिता के उक्त उपबन्धों के प्रयोजनों के लिये कुटुम्ब न्यायालय को सिविल न्यायालय समझा जायेगा और उसे ऐसे न्यायालय की सभी शक्तियाँ होंगी।*

(2) इस अधिनियम के अन्य उपबन्धों और नियमों के अधीन रहते हुए दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) या उसके अधीन बनाये गये नियमों के उपबन्ध, किसी कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष उस संहिता के अध्याय 9 के अधीन कार्यवाहियों को लागू होंगे।

12. उसी समय कुटुम्ब न्यायालय (झारखंड उच्च न्यायालय) नियमावली के नियम 4(c) पर विचार किए जाने की जरूरत है जो निम्नवत पठित है:-

4(c) दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन आवेदन या दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा IX के अधीन अन्य आवेदन के सम्बन्ध में उसी संहिता के प्रावधान लागू होंगे।

13. परिशीलन करने पर अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधान स्पष्टत: दर्शाएँगे कि कुटुम्ब न्यायालय एक भिन्न प्रकृति की अधिकारिता प्रदान करके स्थापित न्यायालय है। जिला न्यायालय और अन्य अधीनस्थ सिविल न्यायालयों द्वारा प्रयोक्तव्य अधिकारिता का प्रयोग सिविल प्रक्रिया संहिता के अनुसार किया जाएगा और दण्डाधिकारियों द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय IX के अधीन धारा 6 के मुताबिक स्थापित दांडिक न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य अधिकारिता का प्रयोग उस संहिता के अनुसार किया

जाएगा। अधिनियम की धाराएँ 7(1) एवं 7(2) के अधीन कुटुम्ब न्यायालय को प्रदत्त दो प्रकार की अधिकारिता में अधिनियम के प्रावधानों में सर्वत्र स्पष्ट विभेद किया गया है। स्पष्टीकरण में प्रगणित वाद और कार्यवाही सिविल प्रकृति के है और उन्हें सिविल प्रक्रिया संहिता के अनुसार निपटाने का निर्देश है। एक विशेष अभिकल्पित उपबंध हैं जो कथन करता है कि धारा 7 (1) के प्रावधानों के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते समय, कुटुम्ब न्यायालय को अपने सामने प्रस्तुत वाद अथवा कार्यवाही की प्रकृति के आधार पर जिला न्यायालय समझा जाएगा। धारा 10(1) में एक और अभिकल्पित उपबन्ध है जो कथन करता है कि धारा 7(1) के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते समय कुटुम्ब न्यायालय को 'सिविल कोर्ट समझा जाएगा और उसे ऐसे न्यायालय की समस्त शक्तियाँ होंगी। निबंधित अभिकल्पित उपबन्ध स्पष्टत: दर्शाता है कि सिर्फ सिविल प्रक्रिया संहिता के अनुसार धारा 7(1) के स्पष्टीकरण में प्रगणित वाद अथवा कार्यवाही को निपटाते समय और धारा 7 (1) के अधीन प्रदत्त अधिकारिता का प्रयोग करते समय ही कुटुम्ब न्यायालय को सिविल न्यायालय समझा जाएगा।

14. कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम के उक्त प्रावधान को दृष्टि में रखते हुए, माननीय केरल उच्च न्यायालय ने **सत्यभाभा बनाम रामचंद्रन (ऊपर)** के मामले में अभिनिर्धारित किया था कि कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 7(2)(a) के अधीन प्रदत्त अधिकारिता का प्रयोग करते समय कुटुम्ब न्यायालय एक दांडिक न्यायालय की तरह कार्य करता है न कि एक सिविल न्यायालय की तरह, सिर्फ यह मुद्दा निर्णय करने के लिए कि कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित आदेश की परिणामित चुनौती दिये जाने पर सिविल पुनरीक्षण आवेदन में अथवा दांडिक पुनरीक्षण आवेदन में होगी। परन्तु, इस मामले में अंतर्ग्रस्त मुद्दों को विनिश्चित करने में उक्त प्रतिपादना का पालन करने में मुझे कुछ संकोच है।

15. यह सुनिश्चित है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन किसी आवेदन में पारित आदेश विभिन्न पक्षों के अधिकारों और बाध्यता/कर्त्तव्यों को अंतिम रूप से सुनिश्चित नहीं करता है और उक्त धारा पत्नी, बच्चों और माता-पिता के भरण-पोषण हेतु संक्षिप्त उपचार प्रदान करने की दृष्टि से अधिनियमित की गयी है। दांडिक न्यायालय का कोई निर्णय की पक्षों के बीच वैध विवाह है, दोनों पक्षों के बीच चल रही सिविल कार्यवाही में निर्णायात्मक तौर पर प्रभावकारी नहीं होगी। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन प्रावधान का उपयोग विधान मंडल द्वारा अति निर्धन महिलाओं, बच्चों अथवा माता-पिता जो सामाजिक परिवेश के शिकार है को प्रदत्त अधिकारों को विफल करने हेतु नहीं किया जा सकता है।

16. रमेश चंद्र कौशल बनाम वीणा कौशल [(1978)4 SCC 70] में माननीय न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 की व्याख्या पर विचार करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

> *"9. यह प्रावधान सामाजिक न्याय का मापदंड है और महिलाओं एवं बच्चों को सुरक्षित करने हेतु अधिनियमित किया गया है और अनुच्छेद 39 द्वारा प्रबलित अनुच्छेद 15 (3) की संवैधानिक व्यापकता की परिधि में आता हैं। हमें कोई संदेह नहीं है कि कानून न्यायालय द्वारा अर्थान्वयन का आह्वान करती कोई संदेह नहीं है कि कानून की धाराएँ कोई स्तंभित लेखन नहीं बल्कि स्पंदित शब्द है जिन्हें सामाजिक कर्त्तव्यों को पूरा करना है कमजोर वर्गों जैसे महिलाएं एवं बच्चों के लिए संवैधानिक तद्नुभूति की ध्यानमग्न उपस्थिति व्याख्या को अनुप्राणित करनी चाहिए यदि इसे अपना सामाजिक दायित्व और प्रासंगिकता सिद्ध करनी है। ऐसे देखने पर, दो विकल्पों में से उस व्याख्या को, जो निराश्रितों के हितों को आगे बढ़ाती हो, ग्रहण करने में चयनकारी होना संभव है।''*

17. हमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 126 में उपलब्ध प्रावधान को ध्यान में रखना चाहिए जो उस प्रक्रिया की चर्चा करता है जिसका दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में अनुसरण किया जाता है। धारा 126 के उपधारा 2 का परन्तुक एकपक्षीय आदेश पारित करने का प्रावधान अनुध्यात करता है और ठीक इसी समय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 127 भत्तों में बदलाव को नियत करती है। इस प्रकार का अवलम्ब विशेषत: एकपक्षीय कार्यवाही में अवलम्ब और इसकी वापसी सिविल प्रक्रिया संहिता में उपलब्ध है जबकि दांडिक न्यायालय को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन कार्यवाही को छोड़ कर किसी भी अन्य दांडिक कार्यवाही में उस अवलम्ब को लेने की शक्ति नहीं है। अत: कठोर निर्वचन में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन कार्यवाही को शुद्ध दांडिक प्रकृति वाली कार्यवाही नहीं माना जा सकता है बल्कि यह एक अर्द्ध सिविल और अर्द्ध दांडिक प्रकृति वाली कार्यवाही प्रतीत होती है।

18. इस प्रक्रम पर मैं **सैनुलाअब्धीन बनाम बीणा एवं एक अन्य (ऊपर)** के मामले को निर्दिष्ट करना चाहूंगा जहाँ विचार के लिए ठीक ऐसा ही प्रश्न उठा क्या मुस्लिम स्त्री (विवाह-विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 1986 से जुड़े मामले पर विचार करने वाले न्यायालय को संशोधन की याचिका स्वीकार करने की शक्ति है? न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मुस्लिम स्त्री (विवाह-विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 1986 के प्रावधान का पठन दर्शाएगा कि ऐसी कार्यवाही अर्द्ध सिविल और अर्द्ध दांडिक सदृश कार्यवाही है यद्यपि दंडाधिकारी को न्याय निर्णयन प्राधिकारी बनाया गया है। न्यायालय आगे कहती है कि ये मान लेने पर भी कि कार्यवाही शुद्ध दांडिक कार्यवाही है और दण्डाधिकारी को अभिवचन संशोधित करने का विशेष अधिकार नहीं है जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता में है, फिर भी यह (न्यायालय) दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन हस्तक्षेप आवश्यक नहीं बनाती क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता में दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय IX के अधीन दाखिल संशोधन की याचिका अनुज्ञात करने पर विशेष प्रतिषेध नहीं है। वर्तमान स्थिति से मिलती-जुलती एक अन्य स्थिति में अर्थात् **जयप्रकाश सुमन्तराव काले बनाम श्रीमती चंद्रकला जयप्रकाश काले एवं अन्य (1984 Cr. L.J. 1257)** के मामले में बम्बई उच्च न्यायालय ने उस आदेश में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा जिसमें न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में संशोधन की याचिका अनुज्ञात की थी।

19. अत:, विधान मण्डल के आशय को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय हमेशा निराश्रित महिलाओं, बच्चों और माता-पिता के अधिकारों को अग्रसर करने का उद्देश्य के प्रति सजग है और ऐसा करते हुए, यदि विचारण न्यायालय ने संशोधन का आवेदन जो पक्षों के अधिकार का निर्णय नहीं करता है, को स्वीकार किया है, तब ऐसा कभी नहीं कहा जा सकता है कि न्यायालय ने अधिकारिता संबंधी गलती की है।

20. अत:, यह मेरे लिए न्यायोचित नहीं होगा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उपलब्ध असाधारण शक्ति का प्रयोग करते हुए स्वविवेकी आदेश द्वारा हस्तक्षेप करूँ। तद्नुसार यह आवेदन अस्वीकार किया जाता है। लेकिन, यह आदेश पारित करने से पहले, मैं कहना चाहूँगा कि याची को संशोधन याचिका में किए गए दावों का प्रत्युत्तर देने और साक्ष्य देने का अधिकार है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

नगिया देवी

बनाम

सेन्ट्रल कोलफील्ड लिमिटेड एवं अन्य

डब्ल्यू पी॰ (एस॰) संख्या 5672 वर्ष 2007. 24.7.2009 को विनिश्चित।

(क) भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 226—वैकल्पिक उपचार–विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम के अंतर्गत फोरम सिर्फ एक वैकल्पिक विवाद समाधान फोरम है और विवाद के न्याय निर्णयन की न्यायालय की अधिकारिता को बहिष्कृत नहीं करता है। (पैरा 13)

(ख) भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 226—वैकल्पिक उपचार–उपभोक्ता सुरक्षा फोरम बीमा निविदाओं से उद्‌भुत दावों एवं विवादों पर निर्णय करने हेतु न्यायालय की अधिकारिता को बहिष्कृत नहीं करता है। (पैरा 13)

(ग) बीमा विधि–सामुहिक व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना–बीमा दावा–मुआवजा–सी॰ सी॰ एल॰ के कर्मचारी की दुर्घटना के कारण मृत्यु हो गयी जबकि वह डयूटी पर था–लगभग तीन वर्षों के विलम्ब के पश्चात दावा का निवेदन किये जाने के कारण सी॰ सी॰ एल॰ प्राधिकारियों द्वारा दावे से इन्कार किया जा रहा है–अभिनिर्धारित, यह नियोक्ता का दायित्व है कि वह सुनिश्चित करे कि योजना के अंतर्गत लाभ प्राप्त किया जाए और हिताधिकारी को उपलब्ध कराया जाए–प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी को याची को राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया इस व्यतिक्रम अनुबद्धता के साथ कि निश्चित अवधि के भीतर भुगतान न होने पर 18% ब्याज देय होगा। (पैरा 14 से 16)

निर्णयज विधि.–(1997)5 SCC 536; AIR 1983 SC 603; (2004)4 SCC 268; AIR 1985 SC 1265; (2008)10 SCC 404; W.P. (S) No. 1596/2007—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mrs. M.M. Pal, For the Petitioner; M/s Ananda Sen, Abhay Kumar Mishra, For the Respondents.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता, श्रीमती एम॰ एम॰ पाल, प्रत्यर्थीगण सी॰ सी॰ एल॰ के विद्वान अधिवक्ता, श्री आनन्द सेन एवं प्रत्यर्थी-बीमा कम्पनी के विद्वान अधिवक्ता, श्री अभय कुमार मिश्रा को सुना गया।

2. याची का पति राम सेवक प्रत्यर्थी सी॰ सी॰ एल॰ के अधीन भुरकुन्डा कोलियरी में बिजली मिस्त्री के तौर पर कार्यरत था। काम पर रहते हुए, उसके साथ दिनांक 4.4.2000 को एक दुर्घटना हो गयी। उसे तुरत कोलियरी हस्पताल में भर्ती कराया गया और तत्पश्चात गांधीनगर, अस्पताल, सी॰ सी॰ एल॰, राँची को निर्दिष्ट कर दिया। चिकित्सीय उपचार के बावजूद, वह घातक जख्मों के कारण बच नहीं पाया और दिनांक 16.5.2000 को उसकी मृत्यु हो गयी और वह अपने पीछे याची, अर्थात् अपनी विधवा पत्नी, पुत्र और पुत्रियों को छोड़ गया।

3. याची ने सामूहिक व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना जिसके अंतर्गत उसका पति हिताधिकारी था, से प्राप्त लाभ के भुगतान हेतु और इस आधार पर कि उसके पति की मृत्यु काम करते हुए हुई है, प्रत्यर्थी-नियोक्ता के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया।

4. याची की शिकायत है कि उसके द्वारा अनेको अभ्यावेदनों के बावजूद, प्रत्यर्थी-नियोक्ता उसे बीमा योजना से प्राप्त लाभ का भुगतान, जो उसके पति के खाते में देय था, करने में विफल रहा है।

वर्तमान रिट आवेदन में, याची ने प्रत्यर्थियों को यह निर्देश देने की प्रार्थना की है कि सामुहिक व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना जिसका वह हिताधिकारी था, के अंतर्गत प्राप्त मुआवजे की राशि जो उसके पति के खाते में देय थी, का भुगतान किया जाए।

5. नियोक्ता अर्थात् प्रत्यर्थी सी॰ सी॰ एल॰ ने एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया है जिसमें स्वीकार किया गया है कि याची का मृतक पति सी॰ सी॰ एल॰ के अंतर्गत भुरकुण्डा कोलियरी में बिजली मिस्त्री के तौर पर काम कर रहा था और काम करने के दौरान, उसके साथ दिनांक 4.4.2000 को दुर्घटना हुई। यह जोड़ा गया है कि बाद में, 30.4.2000 को अधिवर्षिता के कारण सेवानिवृत्त हो गया और तत्पश्चात दिनांक 16.5.2000 को उसकी मृत्यु हो गयी।

प्रति शपथपत्र पुनः बयान करता है कि प्रत्यर्थी-कम्पनी दिनांक 16.2.2000 को ओरियन्टल इन्श्योरेंस कम्पनी लिमिटेड, राँची के साथ अपने अधिकारियों और गैर-अधिकारियों के लिए सामुहिक व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना के तहत करार किया था। इस करार का अनुसरण करते हुए, एक बीमा योजना के अधीन अनुबंध किया गया था, जिसे दिनांक 20.3.2000 से प्रभाव में लाया गया था, और बीमा योजना के अंतर्गत जोखिम का आच्छादन याची के पति को भी आच्छादित करता था। प्रत्यर्थी सी॰ सी॰ एल॰ द्वारा प्रतिवाद किया गया है कि याची के दावे को निपटाने के लिए मुआवजे की राशि का भुगतान करना बीमा-कंपनी का दायित्व है।

6. यद्यपि, याची के दावे से इन्कार करते हुए, नियोक्ता का दृष्टिकोण यह है कि याची ने तुरंत दुर्घटना से हुई मृत्यु में मिलने वाले लाभ प्राप्त करने हेतु आवेदन दाखिल नहीं किया था, न तो अपने पति के मृत्यु के तुरंत बाद अथवा मृत्यु की तारीख से पहले और उसने वस्तुतः अपना दावा दिनांक 20.12.2005 को भुरकुन्डा कोलियरी के प्रोजेक्ट ऑफिसर के समक्ष दाखिल किया था। उसका दावा कार्यालय पत्र दिनांकित 9.5.2006 द्वारा बीमा कम्पनी के वरीय शाखा प्रबंधक को अग्रसर कर दिया गया था लेकिन नियोक्ता द्वारा दिनांक 4.12.2007 को एक पत्र के माध्यम से स्मरण पत्र जारी करने के बावजूद बीमा-कम्पनी की ओर से कोई प्रत्युत्तर नहीं आया है।

7. बीमा-कम्पनी को प्रत्यर्थी पक्षकार के तौर पर अभिवाक् किया गया था एवं श्री अभय कुमार मिश्रा ने बीमा कम्पनी की ओर से नोटिस भी स्वीकार कर लिया है।

प्रत्यर्थी बीमा-कम्पनी की ओर से उसके लिखित कथन के तौर पर आई॰ ए॰ सं॰ 2735 वर्ष 2008 दाखिल किया गया है, जिसके द्वारा बीमा-कम्पनी ने सामूहिक व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना के अंतर्गत याची को मुआवजे का भुगतान करने के अपने दायित्व को अस्वीकार करना चाहा है।

8. बीमा कम्पनी के विद्वान अधिवक्ता, श्री अभय कुमार मिश्रा का निवेदन है कि याची के दावे की उत्पत्ति बीमा पॉलिसी के शर्तों के मुताबिक नियोक्ता और बीमा-कम्पनी के बीच संविदात्मक दायित्व से होती है और अतः इस तथ्य की दृष्टि में कि उपभोक्ता संरक्षण फोरम और विधिक सेवा प्राधिकरण के माध्यम से याची को एक वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है जिसका लाभ उसने नहीं उठाया है, वर्तमान रिट याचिका, पोषणीय नहीं है।

विद्वान अधिवक्ता यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि याची का पति उपभोक्ता होने के कारण और बीमा कम्पनी सेवादाता होने के कारण, यह विवाद उपभोक्ता संरक्षण फोरम में सुलझाना आसान है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान मामले में तथ्य के जटिल प्रश्न अंतर्ग्रस्त है जिन्हें यह न्यायालय, अपनी रिट अधिकारिता का प्रयोग करते हुये, संभवतः निर्णीत नहीं कर सकता है।

मफतलाल इंडस्ट्रीज एवं अन्य, (1997)5 SCC 536, टाटा छुगुर कम्पनी लिमिटेड, AIR 1983 SC 603, यू॰ पी॰ स्टेट ब्रिज कॉरपोरेशन लिमिटेड और अन्य, (2004)4 SCC 268 एवं **भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम किरम सिन्हा, AIR, 1985 SC 1265** के मामले में निर्णयों समेत सर्वोच्च न्यायालय के कई अन्य निर्णयों को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता निवेदन किया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने इन सारे मामलों में, निरपवाद तौर पर घोषणा की है कि जहाँ वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है, वहाँ भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका जारी रखने योग्य नहीं है।

याची के दावे के विरुद्ध एक और अभ्यापति इस आधार पर लिया गया है कि याची के पति की मृत्यु के पाँच वर्ष पश्चात् काफी विलम्ब से यह दावा किया गया है जबकि बीमा पॉलिसी की योजना के अधीन, दुर्घटना की तारीख से 30 दिनों के भीतर दुर्घटना लाभ दावा के लिए आवेदन किया जाना चाहिए।

9. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्रीमती एम॰ एम॰ पाल, दूसरी ओर, निवेदन किया है कि नियोक्ता प्रत्यर्थी के संबंधित अधिकारियों के समक्ष अपना दावा रखने में याची ने कोई देर नहीं की है और उसके दावे को बीमा कम्पनी को अग्रसर करने में कोई विलम्ब हुआ भी है तो यह नियोक्ता के कारण है और जिसके लिए, याची को परेशान नहीं किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता तर्क करती है कि अन्यथा भी, बीमा योजना के अंतर्गत हिताधिकारी को मुआवजे का भुगतान करने हेतु कोई समय सीमा तय नहीं की गयी है। यह सी॰ सी॰ एल॰ के प्रबंधन का कानूनी कर्तव्य है कि वह बीमा कम्पनी से मुआवजे की राशि प्राप्त करके मृत कर्मचारी के वैध उत्तराधिकारियों को भुगतान करें। विद्वान अधिवक्ता आगे फिर तर्क करती है कि अन्यथा रूप से, अंतिम भुगतान बीमा कम्पनी द्वारा सी॰ सी॰ एल॰ के माध्यम से होना है न कि सीधा दावेदार को।

विद्वान अधिवक्ता पुनः तर्क करती है कि इस रिट आवेदन के अपोषणीय होने के आधार पर अभ्यापति करना आधारहीन है। **यूनाइटेड इंडिया इन्ईश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड बनाम मनुभाई धर्मसिंहभाई गजेरा एवं अन्य, (2008)10 SCC 404** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास प्रकट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता निवेदन करती है कि राज्य और इस मामले में सी॰ सी॰ एल॰ एवं बीमा कम्पनी के बीच अनुबंध के मामलों में, उनके ऊपर सही और युक्तियुक्त न कि मनमाने तरीके से कर्तव्य निभाने का दायित्व कारित होता है और रिट अधिकारिता का प्रयोग करने की इस न्यायालय की अधिकारिता को इस आधार पर सीमित नहीं किया जा सकता कि विवाद एक व्यवसायिक अनुबंध के पालन से अंतर्ग्रस्त है।

10. परस्पर विरोधी निवेदनों से, निर्विवाद रूप से निम्नलिखित तथ्य उभरते हैं:-

(i) याची का पति सी० सी० एल० के अंतर्गत कार्यरत था।

(ii) वह अपने नियोक्ता और प्रत्यर्थी-बीमा कम्पनी के बीच मृत्यु-सह-दुर्घटना लाभों को आच्छादित करते हुए एक अनुबंध के अंतर्गत हिताधिकारी था।

(iii) याची का पति काम करने के दौरान हुई दुर्घटना में गंभीर रूप से घायल हो गया।

(iv) याची, मृतक-कर्मचारी की विधवा होने के नाते, बीमा पॉलिसी की योजना के अंतर्गत मुआवजे का दावा करते हुए आवेदन दिया था।

(v) दुर्घटना और परिणामस्वरूप घातक जख्मों के कारण हुई मृत्यु की सूचना तुरन्त ही नियोक्ता को दे दी गयी थी।

(vi) याची के आवेदन को प्राप्त करने के तीन वर्ष पश्चात् नियोक्ता ने बीमा कम्पनी को दावा अग्रसर किया था, यद्यपि प्रत्यर्थी-नियोक्ता के प्रति-शपथपत्र में इस विलम्ब का कोई कारण स्पष्ट नहीं किया गया है।

(vii) बीमा कम्पनी ने अपना दायित्व अभिस्वीकृत करने से इन्कार कर दिया अथवा पहले पत्र और द्वितीय पत्र का भी जिसके द्वारा नियोक्ता ने बीमा पॉलिसी के अंतर्गत याची के मुआवजे का दावा को अग्रसर किया था, का प्रत्युत्तर देने से इंकार किया।

11. नियोक्ता ने याची का दावा अभिस्वीकृत करते हुए, यह दृष्टिकोण अपनाया है कि बीमा के अनुबन्ध के अंतर्गत जो उस तारीख को चालू था, जब मृतक को गम्भीर उपहति कारित हुआ जिससे उसकी मृत्यु हो गयी, इसलिए मुआवजे की राशि का भुगतान करना बीमा कम्पनी का दायित्व है।

12. बीमा कम्पनी का इस दायित्व से इन्कार करने के दो आधार प्रतीत होते हैं:–

(i) प्रथम आधार यह है कि कानून के अंतर्गत, उपभोक्ता संरक्षण फोरम और विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम के अंतर्गत याची को वैकल्पिक उपचार उपलब्ध था और उसे इन वैकल्पिक उपचारों का उपयोग करना चाहिए था और अतः वर्तमान रिट याचिका पोषणीय नहीं है।

(ii) द्वितीय आधार दावा दाखिल करने में हुआ विलम्ब है।

13. जहाँ तक पहले आधार का संबंध है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह बिल्कुल ही भ्रांत धारणा है। विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम के अंतर्गत उपलब्ध फोरम सिर्फ एक वैकल्पिक विवाद समाधान फोरम है जो न्यायालय के विवाद के न्यायनिर्णयण की अधिकारिता को बहिष्कृत नहीं करता है। उसी तरह, उपभोक्ता संरक्षण फोरम बीमा अनुबन्ध से उत्पन्न दावों और विवादों पर निर्णय करने हेतु न्यायालय की अधिकारिता को बहिष्कृत नहीं करता है। यह आग्रह नहीं किया जा सकता है कि याची को इन दोनों वैकल्पिक फोरम के विकल्प का सहारा लेना चाहिए न कि इस रिट याचिका को दायर करना चाहिए।

14. बीमा अनुबन्ध स्वीकृत तौर पर नियोक्ता और बीमा कम्पनी के बीच उनके द्वारा हुआ था जिसके अंतर्गत कर्मचारीगण हिताधिकारी थे। परिसीमा का आधार जैसा कि प्रत्यर्थी-बीमा कम्पनी ने पेश करना चाहा है याची पर लागू नहीं होते क्योंकि प्रथमतः सामूहिक व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना के अंतर्गत मुआवजे का लाभ प्राप्त करने हेतु याची द्वारा आवेदन दिये जाने की कोई समय सीमा तय नहीं की गयी थी और किसी भी सूरत में उसकी ओर से अपने पति की मृत्यु की सूचना देने एवं मुआवजे का दावा करने में कोई अनुचित विलम्ब नहीं किया गया था। यह सिर्फ नियोक्ता का दायित्व और कर्तव्य है कि वह सुनिश्चित करें कि बीमा योजना के अंतर्गत प्राप्त लाभ मिले और इसे हिताधिकारी को उपलब्ध कराया जाए। दावे में विलम्ब को लेकर हुआ विवाद नियोक्ता और बीमा कम्पनी के बीच है और इस कारण याची को परेशान नहीं किया जा सकता है क्योंकि स्वीकृत तौर पर बीमा योजना के अंतर्गत उसके मृत पति के खाते में दिए गये मुआवजे का लाभ याची को प्रोद्भूत होता है।

15. मोस्मात चंदा देवी बनाम सी॰ सी॰ एल॰ एवं अन्य W. P. (S) No. 1596 वर्ष 2007 के मामले में इस न्यायालय की एक पीठ के समक्ष ऐसा ही मामला विचारण के लिए आया था। दावा पेश करने में हुए विलम्ब के अभिवाक् को अस्वीकार करते हुए इस न्यायालय ने बीमा कम्पनी को निर्देश दिया कि वे सुनिश्चित करे कि कम्पनी बीमा/सामूहिक बीमा के अंतर्गत विधिवत देय राशि का भुगतान नियत समय के भीतर वैध उत्तराधिकारियों को कर दिया जाय। एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 36 वर्ष 2008 में पारित आदेश के माध्यम से इस न्यायालय के एकल पीठ के निर्णय को मान्य ठहराया गया है।

16. उक्त विचार-विमर्श के प्रकाश में, मैं इस रिट आवेदन को उचित मानता हूँ। तद्नुसार, इसे अनुज्ञात किया जाता है। बीमा कम्पनी द्वारा रिट आवेदन की पोषणीयता संबंधी और मुआवजे की राशि को अभिस्वीकृत एवं भुगतान करने संबंधी दायित्व दोनों में आक्षेपों को अस्वीकृत किया जाता है। बीमा कम्पनी को निर्देश दिया जाता है कि वे सामूहिक व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा योजना, जिसके अंतर्गत याची का मृत पति हिताधिकारी था, के अंतर्गत विधिवत देय योग्य राशि का भुगतान इस आदेश की प्रति प्रस्तुति/प्राप्ति की तारीख से दो महीने के भीतर याची को किया जाए, जिसमें विफल होने पर इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तिथि से अंतिम भुगतान तक 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष के दर पर प्रतिकरात्मक सूद देने के लिए व्यक्तिगत एवं संयुक्त रूप से जिम्मेवार होंगे।

17. तथापि, बीमा कम्पनी को नियोक्ता द्वारा याची के दावा आवेदन को अग्रसर करने में हुए विलम्ब से उत्पन्न शिकायत को उपयुक्त फोरम में स्वतंत्र याचिका द्वारा दूर करने की स्वतंत्रता होगी।

18. इन टिप्पणियों के साथ, यह रिट आवेदन निस्तारित की जाती है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

संजय कुमार गुप्ता

बनाम

भारतीय स्टील प्राधिकार लिमिटेड एवं एक अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2152 वर्ष 2009; आई॰ ए॰ सं॰ 1396 वर्ष 2009. 2 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–आवासीय सुविधा–किसी कर्मचारी की वर्खास्तगी के पश्चात् मामले के लम्बित रहने के दौरान उसके द्वारा आवासीय सुविधा धारित नहीं किया जा सकता है जब तक कि किसी सक्षम न्यायालय द्वारा स्थगन का आदेश नहीं किया गया हो। (पैरा 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Ramakant Tiwari, For the Petitioner; Mr. Ananda Sen, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान याचिका जिला न्यायाधीश, बोकारो द्वारा दिनांक 15.1.2008 को पारित आदेश, जिसके द्वारा वर्तमान याची द्वारा दाखिल विविध अपील संख्या 5 वर्ष 2006 को खारिज कर दिया गया है और एस्टेट ऑफिसर, बोकारो स्टील सिटी, बोकारो, द्वारा A/E केस सं॰ 26 वर्ष 2004, दिनांक 4.1.2005 द्वारा पारित आदेश को संपुष्ट किया गया है, के विरुद्ध दाखिल की गयी है। इस प्रकार एस्टेट ऑफिसर, बोकारो स्टील सिटी द्वारा पारित इस प्रभाव का आदेश कि याची को प्रश्नगत निवास स्थान खाली

करके उसका कब्जा प्रत्यर्थी को दे देना है, को जिला न्यायाधीश बोकारो द्वारा दिनांक 15.1.2008 को पारित आक्षेपित आदेश द्वारा सही पाया गया है। इस आदेश के विरुद्ध भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान याचिका दाखिल की गयी है।

2. मैंने याची के विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि याची ने पहले ही औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 10 के अधीन सेवा से अपनी बर्खास्तगी के विरुद्ध औद्योगिक विवाद उठाया है और अत: प्रत्यर्थी स्वयं द्वारा आबंटित निवास स्थान खाली कराने पर जोर नहीं दे सकते हैं। श्रम न्यायालय के अधीन संदर्भ केस सं॰ 2 वर्ष 2009 पर अभी तक निर्णय नहीं लिया है। संदर्भ केस सं॰ 2 वर्ष 2009 संबंधित श्रम न्यायालय के समक्ष लंबित है, अत: जिला न्यायाधीश, बोकारो द्वारा पारित आदेश अभिखंडित एवं अपास्त करने योग्य है।

3. मैंने प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि वर्तमान याची द्वारा किए गए अवचार के कारण, आरोप-पत्र जारी किया गया, जाँच की गयी और अंतत: दिनांक 12.6.2003 के प्रभाव से याची को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया और अत: याची को 11.7.2003 से निवास स्थान खाली कर देना चाहिए था और उसने अनधिकृत और गैरकानूनी तौर पर निवास स्थान पर कब्जा बनाए रखा है। प्रत्यर्थियों को अन्य कर्मचारियों, जो नियमित रूप से नियोजित है और परिसर में कार्यरत है, हेतु निवास स्थानों की आवश्यकता है, मामले के लंबित रहने में प्रत्यर्थियों का कोई दोष नहीं है। यदि याची संदर्भ केस में सफल होता है तब संदर्भ केस सं॰ 2 वर्ष 2009 में पारित अंतिम आदेश के मुताबिक याची को सारे लाभ दिए जाएँगे। लेकिन, आज तक, बर्खास्तगी आदेश के विरुद्ध कोई स्थगन नहीं है। नियोक्ता-कर्मचारी संबंध जून, 2003 से समाप्त हो गया है। इन तथ्यों की दृष्टि में, जिला न्यायाधीश, बोकारो द्वारा यह सही पाया गया है कि याची द्वारा लगभग 72 (बहत्तर) महीनों से निवास स्थान पर अनधिकृत कब्जा है। जिला न्यायाधीश द्वारा विविध अपील सं॰ 5 वर्ष 2006 में दिनांक 15.1.2008 को पारित आक्षेपित आदेश में कोई गलती नहीं की गयी है और इसी तरह इस्टेट ऑफिसर, बोकारो स्टील सिटी, बोकारो द्वारा A/E केस सं॰ 26 वर्ष 2004 में दिनांक 4.1.2005 को पारित आदेश में कोई गलती नहीं की गयी है।

4. मैने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं इस मामले को निम्नलिखित तथ्यों एवं कारणों के आधार पर स्वीकार करने की कोई वजह नहीं पाता हूँ:-

(i) याची प्रत्यर्थियों को सेवा प्रदान कर रहा था। चूँकि उसने अवचार किया, जाँच की गयी और आवश्यक प्रक्रिया का अनुसरण किया गया और अनुपालन किया गया, जैसा कि प्रत्यर्थियों ने अभिकथित किया है और अंततः जाँच के पश्चात् याची को प्रत्यर्थियों की सेवा से 12 जून 2003 के प्रभाव से बर्खास्त कर दिया गया था।

(ii) अतः यह प्रतीत होता है कि नियोक्ता-कर्मचारी संबंध जून, 2003 से समाप्त हो गया। नियोक्ता द्वारा आबंटित निवास स्थान याची द्वारा 12 जुलाई, 2003 के पश्चात् खाली कर देना चाहिए था। किसी न्यायालय, अधिकरण अथवा प्राधिकार द्वारा स्थगन प्रदान नहीं किया गया है।

(iii) तथ्यों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याची पिछले 72 महीनों से निवास स्थान पर अनधिकृत रूप से कब्जा बनाए हुए हैं।

(iv) याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अनुरोध किया गया है कि एक सक्षम लेबर कोर्ट के समक्ष संदर्भ केस सं० 2 वर्ष 2009 लंबित है और अतः याची को निवास स्थान पर कब्जा बनाए रखने की अनुमति दी जानी चाहिए। इस न्यायालय

द्वारा इस तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि प्रथमतः किसी न्यायालय, अधिकरण अथवा प्राधिकार द्वारा 12 जून, 2003 की बर्खास्तगी के आदेश के विरुद्ध कोई स्थगन नहीं दिया है। द्वितीयतः, इस आधार पर भी कि प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि संदर्भ केस सं० 2 वर्ष 2009 में पारित होने वाले अंतिम आदेश के अनुरुप याची को सारी सुविधाएं दी जाएँगी अगर, सक्षम अंतिम न्यायालय ऐसा निर्देश देता है लेकिन वर्तमान में प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन के मुताबिक, प्रत्यर्थी को प्रत्यर्थी-कम्पनी के लिये कार्यरत कर्मचारियों हेतु निवास स्थानों की बहुत आवश्यकता है। याची का दावा है कि चुँकि संदर्भ केस में याची के सफल होने की प्रबल संभावना है अतः इस संभावना के आधार पर उसे निवास स्थान पर कब्जा बनाए रखने की अनुमति दी जानी चाहिए। इस न्यायालय द्वारा इस तर्क को स्वीकार नहीं किया जाता है। सैकड़ो संभावनाएँ एक सत्य की बराबरी नहीं कर सकती है। अगर किसी न्यायालय द्वारा याची के पक्ष में आदेश दिया जाता है तो प्रत्यर्थी निवास स्थान पर उसको कब्जा बनाए रखने देते।

5. इन तथ्यों की दृष्टि में जिला न्यायाधीश, बोकारो द्वारा विविध अपील सं॰ 5 वर्ष 2006 खारिज करने में कमोबेश अभिलेख के तथ्य पर कोई गलती नहीं की है। इसके विपरीत, अवर प्राधिकारीयों द्वारा पारित आदेशों अर्थात् इस्टेट ऑफिसर A/E केस सं॰ 26 वर्ष 2004 में दिनांक 4 जनवरी, 2005 को पारित आदेश और जिला न्यायाधीश, बोकारो द्वारा दिनांक 15 जनवरी, 2008 को विविध अपील सं॰ 5 वर्ष 2006 में पारित आदेश बिल्कुल सत्य सही विधिसम्मत और मामले के तथ्यों के साथ सामंजस्य में है।

6. रिट याचिका में कोई सार नहीं है। अतः इसे खारिज किया जाता है।

7. रिट याचिका को अंतिम रूप से निस्तारित किए जाने की दृष्टि में अंतर्वर्ती आवेदन भी निस्तारित कर दिया गया है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

प्रभुनाथ सिंह

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

क्रि॰ एम॰ पी॰ सं॰ 143 वर्ष 2004. 5 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 364, 302, 201 एवं 120B—उसके अधीन विचारण–अभिखंडन याचिका–अभिनिर्धारित, आपराधिक षडयंत्र हेतु दो या दो से अधिक व्यक्तियों की अवैध उपायों से अवैध कार्य करने हेतु आपसी सहमति अनिवार्य है–जब अन्य अभियुक्त व्यक्तियों, जिनके साथ मिलकर याची ने अपराध करने के लिए तथा कथित रूप से ष्डयंत्र की योजना बनायी, को पहले ही दोषमुक्त किया जा चुका है, तब भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B की मदद से याची के विरुद्ध कार्यवाही का पर्याप्त आधार नहीं है–कार्यवाही जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग करना होगा–समस्त दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जाती है। (पैरा 14 से 17)

अधिवक्तागण.–M/s Abhoy Kumar Singh, Nilesh Kumar, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. K.P. Choudhary, For the Opposite Party No. 2.

आदेश

यह आवेदन मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, हजारीबाग के समक्ष लंबित मसरख पी॰ एस॰ केस सं॰ 110 वर्ष 1991, संपूरक यू॰ टी॰ सं॰ 62 वर्ष 1998 के तत्सम में दिनांक 21.6.1996 को दाखिल आरोप पत्र सं॰ 83 वर्ष 1996 जिसके द्वारा याची को भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 364, 302, 201 एवं 120B के अधीन लगे आरोपों के विचारण हेतु भेजा गया था, को प्रथमत: अभिखंडित करने के लिए दाखिल की गयी थी। तत्पश्चात्, एक संशोधन याचिका द्वारा मसरख पी॰ एस॰ केस सं॰ 110 वर्ष 1991 की सम्पूर्ण दांण्डिक कार्यवाही को अभिखंडित करना चाहा गया है।

2. इस आवेदन से उद्भुत होने वाले तथ्य यह हैं कि दिनांक 23.6.1991 को सूचक अवध कुमार सिंह, अशोक सिंह के नौकर जय प्रकाश को लाने के लिए मनोकामना सिंह (मृतक) के साथ धनौती गाँव गया था। जब वे जय प्रकाश से मिले तो उन्होंने उसे अपनी साईकिल से चलने को कहा जबकि सूचक अवध कुमार सिंह मनोकामना सिंह (मृतक) के साथ मोटरसाईकिल पर रवाना हुआ। जब वे धनौती पुल के निकट पहुँचे, तब उनकी मुलाकात अभियुक्त दीना सिंह, नागेश्वर सिंह, पंकज सिंह, अजय सिंह उर्फ इंजीनियर और ओम प्रकाश सिंह से हुई जो वहाँ अपनी-अपनी मोटरसाइकिलों से आये थे और उनमें से कुछ के पास राइफलें भी थी। अभियुक्त व्यक्तियों ने उनको अपने काबू में कर के मनोकामना सिंह को जबरन दीना सिंह की मोटरसाइकिल पर बैठा लिया और मसरख की तरफ जाने लगे। रास्ते में किसी बरात के कुछ लोगों ने अभियुक्तों को मनोकामना सिंह को ले जाते देखा। तत्पश्चात, अवध कुमार सिंह ने भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 363 एवं 364 के अधीन मसरख पी॰ एस॰ केस संख्या 110 वर्ष 1991 दाखिल किया था। तत्पश्चात्, जब मनोकामना सिंह को मृत पाया गया तो प्राथमिकी में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 जोड़ दी गयी। तत्पश्चात् मामले का अन्वेषण शुरू किया गया। अन्वेषण अधिकारी ने सिर्फ ओम प्रकाश सिंह के विरुद्ध दिनांक 20.9.1991 को प्रथम आरोप-पत्र संख्या 71 वर्ष 1991 दाखिल किया और शेष अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध अन्वेषण जारी रहा। कुछ समय बाद, अभियुक्त दीनानाथ सिंह एवं नागेश्वर सिंह के विरूद्ध दिनांक 7.9.1992 को द्वितीय आरोप-पत्र संख्या 8 वर्ष 1992 दाखिल किया गया था। तत्पश्चात्, मामले का अन्वेषण सी॰ आई॰ डी॰ द्वारा ले लिया गया, जिसने भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 302, 201 एवं 120(B) के अधीन याची और अजय सिंह के विरुद्ध दिनांक 21.5.1996 को आरोप-पत्र संख्या 83 वर्ष 1996 दाखिल किया। तत्पश्चात् माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेशाधीन मामला बिहार से हजारीबाग, झारखण्ड स्थानांतरित कर दिया गया, जहाँ यह टी॰ आर॰ सं॰ 509 वर्ष 2003 के तौर पर दर्ज हुआ और जब मामला सत्र न्यायालय को सौंपा गया तो, यह सत्र विचारण संख्या 22 वर्ष 2004 के तौर पर दर्ज किया गया लेकिन चुँकि याची को भगोड़ा दर्शाया गया था, इसलिए उसका मामला अलग कर दिया गया और यह टी॰ आर॰ सं॰ 381 वर्ष 2004 के तौर पर दर्ज किया गया और गिरफ्तारी का वारन्ट जारी कर दिया गया था।

3. लेकिन, जब इस याची के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था तो याची ने आरोप-पत्र अभिखंडित करने हेतु इस न्यायालय का शरण लिया।

4. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि नामजद अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध वर्ष 1991 में मामला दर्ज किया गया था जिनके विरुद्ध दो चरणों में आरोप-पत्र दाखिल किया गया था लेकिन उन आरोप-पत्रों में याची का नाम कभी नहीं आया था। लेकिन, जब सी॰ आई॰ डी॰ ने मामले का जाँच किया था तब शासक दल के प्रभाव के अंतर्गत याची जो उस समय विधान सभा का सदस्य था, के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया, यद्यपि अभिकथित अपराध में याची के अंतर्ग्रस्त होने का विधिक साक्ष्य दर्शाने वाली सामग्री नहीं थी।

5. विद्वान अधिवक्ता ने इस संबंध में आगे निवेदन किया कि अन्वेषण एजेन्सी द्वारा एकत्रित सामग्री सिर्फ यह है कि अभिकथित अपराध करने में इस्तेमाल किया गया कार याची का था और उपयोग की गयी मोटरसाइकिल का रजिस्ट्रेशन नम्बर वही था जो याची की मोटरसाइकिल का था और यह कि जब गवाहों में से एक याची के घर आया, तो उसने अभियुक्त व्यक्तियों को वहाँ उपस्थित पाया और सह-अभियुक्तों में से एक की कमीज पर उसने खून का निशान देखा। सिर्फ इन सामग्रियों के आधार पर, जो याची की सदोषता दर्शाने को बिल्कुल पर्याप्त नहीं है, आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। अत: इन परिस्थितियों के अंतर्गत, जहाँ तक याची का संबंध है, सम्पूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने लायक है।

6. विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि इस याचिका को दाखिल करने के पश्चात, इस मामले को प्रभावित करने वाली घटना हुई है अर्थात् चारों नामित अभियुक्तों, जिनका सत्र विचारण सं॰ 22 वर्ष 2004 में विचारण किया गया था, को प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है और इस तरह याची, जिसका विचारण धारा 120(B) की मदद से करना चाहा गया है, को अभिकथित अपराध के लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

7. विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **योगेश उर्फ सचिन जगदीश जोशी बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2008)10 SCC 394]** में किए गये निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

8. उक्त परिस्थितियों में, यह निवेदन किया गया था कि जब अभिकथित आरोप में याची की अंतर्ग्रस्तता दर्शाने वाली पर्याप्त सामग्री नहीं है और न ही याची को षडयंत्र रचने का दोषी पाया जा सकता था और इस दृष्टि में कि अन्य अभियुक्तों को पहले ही दोषमुक्त किया जा चुका है, यह कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा यदि याची को विचारण का सामना करने हेतु मजबूर किया जाता है और अत: समस्त दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने योग्य है।

9. इसके यथा विरुद्ध, सूचक ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अन्वेषण के दौरान अपराध में प्रयुक्त मोटरसाइकिल और कार दोनों को ही याची का होना पाया गया है जिसके घर में अन्य अभियुक्त, जो याची के संबंधी हैं, घटना के तुरन्त बाद उपस्थित पाये गये, अत: अपराध करने हेतु रचे गये षडयंत्र में याची की अंतर्ग्रस्तता से इन्कार नहीं किया जा सकता है और इस परिस्थिति में जहाँ तक याची का संबंध है, समस्त दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित करने में न्यायालय को अन्च्छिुक होना चाहिए।

10. पक्षकारों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने एवं अभिलेख का परिशीलन करके, मैं पाता हूँ कि स्वीकृत तौर पर प्राथमिकी में याची की अंतर्ग्रस्तता को लेकर कोई जिक्र नहीं है और अन्वेषण के पश्चात, जब नामजद अभियुक्तों के विरुद्ध न्यायालय के समक्ष दो आरोप-पत्र रखे गये तब उन आरोप-पत्रों में याची का नाम कभी उल्लिखित नहीं था। तथापि, जब अन्वेषण सी॰ आई॰ डी॰ द्वारा ले लिया गया, इसने (सी॰ आई॰ डी॰) ने घटना के पाँच वर्षों के पश्चात् भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 302, 201 एवं 120B के अधीन याची और एक अन्य अभियुक्त के विरुद्ध इस कारण आरोप-पत्र दाखिल किया गया कि अन्वेषण के दौरान पता चला कि अपराध करने में प्रयुक्त मोटरसाइकिल और कार इस याची का था और यह कि जब गवाहों में से एक घटना के तुरन्त बाद याची के घर आया तो उसने अभियुक्तों को वहाँ उपस्थित पाया और अभियुक्तों में से एक की कमीज पर खून का निशान था।

11. अन्य किसी परिस्थितियों की अनुपस्थिति में मुझे आशंका है कि क्या ये सामग्रियाँ याची को दोषी पाने हेतु पर्याप्त होंगी। इस चरण पर, **आर॰ पी॰ कपूर बनाम पंजाब राज्य (AIR 1960 SC 866)** के मामले को निर्दिष्ट करना उपयुक्त होगा जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे मामलों की कोटि तय की है जो उच्च न्यायालय द्वारा अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए अभिखंडित करने योग्य है। ये निम्नलिखित हैं:-

(i) जहाँ यह प्रकटतः प्रतीत होता है कि संस्थापन या निरन्तरता के विरुद्ध विधिक वर्जन है, उदाहरणस्वरुप, मंजूरी की कमी;

(ii) जहाँ प्राथमिकी अथवा परिवाद में लगाए गए अभिकथनों को जिन्हें ज्यों का त्यों मान लिया गया हो और उनकी समस्तता में स्वीकार कर लिया गया हो, अभिकथित अपराध नियत नहीं करते;

(iii) जहाँ अभिकथन आरोप को नियत करते हैं लेकिन आरोप सिद्ध करने हेतु कोई कानूनी साक्ष्य नहीं दिया गया है या दिया गया साक्ष्य प्रकटतः और स्पष्टतः आरोप सिद्ध करने में विफल है।

12. परिस्थितियाँ जिनका प्रयोग याची के विरुद्ध करना चाहा गया है भले ही वे सत्य हों, आरोप शायद ही सिद्ध कर पाये विशेषत: जब अन्य नामित अभियुक्त व्यक्तियों जिनके साथ तथाकथित तौर पर याची ने हत्या का अपराध करने के लिए षडयंत्र रचा है, को दोषमुक्त कर दिया गया है।

13. इस चरण पर, हमें भारतीय दंड संहिता की धारा 120(A) के अधीन स्थापित षडयन्त्र के अपराध के मुख्य लक्षणों पर ध्यान देने की आवश्यकता है, जो कि निम्नलिखित है:-

*"120A. **आपराधिक षडयंत्र की परिभाषा.**-जब कि दो या दो से अधिक व्यक्ति-*

(1) कोई अवैध कार्य, अथवा

(2) ऐसा कोई कार्य, जो अवैध नहीं है, अवैध साधनों द्वारा, करने या करवाने को सहमत होते हैं, तब ऐसी सहमति आपराधिक षडयंत्र कहलाती है:

परन्तु किसी अपराध को करने की सहमति के सिवाय कोई सहमति आपराधिक षडयंत्र तब तक न होगी, जब तक कि सहमति के अलावा कोई कार्य उसके अनुसरण में उस सहमति के एक या अधिक पक्षकारों द्वारा नहीं कर दिया जाता।

***स्पष्टीकरण.**-यह तत्वहीन है कि अवैध कार्य ऐसी सहमति का चरम उद्देश्य है या यह उद्देश्य का आनुषंगिक मात्र है।*

14. अत:, यह प्रकट है कि एक अवैध कृत्य करने या अवैध तरीके से एक कृत्य करने के लिए दो या अधिक व्यक्तियों की आपस सहमति दांडिक षडयंत्र हेतु अनिवार्य है।

15. चुँकि अन्य नामित अभियुक्त व्यक्ति, जिनके साथ मिलकर याची ने अपराध करने हेतु तथाकथित तौर पर षडयंत्र रचा है, पहले ही दोषमुक्त कर दिये गये हैं, इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 120B की मदद से याची के विरुद्ध कार्यवाही करने का शायद ही पर्याप्त आधार है। अत:, कार्यवाही को जारी रखना कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग करना होगा।

16. इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद भी प्रश्न यह है कि क्या न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए सामग्रियों की पर्याप्तता अथवा अपर्याप्तता पर विचार करे अथवा याची को ऐसी स्थिति में ले आए जहाँ वह सामग्रियों की अपर्याप्तता के आधार पर

अपनी मुक्ति का अभिवाक् कर सके। यह प्रश्न माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **अशोक चतुर्वेदी एवं अन्य बनाम शितुल एच॰ चनचनी एवं अन्य [(1998)7 SCC 698]** के मामले में दिया गया है उसमें अवधारित किया गया है कि सिर्फ इसलिए कि आरोप तय किये जाते समय अभियुक्त को यह अभिवचन करने का अधिकार है कि आरोप तय करने की कोई सामग्री नहीं है वह जब दंडाधिकारी ने संज्ञान ले लिया है, जल्द से जल्द न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलम्ब लेने हेतु विवर्जित नहीं है।

17. पहले भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कर्नाटक राज्य बनाम एल॰ मुनिस्वामी एवं अन्य [(1977)2 SCC 699]** के मामले में ऐसा ही विचार प्रकट किया था।

18. इस प्रकार, उक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों की दृष्टि में, जब याची के विरुद्ध कार्यवाही का पर्याप्त आधार नहीं है, यह कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा, यदि याची को विचारण का कष्ट उठाने दी जाती है और इसलिए, मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, हजारीबाग के न्यायालय में लंबित मसरख पी॰ एस॰ केस संख्या 110 वर्ष 1991 की सम्पूर्ण दांडिक कार्यवाही को जो सम्पूरक यू॰ टी॰ केस सं॰ 62 वर्ष 1998 के तत्सम है, एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

19. परिणामस्वरूप, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

मो॰ कलाम एवं एक अन्य

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखण्ड) एवं अन्य

सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2130 वर्ष 1997(R). 7 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908–धारा 71(A)–भूमि का प्रत्यावर्तन–40 वर्षों के बाद प्रत्यावर्तन का दावा–अभिनिर्धारित, ऐसा दावा अनुज्ञात किया जाना अयुक्तिसंगत है जो प्राचीनता में खो गया है–यद्यपि, अधिनियम की धारा 71(A) के अधीन आवेदन दाखिल करने के लिए परिसीमा की कोई अवधि विहित नहीं की गयी है फिर भी आवेदन को युक्तिसंगत अवधि के भीतर दाखिल कर दिया जाना चाहिए। (पैरा 10 से 13)

निर्णयज विधि.–(2000)5 SCC 141; 2004(4) JLJR SC 109—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Alok Lal, For the Petitioners; Mr. S. K. Ughal, For the Respondent No. 4; Mr. Ram Prakash Singh, For the State-Respondents.

आदेश

इस रिट याचिका में याचीगण ने उपाबंध 5 में अंतर्विष्ट एस॰ ए॰ आर॰ अपील सं॰ 277-R-15/96-97 में प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा पारित दिनांक 9.5.1997 के आदेश को एवं साथ ही उपाबंध 4 में अंतर्विष्ट एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 203/1991 में प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा पारित दिनांक 12.8.1996 के आदेश को अभिखंडित करने की प्रार्थना की है एवं एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 203/1991 की संपूर्ण कार्यवाही को अभिखंडित करने के लिए दाखिल की है।

2. याचीगण के अनुसार, हिन्दपीरी, राँची के होल्डिंग सं 488 के तत्सम प्लॉट सं 1576 की भूमि का एक भाग उस होल्डिंग का भाग था जो सहोबा मुंडा, जगरनाथ मुंडा, जगरू मुंडा, एतवा मुंडा एवं मंगरा मुंडा, सभी होमा मुंडा के पुत्र के नाम पर अभिलिखित थे। प्रश्नगत प्लॉट को मकान सहन के तौर पर अभिलिखित किया गया था। नगरपालिका सर्वेक्षण के दौरान, सहोबा मुंडा एवं अन्य सह-अभिधारियों की मृत्यु एक के पश्चात एक करके हो गयी। तब प्रश्नगत भूमि को जीवित

उत्तराधिकारियों द्वारा पूर्व-भू-स्वामी को 27.9.1936 को सुपुर्द किया गया था। पूर्व भू-स्वामी उक्त भूमि का कब्जेदार बन गया एवं तत्पश्चात लगभग तीन वर्षों के उपरांत उनलोगों ने प्लॉट सं॰ 1576 एवं 1577 की भूमि को याची के पिता के साथ दिनांक 15.9.1939 के सादा हुकुमनामा के माध्यम से बन्दोबस्त कर दी एवं उसे उक्त भूमि का कब्जेदार बनाया। याचीगण के पिता ने तदुपरांत एक मोटी रकम का निवेश करके उक्त भूमि पर एक मकान एवं एक दुकान सन्निर्मित किया। यह निवेदन किया गया है कि पूर्व भू-स्वामी ने उक्त भूमि को छप्परबन्दी होल्डिंग में सम्परिवर्तित कर लिया। चुँकि इसके बाद से मकान एवं भूमि याचीगण के निरन्तर कब्जे में रहा है। याचीगण ने लगान का भुगतान पूर्व भू-स्वामी को किया एवं संपदा के बिहार भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधानों के अधीन निहित होने के उपरांत उक्त भूमि के सम्बन्ध में जमाबंदी को याचीगण के नाम पर सृजित किया गया था। अचानक वर्ष 1991 में प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने याचीगण द्वारा उक्त भूमि से याचीगण के अवैध बेदखली का अभिकथन करते हुए छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम (एतस्मिनपश्चात 'सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम' के तौर पर निर्दिष्ट) की धारा 71 (A) के प्रावधानों के अधीन अपने पक्ष में कब्जे के प्रत्यावर्तन हेतु एक आवेदन दाखिल किया। उक्त केस विशेष अधिकारी, अनुसूचित क्षेत्र विनियम, राँची के न्यायालय में एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 203/90-91 के तौर पर दाखिल किया गया था।

3. याचीगण को नोटिस निर्गत की गयी थी। वे लोग उपस्थित हुए एवं अपना-अपना उत्तर दाखिल किया, अन्य के साथ-साथ यह कथन करते हुए कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 के अविधिमान्य कब्जे के दावा पूर्णतया असत्य एवं आधारहीन है। भूमि को कई दशकों पूर्व विधिमान्य रूप से अर्जित किया गया था, आवासीय मकान एवं दुकान भी काफी पहले सन्निर्मित हुआ था, मांग को अंचल कार्यालय में खोला गया था एवं वे लोग निरन्तर रूप से इसके कब्जेदार रहे हैं उनलोगों ने अपने-अपने दावे के समर्थन में दस्तावेजों को भी अभिलेख पर लाया है।

4. लेकिन, विशेष अधिकारी ने दिनांक 12.8.1996 को एक आदेश (उपाबंध 4)याचीगण एवं प्रत्यर्थी सं॰ 4 को अनुज्ञात करते हुए एवं उसके पक्ष में कब्जे के प्रत्यावर्तन का निर्देश देते हुए एक आदेश पारित किया।

5. तब याचीगण ने उपायुक्त, राँची के समक्ष अपील दायर किया जो एस॰ ए॰ आर॰ अपील सं॰ 277-R-15/96-97 था। विद्वान अपीलीय न्यायालय ने विशेष अधिकारी के आदेश को अभिपुष्ट किया एवं अपील को खारिज किया। उक्त आदेश से व्यथित होकर, याचीगण ने यह रिट याचिका दाखिल की है।

6. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि भूमि वर्ष 1936 में सुपुर्द की गयी थी एवं बन्दोबस्ती याची के पिता के पक्ष में वर्ष 1939 में की गयी थी। उक्त भूमि के बन्दोबस्ती के उपरांत, एक मकान एवं एक दुकान 50,000/- रू॰ का निवेश करके इस भूमि पर सन्निर्मित किया गया था। याचीगण के परिवार के सदस्य उक्त मकान में रह रहे थे एवं वे लोग अपना दुकान चला रहे थे जो कि उनलोगों की जीविका का साधन है। याचीगण चार दशकों से अधिक समय से उक्त प्रत्यर्थी की आपत्ति या बाधा के बिना उक्त भूमि एवं मकान के निरन्तर कब्जेदार रहे हैं। प्रत्यर्थीगण इस तथ्य के प्रति सजग थे कि उक्त भूमि को याचीगण द्वारा विधि के अनुसार वैध रूप से अर्जित किया गया था। यह निवेदन किया गया है कि याचीगण ने प्रतिकूल कब्जे द्वारा भी वैध अभिधान अर्जित किया है एवं उक्त भूमि के प्रत्यावर्तन हेतु आवेदन कई दशकों के उपरांत दाखिल किए जाने के कारण ग्रहण किए जाने योग्य नहीं था। प्रत्यर्थी सं॰ 4 का दावा भी परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं है।

7. प्रत्यर्थी सं॰ 4 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री एस॰ के॰ उघल ने निवेदन किया कि उस भूमि को अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के नाम पर रैयती भूमि के तौर पर अभिलिखित किया गया था। रैयती भूमि को अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को छोड़कर अन्य व्यक्तियों के पक्ष में अंतरित नहीं किया जा सकता है। ऐसा अंतरण सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 46 के अधीन वर्जित है। प्रत्यर्थी सं॰ 4 की बेदखली सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 46 के उल्लंघनकारी

है जो धारा 71A की रिष्टि के अन्तर्गत आता है एवं उक्त भूमि को विशेष अधिकारी, अनुसूचित क्षेत्र विनियम द्वारा उचित रूप से ही प्रत्यर्थी सं॰ 4 के पक्ष में प्रत्यावर्तित किया गया है। अपीलीय प्राधिकारी ने विशेष अधिकारी के आदेश को विधिमान्य रूप से कायम रखा है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अनुसूचित जनजाति के किसी ऐसे सदस्य की भूमि के प्रत्यावर्तन हेतु सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के अधीन परिसीमा की कोई अवधि विहित नहीं की गयी है जिसे अपने रैयती होल्डिंग से अविधिमान्य रूप से बेदखल किया गया है। सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम का धारा 71A किसी भी समय भूमि पर कब्जे के प्रत्यावर्तन का प्रावधान करता है, यदि उपायुक्त के ध्यान में यह बात आती है कि अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य की भूमि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 46 या किसी अन्य प्रावधान के उल्लंघन में अंतरित की गयी है। विशेष अधिकारी ने विधिक प्रावधानों का उल्लंघन पाया है एवं उचित रूप से ही प्रत्यर्थी सं॰ 4 को कब्जा प्रत्यावर्तित किया है जो कि अनुसूचित जनजाति का एक सदस्य है। याचीगण द्वारा अपनाया गया परिसीमा का आधार साररहित है। विशेष अधिकारी एवं साथ ही अपीलीय प्राधिकारी के आदेश पूर्णतया विधिमान्य एवं ठोस हैं एवं इसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने की जरूरत नहीं है।

8. प्रत्यर्थी सं॰ 4 के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य-प्रत्यर्थी सं॰ 1-3 की ओर से उपस्थित होने वाले सरकारी अधिवक्ता II के विद्वान कनीय अधिवक्ता ने याचीगण के दावे का प्रतिवाद किया। अन्य के साथ-साथ यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 अनुसूचित जनजाति का एक सदस्य है एवं प्रश्नगत भूमि को वर्ष 1939 के अधिकारों के सर्वेक्षण अभिलेख में हिताधिकारियों के नाम पर अभिलिखित किया गया है। प्रत्यर्थी सं॰ 4 के पूर्वजों को जबरदस्ती एवं अवैध रूप से बेदखल किया गया था। उक्त होल्डिंग के सुपुर्द किए जाने एवं बन्दोबस्ती का दावा पूर्णतया आधारहीन हैं एवं अभिलेख पर लाए गए दस्तावेज यथार्थ नहीं हैं। यह कहा गया है कि विधि किसी अनुसूचित जनजाति के सदस्य की रैयती भूमि को अनुसूचित जनजाति को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति को अंतरित करने अनुज्ञा प्रदान नहीं करता है। इस प्रकार, उक्त अंतरण स्वयं में अविधिमान्य है। यह दर्शाने के लिए कोई भी दस्तावेज नहीं है कि किसी सक्षम प्राधिकारी के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 4 की उक्त रैयती भूमि को कभी भी छपरबंदी भूमि में अंतरित किया गया था। इस प्रकार, याचीगण का दावा पूर्णतया आधारहीन है।

9. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है एवं अभिलेख पर मौजूद सामग्रियों एवं विधि के प्रावधानों पर विचार किया है। इस मामले में यह एक स्वीकृत स्थिति है कि बन्दोबस्ती वर्ष 1939 में याचीगण के पूर्वजों के पक्ष में किया गया था एवं तदुपरांत एक मकान एवं एक दुकान इसपर सन्निर्मित किया गया था। प्रश्नगत भूमि 40 वर्षों से अधिक समय से निरन्तर याचीगण के कब्जे में रहा है। यद्यपि बन्दोबस्ती कहा जाने वाले दस्तावेज (उपाबंध 1) एक सादा कागज है एवं यह वर्ष 1939 का है।

10. सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम का धारा 71A परिसीमा की कोई अवधि विहित नहीं करता है। यह इन शब्दों से प्रारम्भ होता है: ''यदि किसी भी समय उपायुक्त की नोटिस में यह बात आती है. .....'' वह स्थिति होने के कारण, मैं प्रत्यर्थी सं॰ 4 के विद्वान अधिवक्ता के इस निवेदन में सार पाता हूँ कि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71(A) के अधीन आवेदन दाखिल करने के लिए परिसीमा की कोई अवधि विहित नहीं की गयी है। लेकिन उक्त प्रावधान का निर्वचन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कई विनिश्चियों में किया गया है। **जय मंगल ओरांव बनाम मीरा नायक (श्रीमती) एवं अन्य [(2000) 5 SCC 141]** एवं **सीटू साहू एवं अन्य बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य [2004(4) JLJR SC 109]** में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यद्यपि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71(A) के अधीन प्रत्यावर्तन हेतु आवेदन दाखिल करने के लिए परिसीमा की कोई अवधि विहित नहीं की गयी है फिर भी आवेदन को युक्तिसंगत अवधि के भीतर दाखिल कर दिया जाना चाहिए। उक्त विनिश्चियों में 40 वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने को सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71(A) के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए अयुक्तिसंगत कहा गया है। यह मामला पूर्ण रूप से उक्त

विनिश्चयों द्वारा आच्छादित है। इस मामले में, शक्ति का प्रयोग 40 वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो जाने के उपरांत किया गया है जिसे सर्वोच्च न्यायालय के उक्त विनिश्चयों में अयुक्तिसंगत अवधि होना अभिनिर्धारित किया गया है।

11. उक्त की दृष्टि में, इस रिट याचिका में वर्णित अन्य आधारों पर विचार किए बिना विशेष अधिकारी द्वारा पारित प्रत्यावर्तन का आदेश एवं अपीलीय न्यायालय के प्रत्यावर्तन के उक्त आदेश को कायम रखने वाले आदेश को उचित एवं न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है। विशेष अधिकारी एवं साथ ही अपीलीय प्राधिकारी उक्त महत्वपूर्ण पहलू पर विचार करने में असफल रहे हैं।

12. यदि यह स्वीकार कर भी लिया जाए कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 के दावे में गुणागुण था, फिर भी ऐसा दावा अयुक्तिसंगत रूप से एवं तर्कहीन रूप से पुराना होने के कारण इसे किसी न्यायालय में ग्रहण नहीं किया जा सकता है।

13. परिणामस्वरूप, यह रिट याचिका अनुज्ञात किया जाता है। दिनांक 12.8.1996 का आक्षेपित आदेश (उपाबंध 4) एवं दिनांक 9.5.1997 का आक्षेपित आदेश (उपाबंध 5) साथ ही एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 203/1991 की सम्पूर्ण कार्यवाही को अभिखंडित किया जाता है।

14. लेकिन, व्ययों के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

अनिल कुमार दास

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 273 वर्ष 2007. 25 जून, 2009 को विनिश्चित।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 439(2) एवं 437—जमानत का रद्दकरण–मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा दिये गये जमानत को अपर न्यायिक कमिश्नर ने रद्द कर दिया–अभिनिधारित, अपर न्यायिक कमिश्नर ने संहिता की धारा 437 के अधीन याची को दी गयी रियायत को अपास्त करके न्याय के प्रशासन के सम्यक् अनुक्रम में हस्तक्षेप किया है–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A अथवा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन किया गया अपराध 'जघन्य अपराध' की सीमा में नहीं आता ताकि साक्ष्य का सूक्ष्म परीक्षण अनिवार्य बनाया जा सके एवं मामले के गुणागुणों के विस्तृत दस्तावेजीकरण नहीं किया जाना है बल्कि समर्थनकारी साक्ष्यों के आधार पर अभिकथित अपराध की प्रकृति, गंभीरता और आवश्यकता के बीच संतुलन बनाये रखा जाना है। (पैरा 10, 13 एवं 14)

निर्णयज विधि.–(2001)6 SCC 338; 1995 SCC (Cri.) 237—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. P.P.N. Roy, For the Petitioner; Mr. Tapas Roy, For the State; Mr. R.S.P. Sinha, For the O.P No.2.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.—पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

2. यह दांडिक पुनरीक्षण आवेदन अपर न्यायिक आयुक्त VI, राँची द्वारा दांडिक विविध सं॰ 12 वर्ष 2006 में दिनांक 19 मार्च, 2007 को पारित आक्षेपित आदेश के विरूद्ध है जिसके द्वारा मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, राँची द्वारा डोरन्डा (अरगोड़ा) पी॰ एस॰ केस सं॰ 207 वर्ष 2003, जी॰ आर॰

2143 वर्ष 2003 के तत्समान, में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 के अधीन याची को दिनांक 17.2.2006 को दी गयी जमानत को अपास्त कर दिया था एवं न्यायिक अभिरक्षा में लिए जाने के लिए सम्बन्धित न्यायालय के समक्ष उसे उपस्थित होने की अपेक्षा की गयी थी।

3. संक्षेप में, अभियोजन का मामला जैसा कि सूचक-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 (कुमारी अनुजा दास उर्फ पुष्पी द्वारा वर्णित किया गया है, नीचे उद्धृत किया गया है:-

कुमारी अनुजा दास उर्फ पुष्पी का विवाह दिनांक 9.5.1997 को याची के साथ हुआ था और विवाह पश्चात याची समेत सभी अभियुक्तगण रंगीन टी॰ वी॰, फ्रिज और एक लाख रुपया नगद की मांग कर रहे थे। जब वह अपने माता-पिता द्वारा उनकी मांग पूरी करने में असमर्थता जाहिर की, तब उसके याची-पति एवं अन्य अभियुक्तों, जो उसके ससुरालवाले थे, ने उसके साथ क्रूर व्यवहार करना शुरु किया और मानसिक प्रताड़ना देने लगे। वह किसी तरह राँची आयी और याची एवं अन्यों के विरुद्ध उसने मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, राँची के न्यायालय में परिवाद केस 269 वर्ष 2000 दाखिल किया। लेकिन अभियुक्तों ने उस पर दबाव डाला और दिनांक 2.7.2000 को उनके बीच समझौता हुआ जिसका अनुसरण करते हुए वह अपने दांपत्य निवास आयी लेकिन उसे पुन: अभियुक्तों की प्रेरणा पर दहेज के लिए यातना एवं मानसिक प्रताड़ना का पहले की तरह सामना करना पड़ा। इस बीच वह गर्भवती हो गयी और उसे अपने मायके भेज दिया गया। यह जानने के बावजूद कि उसने एक पुत्र को जन्म दिया है, उसके दांपत्य निवास से कोई भी उसकी देख-भाल करने नहीं आया। दिनांक 24.6.2001 को याची-पति अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ उसके मायके आया और एक लाख रुपयों के बजाए 80,000/- रुपयों की मांग दुहरायी। दिनांक 13.10.2002 को उसका याची-पति वहाँ पुन: आया और उसके विरोध के बावजूद सादे कागजों पर जबरदस्ती उसका हस्ताक्षर ले लिया। बचाव का कोई रास्ता नहीं देखकर उसका पिता उसे उसके दांपत्य निवास भभुआ (बिहार) ले गया जहाँ उसके पिता ने उसके श्वसुर को 10,000/- रुपये अदा किये। लेकिन यह राशि अभियुक्तों का लालच संतुष्ट करने में सफल नहीं हुई और अंतत: उसके याची-पति ने उसका गला दबा कर और उसके शरीर पर किरासन तेल छिड़क कर आग लगा कर हत्या करने की कोशिश की। चुँकि उसका याची-पति उत्तर प्रदेश पुलिस में सेवारत था, अत: आरक्षी अधीक्षक राँची के हस्तक्षेप पर ही सूचक की प्राथमिकी स्वीकार की गयी जिसे अभिकथित अपराध के लिए भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 341/323/498A के अधीन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन डोरंडा (अरगोड़ा) पी॰ एस॰ केस 207 वर्ष 2003 के तौर पर दर्ज किया गया।

4. अभिलेख से यह प्रकट है कि याची को अपने आत्मसमर्पण वाले दिन मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, राँची द्वारा डोरंडा (अरगोड़ा) पी॰ एस॰ केस सं॰ 207 वर्ष 2003 में दिनांक 17.2.2006 को पारित आक्षेपित आदेश द्वारा निम्नलिखित आधारों पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 के अधीन जमानत दी गयी थी।

> *''विद्वान वचाव पक्ष अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यह गलत ढंग से फँसाये जाने का मुकदमा है। मेरा ध्यान इन तथ्यों की ओर आकर्षित किया गया है कि अन्य अभियुक्तों को ए० बी० ए० 169 वर्ष 2004 में माननीय न्यायालय द्वारा जमानत दी गयी है। मेरा ध्यान परिशिष्ट की ओर भी आकर्षित किया गया है जिसमें कहा गया है कि एक समझौता हुआ था और यह पाया गया है कि सूचक के पिता ने एक झूठा मुकदमा दायर किया है। मेरा ध्यान इस तथ्य की ओर भी आकर्षित किया गया है कि दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अभियुक्त याची द्वारा सूचक के विरुद्ध वैवाहिक केस 6 वर्ष 2000 दाखिल किया गया है और अभिलेख से यह प्रकट होगा कि सूचक अभियुक्त याची के साथ कभी नहीं रही। यह भी तर्क दिया गया है कि विवाह के छः वर्षों पश्चात दहेज की मांग सामान्यतः नहीं की जाती है। मेरा ध्यान*

इस तथ्य की ओर आकर्षित किया गया है कि विवाह के कुछ वर्ष पश्चात दुल्हा-दुल्हन की स्थिति पति-पत्नी संबंधों में परिवर्तित हो जाती है और ऐसे मामले में दहेज अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होंगे।

मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात मैं याची को 5000/- रुपयों का जमानत पत्र और इसी राशि की दो प्रतिभूतियों को उपलब्ध कराने पर जमानत पर रिहा करता हूँ।''

5. लेकिन मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, राँची द्वारा पारित उपरोक्त आदेश को छठे अपर न्यायिक आयुक्त, राँची द्वारा दिनांक 19.3.2007 को पारित विस्तृत आदेश द्वारा निम्नलिखित सम्प्रेक्षण के साथ अपास्त कर दिया गया:-

''आक्षेपित आदेश का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि विद्वान मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी ने उल्लेख किया है कि उन्होंने अभिलेख पढ़ा है और दहेज संबंधी अभियोजन को गलत पाया है। फिर भी उक्त आदेश से यह स्पष्ट है कि विद्वान अवर न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन आरोपों पर, जिसके लिए प्राथमिकी में निश्चित अभिकथन है, सीधे एवं स्पष्ट तौर पर अपना निष्कर्ष नहीं दिया है। मैं आगे पाता हूँ कि विद्वान अवर न्यायालय ने प्रतिवादी के कथन पर विश्वास करते हुए और माननीय न्यायालय के आदेश जिसमें और जिसके अधीन सह-अभियुक्तों को अग्रिम जमानत दी गयी है के आदेश का आश्रय लेते हुए वि० प० सं० 2 को जमानत मंजूर किया गया है लेकिन माननीय न्यायालय के उक्त आदेश के पैरा 2 (परिशिष्ट-3) से प्रकट होता है कि अन्य अभियुक्तों के मुकाबले विपक्षी पक्षकार सं० 2 इस मामले का मुख्य अभियुक्त है।

उक्त विचारित तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर, मैं पाता हूँ कि यह आश्चर्यजनक है कि विद्वान अवर न्यायालय ने जमानत आवेदन के पैरा 2 पर गौर नहीं किया है जिसमें कहा गया है कि विद्वान न्यायिक आयुक्त, राँची ने विपक्षी पक्षकार सं० 2 की अग्रिम जमानत याचिका अस्वीकार कर दिया है। मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी ने आदेश को अस्वीकार क्यों नहीं किया इसका कारण उन्हीं को ज्ञात है। आगे यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि उन्होंने आरोप पत्र का भी नोटिस नहीं लिया जो दर्शाता है कि अपनी अग्रिम जमानत याचिका अस्वीकृत होने पर भी विरोधी पक्षकार 2 अपनी गिरफ्तारी से बचता रहा और स्वयं को भगोड़ा घोषित करवा लिया। विरोधी पक्षकार 2 के आचरण के बारे में भूमिका, आरोप पत्र, सी० डी० के पैरा 3, अपने अग्रिम जमानत याचिका अस्वीकृत होने के दो साल बाद मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी के समक्ष जमानत लेने हेतु प्रकट होने और डी० आई० जी० की रिपोर्ट से स्पष्ट है।

उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में, मैं पाता हूँ कि विद्वान अवर न्यायालय ने प्राथमिकी के परिशिष्ट-A (F.I.R.) और इसके पृष्ठ 22, परिशिष्ट A-2 अर्थात् दिनांक 29.1.2004 को अस्वीकृत अग्रिम जमानत याचिका और परिशिष्ट-A-4 अर्थात् आरोप-पत्र में की गयी प्रविष्टियों को विचार में नहीं लिया। अगर उन्होंने इन दस्तावेजों पर विचार किया होता तो उन्होंने साक्ष्यों की पर्याप्त चर्चा के साथ सकारण आदेश पारित किया होता और तब शायद ही उन्होंने अभियुक्त को जमानत देने का निर्णय लिया होता। मैं आश्चर्यचकित हूँ कि किन परिस्थितियों के अधीन विद्वान अवर न्यायालय ने मामले के गुणागुण और परिस्थितियों से प्रकट विपक्षी पक्षकार सं० 2 के आचरण का नोटिस नहीं लिया और अभियुक्त को मनमाने तरीके से जमानत दे दिया। मेरी दृष्टि में आक्षेपित आदेश सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पूरण (अपीलार्थी) बनाम रामबिलास एवं अन्य (प्रत्यर्थी) के मामले में 2001(6) SCC 338 में विधि के निश्चित सिद्धांतों से हटकर है उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकथित किया है कि अभिलेख पर उपस्थित तात्विक साक्ष्यों को बिना किसी कारण अनदेखा करके जमानत देने का आदेश विधि के विपरीत और अनुचित है। आगे यह भी अधिकथित किया गया है कि ऐसा आदेश जमानत रद्द करने हेतु आवेदन देने का आधार प्रदान करता है।''

6. सर्वोच्च न्यायालय ने **(2001)6 SCC 338** में प्रकाशित **रामबिलास एवं एक अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं एक अन्य** में अभिनिर्धारित किया है:-

''जमानत देते समय साक्ष्यों एवं मामले के गुणागुण के विस्तृत प्रलेखन का विस्तारपूर्वक परीक्षण नहीं किया जाना है। अपर सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 11.9.2000 को पारित आदेश में साक्ष्य के गुणों एवं दोषों पर विचार किया है। यही वह बात है जिसकी निन्दा की गयी है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जमानत देते समय यह जरूरी नहीं है कि जमानत देने का प्रथम दृष्टया कारण बताया जाए।''

7. 1995 SCC (Cr.) 237 में प्रकाशित **दौलत राम बनाम हरियाणा राज्य** के संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः अभिनिर्धारित किया है:-

''गैर-जमानतीय मामले में प्रारंभिक अवस्था में जमानत की अस्वीकृति और पहले से दी गयी जमानत का रद्दकरण भिन्न भिन्न आधारों पर विचार किया जाना चाहिए। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पहले से दिये गये जमानत को रद्द करने का निर्देश देने वाला आदेश पारित करने हेतु बहुत ही तर्कपूर्ण और अविभूत करने वाली परिस्थितियाँ आवश्यक है यह अभिनिर्धारित किया गया है कि न्याय प्रशासन के सम्यक अनुक्रम में हस्तक्षेप या हस्तक्षेप का प्रयास अथवा न्याय के सम्यक अनुक्रम का अपवंचन या अपवंचन का प्रयास अथवा अभियुक्त को दिये गए रियायतों का किसी रूप में दुरुपयोग जमानत रद्द करने के आधार है। लेकिन ये ध्यान में रखा जाना चाहिए कि न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि ये सारे उदाहरण सिर्फ दृष्टांत स्वरूप है न कि सर्वविनियोज्य। जमानत रद्द करने का ऐसा एक आधार यह होगा जहाँ अभिलेख पर उपस्थित सामग्री और साक्ष्यों की उपेक्षा करते हुए इस प्रकृति के जघन्य अपराध में और वह भी बिना कारण बताए जमानत देने का विकृत आदेश पारित किया गया है। ऐसा आदेश विधि के सिद्वांतों के विरुद्व होगा। न्यायिक हित यह अपेक्षा करता है कि ऐसे विकृत आदेश को अपास्त कर दिया जाए और जमानत रद्द कर दिया जाए। यह स्मरण रखना चाहिये कि ऐसे अपराध (304B भा० दं० सं०) बढ़ रहे है और समाज पर उनका गहरा प्रभाव पड़ रहा है। अतः विचारण न्यायालय द्वारा स्वविवेक का मनमाना और गलत प्रयोग को सुधारा जाना है।''

8. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ पी॰ एन॰ राय ने पूरक शपथपत्र को निर्दिष्ट करते हुए यह निवेदन किया है कि दिनांक 23.2.2007 को याची की ओर से अपर न्यायिक कमिश्नर छठा, राँची के समक्ष दांडिक विविध सं॰ 12 वर्ष 2006 में निवेदन किया गया है कि वह यह वचन दाखिल करने के लिए तैयार है कि बिना शर्त के विरोधी पक्षकार 3 एवं उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध भभुआ और चंदौली में दाखिल सारे मुकदमें वापस लेने के लिए तैयार है और यह कि सूचक, विरोधी पक्षकार 2 ने याची के साथ जाने की इच्छा प्रदर्शित की थी यदि वह याची द्वारा दाखिल ऐसे मामलों को वापस लेने हेतु विभिन्न न्यायालयों के आदेशों की प्रमाणित प्रतिलिपियाँ दाखिल करने को तैयार है। इसका अनुसरण करते हुए और इनके समर्थन में याची ने विभिन्न न्यायालयों में दाखिल याचिकाओं की छाया प्रतियां दाखिल की हैं जिसमें प्रधान न्यायाधीश कुटुम्ब न्यायालय, कैमूर, भभुआ के न्यायालय में दाखिल वैवाहिक केस सं॰ 6 वर्ष 2006, भभुआ पी॰ एस॰ केस 353 वर्ष 2003, केस सं॰ 1055 वर्ष 2004 और केस सं॰ 28 वर्ष 2005 को वापस लेने की प्रार्थना की गयी है लेकिन विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि विरोधी पक्षकार 2 ने विवाद समाप्त करने में कोई रुचि नहीं दिखायी, फिर भी याची पति और विरोधी पक्षकार 2 पत्नी के बीच विवाद के सौहार्दपूर्ण समाधान की संभावना है। अधिवक्ता ने इंगित किया कि विरोधी पक्षकार 2 ने अपर न्यायिक

कमिश्नर के समक्ष विवादों के समुचित समाधान की इच्छा व्यक्त की है और अगर याची पति को न्यायिक हिरासत में लिया जाता है तब विवाद का समाधान नहीं हो पाएगा और मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी ने उसे जमानत देते हुए इस बात पर विचार किया था।

9. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सी॰ आर॰ एस॰ पी॰ सिन्हा ने इन दावों का जोरदार विरोध किया और निवेदन किया कि मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, राँची द्वारा दिनांक 17.2.2006 को पारित आक्षेपित आदेश को दिनांक 19.3.2007 को एक विस्तृत आदेश द्वारा अपास्त किया जाना न्यायोचित है जो कि अभिकथन के तथ्यों और प्रकृति एवं याची के आचरण की दृष्टि में हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं करता है।

10. यह सुस्थापित है कि जब मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी के आक्षेपित आदेश को अपास्त करते हुए अपर न्यायिक कमिश्नर छठा, राँची ने दांडिक विविध सं॰ 12 वर्ष 2006 में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439(2) के अधीन याचिका पर अंतिम आदेश पारित किया और संबंधित न्यायालय को यह निर्देश देते हुए कि उसे न्यायिक हिरासत में लिया जाए याची को आत्मसमर्पण करने को कहा, तब न्यायालय विविध याचिका में आगे आदेश पारित करने से प्रविरत हो गया क्योंकि न्यायालय 'पदकार्य-निवृत्त' हो गया और उसे उक्त दांडिक विविध याचिका में संबंधित पक्षों की ओर से दाखिल अन्य याचिकाओं जिसमें न्यायालय द्वारा पारित अंतिम आदेश में हस्तक्षेप की अपेक्षा की गयी थी, को स्वीकृत करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वर्तमान मामले में अपराध की सूचना भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन दी गयी थी और साथ-साथ याची एवं अन्य अभियुक्तों द्वारा दहेज की मांग और सूचक विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की प्रताड़ना का अभिकथन किया गया था।

11. मैं पाता हूँ कि अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल करने के पश्चात सिर्फ भारतीय दंड संहिता की धारा 498A एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 में ही संज्ञान लिया गया था यद्यपि उसकी हत्या का प्रयास किये जाने का भी अभिकथन किया गया है जिसे अन्वेषण के दौरान विश्वसनीय नहीं पाया गया था। याची की अग्रिम जमानत प्रार्थना को न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पहले ही अस्वीकार कर दिया गया था और याची को आत्म समर्पण करने का निर्देश दिया गया था लेकिन वह दो वर्षों तक फरार रहा और इस अवधि के दौरान अन्वेषण एजेन्सी ने उसकी गिरफ्तारी का वारंट भी प्राप्त कर लिया था। याची ने 17.2.2006 को मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, राँची के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और उसे उसी दिन यहाँ वर्णित आधारों पर जमानत भी दे दिया गया।

12. मैं पाता हूँ कि एक-दूसरे के विरुद्ध कई एक मुकदमे और प्रति-मुकदमे दर्ज किये गये हैं और अभी भी दोनों पक्षों जो कि पति-पत्नी है, के बीच विवाद के समाधान हेतु आशा की किरण है और याची की ओर से किये गये निवेदन की दृष्टि में न्याय एक सौहार्दपूर्ण समाधान की मांग करता है।

13. मेरा निष्कर्ष है कि विद्वान मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी ने अपने समक्ष प्रस्तुत आधारों को संक्षिप्त रूप से आक्षेपित आदेश में उद्धृत किया और मेरे विचार में मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा विचारित आधार यद्यपि, एक प्रथम दृष्टया निष्कर्ष पर आने हेतु काफी नहीं है, फिर भी साथ ही साथ ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि उन्होंने सामग्री अथवा साक्ष्यों की उपेक्षा की है और याची की जमानत याचिका पर विचार कर पारित किया गया उनका आदेश विकृत है। फिर भी याची की जमानत याचिका पर विचार करने हेतु मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी के समक्ष किया गया यह निवेदन कि विवाह के छह वर्षों के पश्चात दहेज की मांग नहीं उठती है और इतना समय व्यतीत करने के पश्चात् दुल्हा-दुल्हन का दर्जा पति-पत्नी के दर्जे में परिवर्तित हो जाता है को सही नहीं माना जा सकता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 498A एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन दर्ज किया गया अपराध 'जघन्य अपराध' की सीमा में नहीं आता जो अभियोजन द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्यों की गहन परीक्षण किये जाने की अपेक्षा करता हो। यह सुस्थापित है कि जमानत देने के दौरान मामले का विस्तृत

दस्तावेजन और साक्ष्यों का विस्तारपूर्वक परीक्षण नहीं किया जाता है बल्कि समर्थित साक्ष्यों के साथ अभिकथित अपराध की प्रकृति और गंभीरता एवं आवश्यकता के मुताबिक एक संतुलन बनाए रखा जाता है। अभियोजन की ओर से अभिकथित अपराध की ऐसी परिस्थितियाँ प्रस्तुत नहीं की गयी है जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 के अधीन पारित आदेश में हस्तक्षेप किए जाने की अपेक्षा करता है।

14. मेरे विचार में, विद्वान अपर न्यायिक कमिश्नर, छठा, राँची ने मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, राँची द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 के अधीन याची को दिये गये रियायतों को अपास्त करके न्याय प्रशासन के सम्यक अनुक्रम में हस्तक्षेप करने की गलती की है जो मेरे विचार में बिल्कुल आवश्यक नहीं है। न्यायिक हित विद्वान अपर न्यायिक कमिश्नर द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप किए जाने की अपेक्षा रखता है और अत: दांडिक विविध सं॰ 12 वर्ष 2006 में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439(2) में दिनांक 19.3.2007 को पारित उनका आदेश अपास्त किया जाता है।

15. यह दांडिक पुनरीक्षण मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी, राँची के दिनांक 17.2.2006 को पारित आदेश, जिसके द्वारा याची अनिल कुमार दास को डोरन्डा (अरगोड़ा) पी॰ एस॰ केस 207 वर्ष 2003, जी॰ आर॰ 2143 वर्ष 2003 के तत्सम, में नियमित जमानत दी गयी है, को प्रतिवर्तित करते हुए अनुज्ञात किया जाता है लेकिन, इस उपान्तरण के साथ कि वह संबंधित न्यायालय के समक्ष नियमित रूप से हाजिर होगा और उसके जमानतदार उसके करीबी रिश्तेदार होंगे और वह शपथ-पत्र के साथ एक नया जमानत का अनुपालन करेगा जिसकी राशि मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी द्वारा पहले ही निश्चित की जा चुकी है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

हरीश चन्द्र सिंह

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 271 वर्ष 2002. 7 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

सेवा विधि—सेवा से बर्खास्तगी—गलत यात्रा भत्ता विपत्र प्रस्तुत करने के आरोप पर कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही शुरु की गयी—अपचारी कर्मचारी ने इसमें भाग नहीं लिया—कार्यवाही जारी रही जिसका परिणाम बर्खास्तगी में हुआ—अभिनिर्धारित, जैसा कि सेवा समाप्ति आदेश में भी स्वीकार किया गया है, याची ने अपना बचाव प्रस्तुत करने हेतु एक लिखित अनुरोध द्वारा जाँच रिपोर्ट की एक प्रति दिये जाने की मांग की थी—स्वीकृत तौर पर सेवा समाप्ति का आदेश अधिरोपित करने से पूर्व इसकी आपूर्त्ति नहीं की गयी थी—बिना कोई कारण बताए और बिना विचार किए याची द्वारा किये गये अपील को भी खारिज कर दिया गया—बर्खास्तगी और अपीलीय आदेश दोनों अभिखंडित। (पैरा 16)

अधिवक्तागण.—Mr. A.K. Sahani, For the Petitioner; Mrs. Kiran Burman, For the Respondents.

डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति.—याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ साहनी एवं प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, SC III के कनीय अभियंता को सुना।

2. याची ने इस रिट आवेदन में वरीय आरक्षी अधीक्षक, राँची (प्रत्यर्थी सं॰ 5) द्वारा दिनांक 10.7.1994 को पारित उस आदेश (परिशिष्ट-4) के अभिखण्डन हेतु आदेश जारी करने की प्रार्थना की है, जिसके द्वारा याची को सेवा से बर्खास्त किया गया था। दिनांक 25.4.2002 के अपीलीय आदेश

(परिशिष्ट-10) जिसके द्वारा अपनी पदच्युति के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध याची की अपील को अस्वीकृत कर दिया गया था, के अभिखंडन हेतु आदेश जारी करने की प्रार्थना भी की गयी है।

3. संक्षेप में याची के मामले के तथ्य निम्नलिखित हैं:-

याची को राँची जिला पुलिस फोर्स में कॉन्सटेबुल के पद पर दिनांक 18.3.1982 को नियुक्त किया गया था।

लगभग चार वर्ष बाद, 19.3.1986 को उसे प्रत्यर्थी सं॰ 4 के पेंशन शाखा कार्यालय में लेखक कॉन्सटेबुल के तौर पर पदस्थापित किया गया था।

प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने अपने सिफारिश पत्र, दिनांकित 27.1.1989 के द्वारा याची को सहायक आरक्षी उप-निरीक्षक के उच्चतर पद पर प्रोन्नत किये जाने की सिफारिश की।

ऐसी ही एक सिफारिश तत्कालीन महानिदेशक-सह-पुलिस महानिरीक्षक, बिहार, पटना द्वारा दिनांक 13.2.1989 (परिशिष्ट-1) के सिफारिश पत्र में याची के पक्ष में की गयी थी।

दिनांक 10.4.1989 (परिशिष्ट-2) के आदेश द्वारा, उसे पेंशन शाखा के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करने को कहा गया था।

अनुशंसाओं के निबंधनों में, अधिकारियों द्वारा उसे पेंशन शाखा में ए॰ एस॰ आई॰ (पेंशन) पर कार्यवहन करने को कहा गया था और उस हैसियत से अपने कर्तव्य का निर्वहन करने के दौरान में इस अभिकथन पर कि उसने गलत टी॰ ए॰ बिल जमा किया, 30.4.1991 को उसे निलंबन की एक नोटिस की तामीला की गयी थी और उन आरोपों पर उसके विरुद्ध एक अनुशासनिक कार्यवाही शुरु की गयी थी। निलंबन की अवधि के दौरान, उसे जीवन निर्वाह भत्ता दिया गया था।

दिनांक 10.7.1994 को प्रत्यर्थी सं॰ 5 अर्थात् वरीय आरक्षी अधीक्षक, राँची द्वारा उसकी बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-4) पारित किया गया था।

यद्यपि, उसके विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही शुरु की गयी थी और आरोपों के साथ इस कार्यवाही के शुरुआत की नोटिस उसे दी गयी थी जिसमें उसे अपना स्पष्टीकरण दाखिल करने और कार्यवाही में अपना बचाव करने कहा गया था, याची ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया और परिणामत: उसके विरुद्ध एकपक्षीय अनुशासनिक कार्यवाही जारी रही और अंतत: दिनांक 10.7.1994 को वरीय आरक्षी अधीक्षक, राँची द्वारा उसके विरुद्ध उसकी बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश पारित किया गया।

4. याची ने अपीलीय अधिकारी अर्थात् पुलिस महानिरीक्षक राँची, झारखण्ड (प्रत्यर्थी सं॰ 3) के समक्ष अपनी बर्खास्तगी के आदेश के विरुद्ध एक अपील दाखिल की।

5. इस रिट याचिका के लम्बित रहने के दौरान उसकी अपील खारिज कर दी गयी थी और दिनांक 25.6.2002 के पत्र द्वारा उसे बर्खास्तगी के आदेश संप्रेषित किया गया था।

अपनी रिट आवेदन का संशोधन करते हुए याची ने अपनी अपील खारिज करने के आदेश के अभिखंडन हेतु प्रार्थना प्रविष्ट की है।

6. याची सेवा से अपनी बर्खास्तगी के आक्षेपित आदेश और अपनी अपील खारिज किये जाने के आदेश का प्रतिवाद दो आधारों पर किया है:-

(i) चुँकि याची स्वीकृत तौर पर ए० एस० आई० का दर्जा धारित किये हुये था, इसलिए वरीय आरक्षी अधीक्षक, राँची को याची को बर्खास्त करने की कोई अधिकारिता नहीं थी एवं इस प्रकार वरीय आरक्षी अधीक्षक, राँची द्वारा यथा पारित बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश अधिकारिता रहित था।

(ii) याची ने प्रस्तावित सजा के विरुद्ध अपना बचाव पक्ष प्रस्तुत करने हेतु जाँच रिपोर्ट की एक प्रति की विशेष मांग की थी लेकिन उसे जाँच रिपोर्ट की प्रति नहीं दी गयी थी और बिना उसे अपने मामले का बचाव करने का अवसर दिये हुए उसके विरुद्ध बर्खास्तगी का आदेश पारित कर दिया गया था।

7. आधारों का विस्तार से वर्णन करते हुए याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री ए॰ के॰ साहनी ने प्रथमत: परिशिष्ट-1, जो पुलिस उप-महानिरीक्षक (मुख्यालय) के कार्यालय से जारी किया गया आदेश है जिसके द्वारा उसे अस्थायी आधार पर छ: महीने के लिए ही ए॰ एस॰ आई॰ (पेंशन) के पद पर प्रोन्नति दी गयी थी, को निर्दिष्ट किया है। उक्त आदेश का अनुसरण करते हुए उसे ए॰ एस॰ आई॰ (पेंशन) के पद पर प्रोन्नत किया गया था।

परिशिष्ट-5 जो पुलिस उप-महानिरीक्षक, दक्षिणी छोटानागपुर क्षेत्र, राँची द्वारा दिनांक 17.3.1999 को जारी और पुलिस महानिरीक्षक (निरीक्षण) बिहार पटना के सहायक को संबोधित एक स्पष्टीकरण पत्र है, को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि डी॰ आई॰ जी॰ का पत्र स्पष्ट तौर पर अभिस्वीकृत करता है कि सेवा से बर्खास्तगी के दिन याची ए॰ एस॰ आई॰ का पद धारित किये हुये था और इस प्रकार बर्खास्तगी का आदेश पारित करने में सक्षम प्राधिकारी पुलिस का डी॰ आई॰ जी॰ ही है और पुलिस के डी॰ आई॰ जी॰ द्वारा ऐसे मामलों में पारित बर्खास्तगी के आदेश के विरुद्ध अपील को सिर्फ पुलिस महानिरीक्षक ही सुन और निपटा सकता है। विद्वान अधिवक्ता आगे स्पष्ट करते है कि पत्र (परिशिष्ट-5) जोर देता है कि वरीय आरक्षी अधीक्षक राँची को याची को सेवा से बर्खास्त करने का अधिकार एवं सक्षमता नहीं है। परिशिष्ट-7, जो पुलिस उप-महानिरीक्षक, दक्षिणी छोटानागपुर क्षेत्र, राँची के कार्यालय से दिनांक 14.3.2000 को निर्गत और पुलिस महानिरीक्षक (निरीक्षण) बिहार, पटना को संबोधित पत्र है, को आगे निर्दिष्ट करते हुए विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि यह पत्र स्पष्ट करता है कि याची से संबंधित अनेकों पत्राचार में उसका दर्जा ए॰ एस॰ आई॰ के तौर पर उल्लिखित किया गया है।

विद्वान अधिवक्ता तर्क करते हैं कि ऐसी स्वीकृतियों के प्रकाश में प्रत्यर्थी याची को सिपाही के तौर पर मान नहीं सकता है। बल्कि, याची ए॰ एस॰ आई॰ दर्जे का अधिकारी माना जाना चाहिए।

विद्वान अधिवक्ता पुलिस निर्देशिका के नियम 824(5) के प्रावधानों को निर्दिष्ट करते हैं और स्पष्ट करते हैं कि नियम के प्रावधानों के अनुसार सजा के उद्देश्य से एक अधिकारी, उच्चतर पद पर कार्यवहन करते समय, उसी दर्जे का माना जाएगा न कि उस दर्जे का जिसमें कार्रवाई के कारण की उत्पत्ति हुई। विद्वान अधिवक्ता तर्क करते हैं कि स्वीकृत तौर पर याची उच्चतर पद पर कार्यवहन कर रहा था और इस नियम के प्रावधानों के अनुसार उसे सजा के प्रयोजनों से उसे उसी दर्जे का माना जाना चाहिए और मामले को इस दृष्टि से देखने पर उसकी सेवा समाप्ति का आदेश पारित करने में सक्षम प्राधिकारी स्वीकृत तौर पर वरीय आरक्षी अधीक्षक नहीं हैं।

आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-4) को निर्दिष्ट करते हुए विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि आक्षेपित आदेश में भी, यह निरपवाद रूप से अभिस्वीकृत किया गया है कि दिनांक 7.8.1994 के अपने पत्र द्वारा जाँच रिपोर्ट की अनुपस्थिति में अपने कारण बताओं के उत्तर को पक्के तौर पर देने में अपनी असमर्थता जाहिर करते हुए याची ने जाँच रिपोर्ट की प्रति मांगी थी। फिर भी उसे जाँच रिपोर्ट की प्रति नहीं दी गयी और उसकी बर्खास्तगी का आक्षेपित आदेश पारित कर दिया गया। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार यह नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन है।

8. प्रत्यर्थियों की ओर से पुलिस उप-अधीक्षक (मुख्यालय), राँची द्वारा शपथपूर्वक एक प्रतिशपथपत्र दाखिल किया गया है।

यह दिखाया गया है कि याची ने सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 554 वर्ष 1993(आर॰), सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2940 वर्ष 1993(आर॰), एम॰ जे॰ सी॰ सं॰ 186 वर्ष 1993(आर॰) एवं सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 1277 वर्ष 1994(आर॰) के जरिये अनेकों रिट याचिकाएँ इस न्यायालय में दाखिल की है और उनमें से प्रत्येक किसी न किसी रूप में वर्तमान मामले से जुड़े हैं।

याची के दावे के गुणागुण पर, अपनाया गया प्रत्यर्थियों का रवैया यह है कि पुलिस मुख्यालय, बिहार पटना द्वारा पेंशन मामलों का काम समुचित रूप से चलाने हेतु छः महीने की अवधि के लिए याची की तदर्थ प्रोन्नति को दिये गये निर्देश का अनुसरण करते हुए याची को, जो राँची जिला पुलिस बल का लेखक-सिपाही था, ए॰ एस॰ आई॰ (पेंशन) के रिक्त पद पर काम करने की अनुमति दी गयी थी। उसकी प्रोन्नति के आदेश में यह विशेषतः कहा गया था कि सिपाही के दर्जे में, न कि प्रोन्नत पद पर, उसकी वरीयता बनी रहेगी। यह भी जोड़ा गया है कि याची के दावे के विपरीत उच्चतर अधिकारी द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु उसे कोई निर्देश नहीं दिया गया था। बल्कि पेंशन मामलों में आसानी से काम करने के लिए सक्षम बनाने हेतु उसे पेंशन के नियमों और प्रावधानों से अवगत कराया गया था। यह भी स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि उसे ए॰ एस॰ आई॰ के तौर पर कार्य वहन करने हेतु तदर्थ प्रोन्नति प्रदान की गयी थी, फिर भी उसे ऐसे पद पर मिलने वाला वेतन का लाभ नहीं दिया गया था। यह आगे स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि याची को तदर्थ आधार पर ए॰ एस॰ आई॰ (पेंशन) के पद पर प्रोन्नति दी गयी थी, फिर भी ऐसे पद को ए॰ एस॰ आई॰ का पद जैसा कोई पद नहीं माना जा सकता है क्योंकि यह सिर्फ अस्थायी तदर्थ इंतजाम था और इसलिए याची बिहार पुलिस निर्देशिका के नियम 668(a) के अनुसार ए॰ एस॰ आई॰ पद का दावा नहीं कर सकता है।

9. याची के आधारों कि उसे अपना बचाव करने हेतु पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया था, को निर्दिष्ट करते हुए प्रत्यर्थियों द्वारा यह कथन किया गया है कि याची को अनुशासनिक कार्यवाही में भाग लेने और अपना बचाव करने के लिये समुचित और पर्याप्त अवसर दिया गया था लेकिन याची ने उपस्थित होना नहीं चाहा।

यह भी बताया गया है कि याची को दिनांक 1.3.1990 के प्रभाव से सिपाही के पद पर प्रतिवर्तित कर दिया गया था और अपने प्रतिवर्तन के आदेश के विरुद्ध उसने एक रिट आवेदन सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ 2940 वर्ष 1993 (आर॰) दाखिल किया जिसे बाद में याची द्वारा इस आधार पर कि वह अपील करेगा, वापस कर लिया गया।

याची द्वारा दाखिल परिशिष्ट-6 को निर्दिष्ट करते हुए प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा स्पष्ट किया गया है कि पुलिस उप-महानिरीक्षक, दक्षिणी छोटानागपुर क्षेत्र, राँची के कार्यालय द्वारा उठाए गये प्रश्न पर एक पत्र (परिशिष्ट-6) द्वारा स्पष्ट किया गया था कि याची सिपाही का न कि ए॰ एस॰ आई॰ का, पद धारित किए हुये है।

10. परिशिष्ट-A के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि एक निश्चित अवधि के दौरान वेतन का भुगतान न किये जाने के संबन्ध में याची द्वारा दाखिल रिट याचिका सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 554 वर्ष 1993 (आर॰) में इस न्यायालय की एक खंड पीठ द्वारा पारित आदेश भी इसी प्रकृति का है। प्रकटतः इस रिट याचिका का वर्तमान मामले के तथ्यों के संदर्भ में कोई प्रासंगिकता नहीं है।

परिशिष्ट-A/1 सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2940 वर्ष 1993 (आर॰) जो दिनांक 26.3.1993 को पारित आदेश के विरुद्ध दाखिल एक रिट याचिका है, में पारित आदेश की प्रति है। याची को इस याचिका को वापस लेने की अनुमति देकर ताकि वह उचित मंच के समक्ष अपील कर सके यह याचिका निपटायी गयी थी। उस रिट याचिका की भी वर्तमान मामले के तथ्यों के संदर्भ में कोई प्रासंगिकता नहीं है।

परिशिष्ट-A/2 सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ 1277 वर्ष 1994 (आर॰) जिसमें याची ने अपीलीय प्राधिकारी को याची द्वारा दाखिल अपील को शीघ्र निपटाने का निर्देश देने का आदेश प्राप्त करना चाहा है, में पारित आदेश की प्रति है। इस न्यायालय के आदेश का पालन करते हुए अपीलीय प्राधिकारी ने अपील निपटा दिया था और अपील में पारित आदेश इस याचिका में आक्षेपित किया गया है और याची द्वारा चुनौती दी गयी है।

11. याची द्वारा प्रस्तुत आधारों को निर्दिष्ट करते हुए कहा गया है कि उसका पहला प्रतिवाद यह है कि चुँकि उसे ए॰ उस॰ आई॰ (पेंशन) के पद पर प्रोन्नत किया गया था, इसलिए व्यवहारिक आधार पर वह ए॰ एस॰ आई॰ पद धारित किए होने की तरह व्यवहार किये जाने का हकदार है और अत: वरीय आरक्षी अधीक्षक को उसकी सेवा समाप्त करने का अधिकार और अधिकारिता नहीं है।

12. स्वीकृत तौर पर याची को लेखक-सिपाही होने के नाते ए॰ एस॰ आई॰ (पेंशन) के पद पर कार्यवहन करने हेतु तदर्थ अस्थायी प्रोन्नति दी गयी थी। लेकिन प्रोन्नति का पत्र दर्शाता है कि ऐसी प्रोन्नति कतिपय शर्तों पर दी गयी थी कि याची ए॰ एस॰ आई॰ दर्जे में वरीयता का दावा करने का हकदार नहीं होगा और उसकी वरीयता की गणना सिर्फ सिपाही के सारवान पद पर ही की जाएगी। द्वितीयत: वह ए॰ एस॰ आई॰ के पद पर लागू होने वाले वेतनमान का हकदार नहीं होगा।

13. उक्त शर्तों में यह निहित है कि यद्यपि याची को उच्चतर पद पर कार्यवहन हेतु तदर्थ प्रोन्नति दी गयी थी फिर भी उसका मूल पद सिपाही का था। फिर भी पुलिस निर्देशिका के नियम 824(5) के सजा संबंधित प्रावधानों पर विचार करते हुए चुँकि वह उच्चतर पद पर कार्यवहन कर रहा था, अत: उसे उसी दर्जे का माना जाना चाहिए न कि उस दर्जे का जिसमें कार्यवाही के कारण की उत्पत्ति हुई है।

14. प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता प्रभाव डालना चाहेंगे कि ए॰ एस॰ आई॰ (पेंशन) का पद ए॰ एस॰ आई॰ के नियमित पद के बराबर नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने पुलिस सेवा के अधिक्रम में किसी ऐसी कोटि जिसे ए॰ एस॰ आई॰ (पेंशन) के तौर पर चिन्हित किया जा सके, को अभिलेख पर नहीं लाया है। पुलिस निर्देशिका में परावर्तित और अनुरक्षित अधिक्रम दर्शाती है कि सिपाही से ऊँचा पद ए॰ एस॰ आई॰ का है। ए॰ एस॰ आई॰ को किसी विशेष विभाग में काम दिया जा सकता है जैसा कि इस मामले में है, लेकिन वह स्वयं में एक भिन्न पद गठित नहीं करेगा।

15. यह विवाद में नहीं है कि वरीय आरक्षी अधीक्षक को ए॰ एस॰ आई॰ के दर्जे वाले अधिकारियों की सेवा समाप्त करने का अधिकार नहीं है। इसी तरह, पुलिस निर्देशिका के नियम 824 (5) के प्रावधानों के निबंधनों के अनुसार, सजा के संबंध में, याची को उस पद पर जिसका वह कार्यवहन कर रहा था, कार्यरत अधिकारी की तरह व्यवहार किया जाना चाहिए और मामले को इस दृष्टि से देखने पर वरीय आरक्षी अधीक्षक याची के सेवा समाप्ति का आदेश पारित करने की अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर सकते थे।

16. जहाँ तक दूसरे आधार का संबंध है स्वीकृत तौर पर नोटिस दिये जाने के बावजूद याची के उपस्थित होने की विफलता के चलते एकपक्षीय अनुशासनिक कार्यवाही की गयी थी। इस प्रकार, याची के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही में जाँच रिपोर्ट दी गयी थी। फिर भी, जैसा कि सेवा समाप्ति के आक्षेपित आदेश में भी स्वीकार किया गया है, याची ने, लिखित प्रार्थना द्वारा, अपना बचाव करने का विचार प्रकट करते हुए जाँच रिपोर्ट की प्रति मांगी थी। स्वीकृत तौर पर उस पर सेवा समाप्ति की सजा अधिरोपित करने से पहले याची को इसकी आपूर्ति नहीं की गयी थी। मैं याची के विद्वान

अधिवक्ता के तर्क में बल पाता हूँ कि जाँच रिपोर्ट की प्रति की आपूर्त्ति करने से इन्कार करके और प्रस्तावित सजा के विरुद्ध स्पष्टीकरण हेतु कारण बताओं नोटिस न देकर याची को अपने बचाव के हक से वंचित कर दिया गया था और इसलिए सेवा समाप्ति का आदेश नैसर्गिक न्याय और साम्या के सिद्धांतों के घोर उल्लंघन में है।

17. अपीलीय आदेश के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि यद्यपि याची ने अपील में विशेषत: इन आधारों को लिया था, लेकिन इन्हें बिना कारण बताए और बिना सोंच विचार के खारिज कर दिया गया था।

18. उक्त विचार विमर्श के प्रकाश में मैं इस रिट याचिका में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, इसे अनुज्ञात किया जाता है। जैसा कि याची ने प्रार्थना की है, दिनांक 10.7.1994 और 25.4.2002,के आक्षेपित आदेशों क्रमश: परिशिष्ट-4 एवं 10 को अपास्त किया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

इन्द्र मोहन के माध्यम से भारत संघ

बनाम

राम नन्दन सिंह एवं एक अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 5908 वर्ष 2008. 21 अगस्त, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–चयन–तकनीकी परिचालक और सफाईकर्मी के पद पर नियुक्ति के लिए चयन की प्रक्रिया आरंभ की गई परन्तु वित्त विभाग के अनुमोदन के बिना आगे की नियुक्ति रोकने के सरकार के मार्ग-निर्देश के उपरांत इसे रोक दिया गया–अभिनिर्धारित, किसी विज्ञापन के अनुसरण में एक पद के लिए आवेदन करने वाला एक उम्मीदवार चयन का कोई निहित अधिकार प्राप्त नहीं कर लेता–प्राधिकारी को नियुक्ति करने का एक निर्देश देते हुए न्यायालय या अधिकरण परमादेश निर्गत नहीं कर सकता। (पैरा 6 से 10)

निर्णयज विधि.–(1993) 1 SCC 154; 2001 AIR SCW 1720—Relied upon.

अधिवक्तागण.–Mr. Md. Mokhtar Khan, For the Petitioner; M/s Rajiv Ranjan, A.K. Tiwari, For the Respondents.

एम॰ वाई॰ इकबाल, न्यायमूर्ति.–इस रिट याचिका में, याची, भारत संघ, केन्द्रीय भूमिगत जल बोर्ड डिवीजन ने ओ॰ ए॰ संख्या 194/2005 में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, पटना शाखा (सर्किट कोर्ट, राँची) द्वारा पारित दिनांक 15.5.2008 के आदेश को चुनौती दी, जिसके द्वारा अधिकरण ने प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल आवेदन को अनुज्ञात कर दिया था और तकनीकी परिचालक और सफाईकर्मी के पद के लिए दिनांक 2/8 जनवरी, 1999 की अधिसूचना के अधीन प्रारम्भ की गई चयन की प्रक्रिया को पूरा करने का याची को निर्देश निर्गत किया था और प्रत्यर्थीगण को योग्य पाए जाने की स्थिति में उन्हें प्रश्नाधीन पद पर नियुक्त करने के लिए विचार भी करना था।

2. मामले के तथ्य एक संक्षिप्त परिधि में है।

याची ने वर्ष 1999 में प्रकाशित विज्ञापन द्वारा तकनीकी परिचालक और सफाईकर्मी के पद पर नियुक्ति के लिए पात्र उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किया। आवेदनों की छंटनी के उपरांत प्रत्यर्थीगण और अन्य उम्मीदवारों की अन्तर्वीक्षा ली गई। तथापि, इस दौरान, केन्द्रीय मुख्यालय, केन्द्रीय भूमिगत जल बोर्ड, फरीदाबाद द्वारा निर्गत पत्र के माध्यम से उपरोक्त पदों की भर्त्ती वापस ले ली गई। इस प्रकार, भर्त्ती की आगे के प्रक्रिया को सुषुप्तावस्था में रख दिया गया। ओ॰ ए॰ संख्या 232/2001 दाखिल करके

प्रत्यर्थीगण अधिकरण के पास गये, जिसे 18.9.2003 को निस्तारित किया गया था याची को इस निर्देश के साथ की वह उनके अपने अपने मामलों पर विचार करें। प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल पश्चातवर्ती आवेदन द्वारा एक नया आवेदन दाखिल करके अधिकरण के पास जाने की स्वतंत्रता प्रदान की गई। इसलिए, पूर्वोल्लिखित ओ॰ ए॰ संख्या 194/2005 दाखिल करके प्रत्यर्थीगण दुबारा अधिकरण के पास गए।

3. याची, भारत संघ का मामला यह है कि केन्द्रीय प्राधिकार ने वित्त मंत्रालय की अनुमति के बगैर सभी रिक्त पदों को भरने पर एक प्रतिबंध लगा दिया था। तत्पश्चात् दिनांक 16.4.2004 के पत्र द्वारा केन्द्रीय मुख्यालय ने सूचित किया कि 16.5.2000 से पहले की अवधि से संबंधित सभी रिक्त पदों को मंत्रालय द्वारा समाप्त कर दिया गया है और 1.4.2004 को औपचारिक आदेश निर्गत किया गया था। प्रत्यर्थीगण को तद्नुसार 2004 में पदों को समाप्त किए जाने के बारे में सूचित किया गया। अधिकरण ने निर्णय किया कि याची ने पहले ही प्रारम्भ की गई प्रक्रिया को रोक दिया था और कुछ व्यक्तियों की अन्तर्वीक्षा की गई थी। तद्नुसार, अधिकरण ने आक्षेपित आदेश द्वारा परिणाम प्रकाशित करने और नियुक्ति करने का निर्देश निर्गत किया। बेहतर मूल्यांकन के लिए आक्षेपित आदेश के अन्तिम पैरा 6 को इसके नीचे प्रत्युत्पादित किया जाता है:–

> *"6. भारत सरकार वित्त मंत्रालय, व्यय विभाग, कार्यालय ज्ञापांक दिनांक 5.8.1999 पर प्रत्यर्थीगण द्वारा किए गए भरोसा को ध्यान में रखकर हम नोट करते हैं कि उक्त ओ० एम० के पैरा 1 द्वारा योजना और गैर-योजना पदों के सृजन पर प्रतिबंध लगाया गया था। तथापि, उक्त ओ० एम० का पैरा 2, जो ''रिक्त पदों को भरने पर प्रतिबंध'' को अनुबद्ध करता है, स्पष्टीकृत करता है कि उक्त ओ० एम० के अधीन यथा वांछित पुनर्विलोकन को पूरा किए जाने तक वित्त मंत्रालय (व्यय विभाग) की अनुमति के बगैर कोई रिक्त पदों को नहीं भरा जाएगा। इस प्रकार, उपरोक्त ओ० एम० दिनांक 5.8.1999 के पठन से यह प्रकट है कि चयन की प्रक्रिया, जो 2/8 जनवरी, 1999 के उन्हीं के द्वारा प्रारम्भ की गई थी, वित्त मंत्रालय के अनुमोदन के साथ जारी रह सकती थी। स्वीकार्यतः वर्तमान मामले में प्रत्यर्थीगण द्वारा ऐसा नहीं किया गया है और उन्होंने नियुक्ति के आगे की प्रक्रिया को रोक दिया है जो वित्त मंत्रालय द्वारा दिनांक 5.8.1999 के ओ० एम० को निर्गत किए जाने से पहले दिनांक 2/8 जनवरी, 1999 की अधिसूचना के अधीन प्रारम्भ की गई थी। इन परिस्थितियों में, हम क्रमशः दोनों आवेदकों द्वारा दाखिल ओ० ए० संख्या 24/2002 एवं 232/2001 में इस अधिकरण द्वारा पारित दिनांक 18.9.2003 के आदेश के अनुसरण से प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित दिनांक 7.5.2004 के आक्षेपित आदेश को निरस्त और अपास्त करते हैं। हम, जहाँ तक सामान्य कोटि के लिए दो पदों का सवाल है, तकनीकी परिचालन (एम०) एवं सफाईकर्मी के पद के लिए दिनांक 2/8 जनवरी, 1999 की अधिसूचना के अधीन प्रारम्भ की गई चयन की प्रक्रिया को पूरा करने का प्रत्यर्थीगण को निर्देश देते हैं, जिसके तहत परिणाम को प्रकाशित करना और आवेदको को उपयुक्त एवं सुयोग्य पाए जाने की स्थिति में, उनपर प्रश्नाधीन पद पर औपचारिक नियुक्ति के लिए भी विचार करना चाहिए। इस आदेश की सत्यापित प्रति की प्राप्ति की तिथि से तीन महीनों की एक अवधि के भीतर इस कार्य को पूरा कर लेना चाहिए।''*

4. हमने याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता केन्द्र सरकार, श्री मोख्तार खान और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजीव रंजन को सुना है।

5. पूर्वोक्त तथ्य की पृष्ठभूमि में, एकमात्र प्रश्न जो विचारण के लिए उपलब्ध है वह इसको लेकर है कि क्या परिणाम को प्रकाशित करने और नियुक्ति करने के लिए अधिकरण प्रत्यर्थीगण को ऐसा निर्देश देने में औचित्य पर था।

6. पूर्वोक्त प्रश्न के संबंध में विधि अब अनिर्णित नहीं रह गई है। एक विज्ञापन के अनुसरण में एक पद के लिए आवेदन करने वाला एक उम्मीदवार चयन का कोई निहित अधिकार प्राप्त नहीं कर लेता और एक न्यायालय या अधिकरण नियुक्ति करने का निर्देश देते हुए प्राधिकार को परमादेश निर्गत नहीं कर सकता।

7. संघ शासित क्षेत्र चण्डीगढ़ बनाम दिलबाग सिंह, [(1993)1 एस॰ सी॰ सी॰ 154, के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सम्परीक्षित किया:–

"12. अगर हम उपरोक्त सिद्धांत को ध्यान में रखते है कि एक उम्मीदवार, जो एक असैन्य पद पर नियुक्ति के लिए चयनित एक उम्मीदवार के तौर पर चयन सूची में एक स्थान पाता है ऐसे पद पर नियुक्ति के लिए एक अजेय अधिकार प्राप्त नहीं करता ऐसी नियुक्ति के लिए उसे अधिकार्य बनाने में किसी विनिर्दिष्ट नियम की अनुपस्थिति में और वे केवल तभी व्यथित हो सकता है जब प्रशासन मनमाने रूप से किसी विशुद्ध कारणों के बगैर ऐसा करता है, जो एक सह-निष्कर्ष के तौर पर यह सामने लाता है कि ऐसा उम्मीदवार अगर इसके द्वारा उम्मीदवारो की चयन सूची में उसके नाम को एक स्थान प्राप्त होने के कारण ऐसे पदो पर नियुक्त किए जाने की न्यायसंगत अपेक्षा भी हो, विशुद्ध और वैध कारणों से और संघ गैर मनमाने तरीके से ऐसी चयन सूची को रद्द किए जाने के पहले सुनवाई पाने का अधिकारी नहीं होता है।

8. ऑल इण्डिया एस॰ सी॰ एण्ड एस॰ टी॰ कर्मचारी संघ बनाम ए॰ आर्थर जीन, 2001 ए॰ आई॰ आर॰ एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 1720 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सम्परीक्षित किया:–

"10. मात्र इस कारण से कि उम्मीदवारों के औपबंधिक चयन को इंगित करने वाले पैनल में उनके नामों को शामिल किया गया था, वे विद्यमान रिक्तियों के विरुद्ध भी नियुक्ति का कोई अजेय अधिकार प्राप्त नहीं कर लेते और राज्य को सभी रिक्तियों या इनमें से किसी को भरने का कोई वैधानिक वाध्यता नहीं है जैसा कि संकर्षण दास बनाम भारत संघ (1991)3 एस० सी० सी० 47 : (1991 ए० आई० आर० एस० सी० डब्ल्यू० 1583 : ए० आई० आर० 1991 एस० सी० 1612 : 1991 लैब० आई० सी० 1460) में पूर्व के मामलों को निर्दिष्ट करने के उपरांत इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा अधिकथित किया गया था। उक्त निर्णय के पैरा 7 इस प्रकार पठित है:-

"7. यह कहना सही नहीं है कि अगर नियुक्ति के लिए रिक्तियों की एक संख्या अधिसूचित की जाती है और उम्मीदवारों की पर्याप्त संख्या योग्य पाई जाती है, तो सफल उम्मीदवार नियुक्त किए जाने का एक अजेय अधिकार प्राप्त कर लेते हैं जिससे वैधानिक रूप से वंचित नहीं किया जा सकता। सामान्यतः एक अधिसूचना भर्त्ती के लिए योग्य उम्मीदवारों को आवेदन करने के लिए एक आमंत्रण के तुल्य होती है और अपनी चयन होने पर वह पद कोई अधिकार प्राप्त नहीं कर लेते है। जबतक की सुसंगत भर्त्ती नियमावली ऐसा इंगित न कर, राज्य को सभी रिक्तियों या इनमें से किसी को भरने की वैधानिक बाध्यता नहीं होती है। तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि राज्य का मनमाने रूप से कार्य करने का एक लाईसेंस प्राप्त है। रिक्तियों को नहीं भरने का निर्णय यथोचित bona fide कारणों से लिया जाना है। और अगर रिक्तियों को या उनमें से कुछ भरी जाती है तो राज्य भर्त्ती परीक्षण में उम्मीदवारों की यथापरिलक्षित तुलनात्मक मुद्दा का सम्मान करने के लिए बाध्य है और किसी मेदभाव की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस उचित स्थिति का इस न्यायालय द्वारा सदा अनुसरण किया गया है और हरियाणा राज्य बनाम सुभाषचंद्र मरवाहा (1974)3 एस० सी० सी० 220 : (ए० आई० आर० 1973 एस० सी० 2216 : 1974 लैब० आई० सी० 1212 : निलिमा शांगला बनाम हरियाणा राज्य (1986)4 एस० सी० सी० 268: (ए० आई० आर० 1987 एस० सी० 169 : 1987 लैब० आई० सी० 34 या जतीन्द्र कुमार बनाम पंजाब राज्य (1985)1 एस० सी० सी० 122 : (ए० आई० आर० 1984 एस० सी० 1850 में कोई असहमति दर्शाने वाली टिप्पणी नहीं पाते हैं।"

9. वर्तमान मामले में, यह प्रतीत होता है कि भारत सरकार, कार्मिक विभाग के मंत्रालय ने ऐसे पद पर नियुक्ति को प्रतिबंधित करने में विशद रूप से कारणों को चिन्हित किया। यह भी प्रतीत होता

है कि इसी अनुतोष के लिए याची अधिकरण के पास गए और अधिकरण नियुक्ति करने के किसी निदेर्श को निर्गत करने की बजाय, केवल याची को मामले का अवलोकन करने और सम्बद्ध स्थानीय पदाधिकारियों को सूचित करके उम्मीदवारों के सूचित करने के लिए एक निर्णय लेने का निर्देश दिया। पूर्वोक्त निर्देश के अनुपालन में याची भारत संघ ने सम्बद्ध विभाग के पदाधिकारियों को सूचित किया कि वित्त विभाग की अनुमति के बगैर नियुक्ति नहीं की जा सकती। ऐसी परिस्थितियों में, हमारा विचार है कि चयन की प्रक्रिया पूरी करने और नियुक्ति करने का निर्देश याची-भारत संघ को निर्देश देनें में अधिकरण ने अपनी अधिकारिता से आगे जाकर कार्रवाई की। इसलिए, आक्षेपित आदेश में दिया उक्त निर्देश विधि में टिक नहीं सकता।

10. पूर्वोक्त कारणों से, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है और अधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। तथापि, यह सम्परीक्षित किया जाता है कि उक्त पद पर नियुक्ति के लिए भविष्य में कोई विज्ञापन निकाले जाने की स्थिति में प्रत्यर्थीगण के मामले पर भी अन्य के मामलों के साथ विचार किया जाएगा।

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

हाराधन गोस्वामी

बनाम

बैंक ऑफ इण्डिया एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 383 वर्ष 2005. 24 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

भारत का संविधान, 1950—अनुच्छेद 226—रिट की समर्थनीयता–वैकल्पिक उपचार–रिट अधिकारिता में विवादित धन दावे का अधिनिर्णयन नहीं किया जा सकता जबकि एक धन वाद सिविल न्यायालय में लम्बित है। (पैरा 15 एवं 16)

अधिवक्तागण.–Mr. Anil Kumar, For the Petitioner; M/s A. Allam, Shrawan Kumar, For the Respondents.

आदेश

याचीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री अनिल कुमार एवं प्रत्यर्थीगण के विद्वान वरीय अधिवक्ता, श्री ए॰ आलम को सुना।

2. प्रारम्भ में ही, इसे नोट किया जाए कि इस रिट आवेदन के लम्बित रहने के दौरान, याची संख्या 2 की मृत्यु हो चुकी थी। याची के विद्वान अधिवक्ता की प्रार्थना पर, याची संख्या 2 के नाम को हटा दिया गया है और मृतक याची संख्या 2 के पति होने के कारण, अकेले याची संख्या 1 द्वारा इस रिट आवेदन में कार्यवाही की जा रही है।

3. याचीगण ने दीर्घावधि दोहरी जमा योजना के तौर पर अक्टूबर 1983 से अगस्त, 1990 के बीच विभिन्न तिथियों को संयुक्त रूप से धन के विभिन्न राशियाँ जमा की थी और ऐसे प्रत्येक जमा को विनिर्दिष्ट तिथियों को परिपक्व होना था। याची द्वारा इस प्रकार जमा की गई कुल राशि 1,06,705/- रुपए थी।

4. जमाओं की प्रारम्भिक परिपक्वता पर, याचीगण ने आगे की अवधि के लिए राशि का नवीकरण कर दिया और पश्चातवर्ती परिपक्वता पर, याचीगण ने राशि के भुगतान की मांग की परन्तु जब कभी भी वे शाखा प्रबंधक के पास गए तो उसने किसी न किसी बहाने पर परिपक्वता राशि के भुगतान को टाल दिया।

5. समय के अनुक्रम में, प्रत्यर्थी-बैंक के शाखा प्रबंधक अर्थात डी॰ बी॰ मण्डल के अन्य शाखा में स्थानांतरण कर दिया गया और उसकी जगह पर एक अन्य प्रबंधक ने योगदान दिया। परिपक्वता राशि के भुगतान की मांग करने पर, उत्तराधिकारी शाखा प्रबंधक द्वारा याचीगण को सूचित किया गया कि सावधि जमा की राशियाँ गजेन्द्र मिश्रा द्वारा ओवरड्राफ्ट लेने के विरुद्ध उसके खाते में गिरवी रख दी गई थी।

6. याचीगण ने चौंकते हुए यह जाना कि 20.2.1988 को जब याचीगण ने शाखा प्रबंधक डी॰ बी॰ मण्डल से मुलाकात की थी तो उसने परिपक्वता राशि के भुगतान के बहाने पर उनके हस्ताक्षरों को कुछ सादे कागजों और जमा-प्रपत्रों पर प्राप्त कर लिया था और याचीगण ने प्रबंधक पर भरोसा करते हुए सद्भावना से सादे कागजों पर अपने हस्ताक्षर कर दिये थे।

7. यह समझ में आने पर कि शाखा प्रबंधक डी॰ बी॰ मण्डल ने बैंक के ग्राहक गजेन्द्र मिश्रा के साथ मिलीभगत करके उनके साथ छल किया था, याचीगण ने गिड्डी पुलिस थाने में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की और अभियुक्त बैंक पदाधिकारी एवं उक्त ग्राहक के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 420, 467, 468, 471 एवं 120B के अधीन एक मामला दर्ज कराया गया। दोनों अभियुक्त व्यक्तियों का विचारण किया गया और भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 468, 420 एवं 120B के अधीन अपराध के लिए उनकी दोषसिद्धि की गई और उनको कारावास भुगतने का दण्डादेश किया गया। तत्पश्चात् शाखा प्रबंधक डी॰ बी॰ मण्डल को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया।

अभियुक्त शाखा प्रबंधक द्वारा अपनी दोषसिद्धि और दण्डादेश के विरुद्ध दाखिल अपील को भी खारिज कर दिया गया।

8. इस अवधि के दौरान, प्रत्यर्थी बैंक ने उक्त बैंक ग्राहक गजेन्द्र मिश्रा के विरुद्ध त्रैमासिक रूप से बद्धित समेत 18% वार्षिक ब्याज के साथ 92,980.63/- रुपए की एक राशि की वसूली के लिए सब-जज-1, हजारीबाग के न्यायालय में धन वाद संख्या 10 वर्ष 1996 के माध्यम से एक धन वाद दाखिल किया और वाद में याचीगण को भी Proforma प्रतिवादीगण के तौर पर अभियोजित किया गया।

9. सावधि जमाओं की परिपक्वता राशि की मांग ब्याज के साथ करते हुए याचीगण ने बैंक के विरुद्ध प्रतिदावे को सामने रखते हुए अपने लिखित कथन दाखिल किया।

याचीगण द्वारा किए गए प्रति-दावे के विरुद्ध प्रत्यर्थी-बैंक द्वारा दाखिल प्रति उत्तर में, बैंक ने पक्ष लिया है कि चूँकि याचीगण को केवल प्रोफार्मा प्रतिवादीगण के तौर पर अभियोजित किया गया था और उनके विरुद्ध कोई अनुतोष इप्सित किए जाने के कारण प्रतिदावा समर्थनीय नहीं है।

याचीगण के धन को लौटाने से प्रत्यर्थी-बैंक के अधिकारियों के इन्कार करने के कारण लोक अदालत के समक्ष भी धन वाद में उठाए गए विवाद का निस्तारण नहीं किया जा सका।

10. यह दावा करते हुए कि याचीगण के धन को लौटाने में प्रत्यर्थी-बैंक की ओर से किया गया इन्कार अवैधानिक और मनमाना है। ये परिपक्वता मूल्य के साथ और 18% वार्षिक ब्याज की दर से 1,06,705/- रुपए की राशि का याचीगण को भुगतान करने का प्रत्यर्थी-बैंक को निर्देश देने की एक प्रार्थना के साथ याचीगण ने मौजूदा रिट आवेदन दाखिल किया है।

11. प्रत्यर्थी-बैंक की ओर से एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है। प्रत्यर्थीगण द्वारा उठाई गई प्रारंम्भिक आपत्ति रिट की गैर समर्थनीयता को लेकर है यह दावा करते हुए कि प्रत्यर्थी-बैंक प्रतिवादीगण के विरुद्ध वर्त्तमान याचीगण को शामिल करते हुए शेष बकायों की वसूली के लिए पहले ही एक वाद दाखिल कर चुका है, जो आवश्यक प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 हैं और याचीगण भी वाद का प्रतिवाद कर रहे हैं।

प्रत्यर्थीगण का अगला तर्क यह है कि रिट भी समर्थनीय नहीं है क्योंकि विवादों में तथ्यों के विवादित प्रश्न अंतर्ग्रस्त हैं जिनका अधिनिर्णय इस रिट आवेदन में नहीं किया जा सकता।

प्रत्यर्थीगण ने यह स्पष्टीकृत करना इरिसत किया है कि याचीगण और प्रधान ऋणी गजेन्द्र मिश्रा मित्र थे और उक्त गजेन्द्र मिश्रा ने बैंक से ऋण लिया था और 17.2.1988 को उसे 87,000/- रुपए का एक ओवरड्राफ्ट स्वीकृत किया गया था। वर्तमान याचीगण द्वारा अपने डी० बी० डी० एवं आर० डी० खातों को जमाकर दी गई समपार्श्विक प्रतिभूति के विरुद्ध तत्कालीन शाखा प्रबंधक, डी० बी० मण्डल द्वारा ऐसा ऋण स्वीकृत किया गया था। चूँकि प्रधान ऋणी ने ऋण की राशि में व्यतिक्रम किया था, इसलिए बकाया राशि संचित हो गई थी। बैंक ने ऋणी गजेन्द्र मिश्रा के खातों से वसूली करने की कार्यवाही की और शेष ऋण के विरुद्ध 20.8.1993 को याचीगण के डी० बी० डी० खातों के आगामों का सामंजस कर लिया गया और इसके उपरांत भी बकाया का चुक्ता न होने के कारण बैंक ने 92,980.63/- रुपए के शेष बकाए की वसूली के लिए 7.8.1996 को सब-जज 1, हजारीबाग के न्यायालय में धन वाद दाखिल किया। प्रधान ऋणी गजेन्द्र मिश्रा मुख्य प्रतिवादी है जबकि याचीगण को प्रोफॉर्मा प्रतिवादीगण के तौर पर अभियोजित किया गया है क्योंकि वे उनकी समपार्श्विक प्रतिभूति की सीमा तक उत्तरदायी थे जो प्रधान ऋणी द्वारा प्राप्त किए गए ऋण के विरुद्ध बैंक के यहाँ गिरवी रखी गई थी।

12. प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति शपथपत्र में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि याचीगण ने 1992 में शाखा प्रबंधक को भूतपूर्व शाखा प्रबंधक और प्रधान ऋणी गजेन्द्र मिश्रा द्वारा किए गए कपट कपट कार्यों के बारे में सूचित कर दिया था और भूतपूर्व शाखा प्रबंधक और गजेन्द्र मिश्रा के विरुद्ध याचीगण द्वारा संस्थित आपराधिक मामले के बारे में भी बैंक को सूचित कर दिया गया था जिसमें दोनों को दोषसिद्ध और कारावास से दंडित किया गया था।

13. प्रतिद्वंदी निवेदनों से, यह प्रतीत होता है कि स्वीकार्यत: याचीगण ने प्रत्यर्थी-बैंक के पास दीर्घ अवधि जमा के तौर पर धन की विभिन्न राशियां जमा की थी जो कुल मिलाकर 1,06,705/- रुपए होती थी।

परिपक्वता पर दीर्घ अवधि जमाओं की राशि का याची को बैंक द्वारा भुगतान नहीं किया गया था। अपितु, उनको सूचित किया गया था कि बैंक के ग्राहकों में से एक, अर्थात, गजेन्द्र मिश्रा को उसके द्वारा प्रदत्त ऋण के विरुद्ध सम्पार्श्विक प्रतिभूति के तौर पर याचीगण द्वारा गिरवी रख दिए गए थे।

याचीगण ने इस दावे पर प्रश्न उठाया था और बैंक के शाखा प्रबंधक और ग्राहक के विरुद्ध एक दाण्डिक मामला संस्थित किया था।

विचारण के दौरान दोनो अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप मुख्यत: याचीगण से कपटपूर्ण तरीके और छल करके हस्ताक्षर प्राप्त करके और उनके साथ जालसाजी करके याचीगण को ठगने से सम्बंधित अपराध करने का था। अपराध का आरोप विचारण के दौरान सिद्ध कर दिया गया था और दोनों अभियुक्त व्यक्तियों की दोषसिद्धि की गई थी और उन्हें दण्डादेश सुनाया गया था। विचारण न्यायालय के दोषसिद्धि और दण्डादेश के निर्णय के विरुद्ध दाखिल अपील को भी खारिज कर दिया गया था।

इन तथ्यों को मान्यता देते हुए, बैंक ने शाखा प्रबंधक को बर्खास्त कर दिया था।

14. प्रतिद्वंदी निवेदनों से स्वीकृत तथ्य ये हैं कि परिपक्वता राशि के गैर भुगतान से संबंधित विवाद वर्तमान व्यवहार न्यायालय के समक्ष लम्बित है। याचीगण ने वाद में दाखिल अपने लिखित कथनों द्वारा वादी बैंक के विरुद्ध एक प्रति दावा उठाया है।

याचीगण की व्यथा यह है कि बैंक को उनके ही शाखा प्रबंधक द्वारा किए जाने वाले ऐसे कपटपूर्ण कार्यों की जानकारी होने के बावजूद उसने उक्त ऋणी की बैंक पर बकाया राशि के भुगतान के लिए याचीगण के धन का विनियोजन करने की अवैधानिक कार्यवाही की है; यद्यपि याचीगण ने कभी भी ऐसे धन के प्रतिसंदत्त करने के लिए गारंटी देने की बात मानी या स्वीकार नहीं की थी और न हीं उन्होंने कभी भी सम्पार्श्विक प्रतिभूति के तौर पर अपने सावधि जमाओं को गिरवी रखा था।

15. चूंकि स्वीकार्यत: याचीगण ने धन वाद में अपने प्रति दावा को दाखिल करके प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध अपने दावे को आगे बढ़ाया है और चूंकि सुसंगत मुद्दे को वाद में पक्षों के अभिवाकों के आधार पर धन वाद में विचारण न्यायालय द्वारा विरचित और निर्णीत किया जाना है और चूंकि इस विवाद में तथ्यों के विवादित प्रश्न अंतर्ग्रस्त है अत: यह न्यायालय अपनी रिट अधिकारिता के इस्तेमाल करते हुए इनके भीतर संभवत: नहीं जा सकता। इस प्रकार इस रिट आवेदन को असमर्थनीय अवधारित किया जाता है और तद्नुसार खारिज किया जाता है।

16. तथापि, याचीगण को विधि की प्रक्रिया द्वारा अपनी राशि की वसूली के लिए बैंक के विरुद्ध अपने दावे को आगे बढ़ाने की स्वतंत्रता होगी, अगर लम्बित धन वाद में अभिवाकों के आधार पर ऐसा अनुमान्य हो या वैकल्पिक रूप से पृथक कार्यवाही के माध्यम से वे ऐसा कर सकते है और ऐसी स्थिति में वे ऐसा दावा दाखिल करने में विलम्ब की माफी के अनुतोष का दावा करने और इसे प्राप्त करने के अधिकारी होंगे।

इन सम्परीक्षणों के साथ, इस रिट आवेदन का निस्तारण किया जाता है।

तथ्यों एवं परिस्थितियों में, व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं होगा।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

होली क्रॉस स्कूल एवं एक अन्य (5939 में)

संत जेवियर स्कूल (5940 में)

डी॰ नोबिली स्कूल एवं अन्य (5941 में)

सुरेन्द्र नाथ सेन्टिनरी स्कूल (3096 में)

डी॰ ए॰ वी॰ कॉलेज प्रबंधन समिति (3098 में)

सरदार पटेल पब्लिक स्कूल (3150 में)

एम॰ जी॰ एम॰ उच्च माध्यमिक विद्यालय (3151 में)

जी॰ एण्ड एच॰ हाई स्कूल (3152 में)

गुरु गोबिन्द सिंह पब्लिक स्कूल (3153, 3163 में)

पेन्टेकोस्टल ऐसेम्बली स्कूल (3154 में)

होली क्रॉस स्कूल (3155 में)

कैम्ब्रियन पब्लिक स्कूल (3156 में)

श्री अयप्पा पब्लिक स्कूल (3157 में)

टेन्डर हर्ट सिनियर सेकेन्डरी स्कूल (3158 में)

चिन्मय विद्यालय (3159 में)

ब्रिजफोर्ड स्कूल (3160 में)

फिरायालाल पब्लिक स्कूल (3161 में)

दिल्ली पब्लिक स्कूल (3162, 3166 में)

लेडी के॰ सी॰ राय मेमोरियल स्कूल (3164 में)

कैरालि स्कूल (3165 में)

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य (5939, 5940, 5941, 3096, 3098 में)

झारखण्ड ऐडुकेशन ट्रिब्यूनल एवं अन्य (3150 से 3166 में)

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5939, 5940, 5941 वर्ष 2008, 3096, 3098, 3150 से 3166 वर्ष 2009. 18 अगस्त, 2009 को विनिश्चित।

झारखण्ड शिक्षा अधिकरण अधिनियम, 2005—धारा 9—झारखण्ड के सभी निजी प्रबंध वाले विद्यालयों के शुल्क में 15% से अधिक की वृद्धि–यह अभिवाक् कि अधिकरण को सभी निजी विद्यालय की शुल्क संरचना के साथ छेड़-छाड़ करने की शक्ति नहीं है क्योंकि वे सरकार से अनुदान प्राप्त नहीं करते हैं–इसके अतिरिक्त विद्यालयों के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं की गई थी और विद्यालयों को किसी नोटिस का भी तामीला नहीं कराया गया था–सभी सम्बद्ध पक्षों की अन्तिम सुनवाई के लिए मामले का स्थगन। (पैरा 12)

अधिवक्तागण.–M/s Delip Jerath, Tapash Kabiraj, Satish Kumar Ughal, Ananda Sen, Ranjan Kumar, Rajiv Ranjan, Manoj Kumar Choubey, Vishal Kr. Trivedi, Abhay Kumar Mishra, For the Petitioners; M/s R. Krishna, Rajiv Ranjan Mishra, For the State; Mr. Anil Kumar Sinha, For the J.E.T.

आदेश

W.P.(C) Nos. 5939, 5940, 5941 of 2008; 3096, 3152, 3156, 3158, 3160, 3161, 3162, 3164, 3165, 3166 of 2009 :

पूर्वोक्त सभी रिट याचिकाओं में, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि बिना कोई नोटिस दिए, झारखण्ड शिक्षा अधिकरण द्वारा दिनांक 6 जून, 2009 को एक आदेश पारित किया गया है, जिसके द्वारा इन विद्यालयों के संबंध में कोई शिकायत प्राप्त किए बिना ही 15% से अधिक शुल्क नहीं बढ़ाने पर एक स्थगन दे दिया गया है और झारखण्ड राज्य के भीतर सभी विद्यालयों के लिए अधिकरण द्वारा एक समिति गठित की गई है और, इसलिए, दिनांक 6 जून, 2009 का आक्षेपित आदेश निरस्त और अपास्त किए जाने का अधिकारी है। डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 2876 वर्ष 2007 एवं अन्य संबंधित मामलों में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 28 अगस्त, 2007 के निर्णय पर भी उन्होंने भरोसा किया है।

2. याची(गण) के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि, वस्तुत:, अधिकरण अपने समक्ष लम्बित एक मामले को जनहित याचिका के तौर पर नहीं मान सकता और किसी शिकायत की अनुपस्थिति में प्रत्येक विद्यालय पर लागू होने वाला एक सामान्य आदेश पारित नहीं कर सकता और याचीगण को इस प्रभाव की कोई नोटिस दिए बगैर कि याचीगण (इसमें विद्यालय) शुल्क संरचना की वृद्धि नहीं कर सकता। उन्होंने झारखण्ड शिक्षा अधिकरण अधिनियम, 2005 (संक्षेप में अधिनियम, 2005) और विशेषकर उक्त अधिनियम, 2005 की धारा 9 पर और कई अन्य धाराओं पर भरोसा किया है।

3. उनलोगों ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी दिए गए कई निर्णयों पर भरोसा किया है और निवेदन किया है कि विद्यालयों द्वारा अधिरोपित शुल्क से संबंधित निर्णय लेने की अधिकरण को कोई शक्ति, अधिकारिता एवं प्राधिकार नहीं है, क्योंकि वे गैर सहायता प्राप्त निजी तौर पर संचालित विद्यालय है, इनमें से कई तो अल्पसंख्यकों का विद्यालय है।

4. मैंने प्रत्यर्थी संख्या 10 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता को सुना है, जिन्होंने निवेदन किया है कि यह सही है कि याचीगण-विद्यालयों में से अधिकांश को नोटिस नहीं दी गई है। डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 5939 वर्ष 2008 में याची संख्या 2 को एक नोटिस दी गई है। इसी प्रकार डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 5941 में, याची संख्या 3 को छोड़कर, सभी याचीगण को नोटिस दी गई है। प्रत्यर्थी संख्या 10 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि विद्यालयों द्वारा लगाए जाने वाले शुल्कों को नियत करने या सीमित करने की पूरी शक्ति, अधिकारिता एवं प्राधिकार,

अधिकरण को सभी शक्ति प्राप्त है। प्रत्यर्थी संख्या 10 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी जोरदार तरीके से निवेदन किया गया है कि अधिकरण को एक समिति गठित करने की पूर्ण शक्ति अधिकारिता एवं प्राधिकार है क्योंकि अधिकरण एक लागत लेखापाल या चार्टर्ड लेखापाल नहीं है और, इसलिए, अधिकरण ने एक समिति गठित की है ताकि अधिकरण को सक्षम सहायता दी जा सके। फिर भी, अधिकरण द्वारा कोई अन्तिम निर्णय नहीं लिया गया है और अधिनियम, 2005 की धारा 15 के अधीन आक्षेपित आदेश एक अपीलयोग्य आदेश है।

5. झारखण्ड राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि इस प्रकार राज्य का एक आदेश चुनौती के अधीन नहीं है। राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि पूरा मामला अधिकरण के समक्ष न्यायाधीन है और डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 5939 वर्ष 2008, 5940 वर्ष 2008 एवं 5941 वर्ष 2008 में याचीगण-विद्यालयों ने सरकार द्वारा लिए गए निर्णय को चुनौती दी है, जो अधिसूचना के रूप में है, जिसके द्वारा, उनकी चुनौती कि सरकार गैर-सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक विद्यालयों के प्रशासन के साथ छेड़छाड़ नहीं कर सकती। अधिकरण द्वारा पारित एकपक्षीय आदेश शेष याचीगण द्वारा चुनौती दी गई है। फिर भी, यह निवेदन किया गया है कि एक विशिष्ट विद्यालय के विरूद्ध J.E.T. के समक्ष एक परिवाद होना चाहिए था और उस विद्यालय को सुनवाई की एक नोटिस निर्गत करना चाहिए था, जिसके विरुद्ध एक आदेश पारित किया गया है।

6. पूर्वोक्त निवेदनों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि झारखण्ड शिक्षा अधिकरण ने दिनांक 6 जून, 2009 का एक आदेश पारित किया है, जिसने वर्तमान याचीगण समेत झारखण्ड राज्य के भीतर, सभी विद्यालयों को अपनी परिधि में ले लिया है, किसी भी विद्यालय के संबंध में व्यक्तिगत शिकायत प्राप्त किए बगैर और बिना ऐसी नोटिस निर्गत किए कि वे अपनी शुल्क संरचना में 15% से अधिक की बढ़ोत्तरी नहीं करेंगे और सभी विद्यालयों के लिए एक समिति गठित की गई है ताकि समिति के समक्ष विद्यालय अपना पक्ष रख सके और समिति द्वारा अधिकरण को एक विस्तृत रिपोर्ट दी जा सके, ताकि अधिकरण द्वारा अन्तिम निर्णय लिया जा सके।

7. दिनांक 6 जून, 2009 के आक्षेपित आदेश से यह भी प्रतीत होता है कि समिति से एक रिपोर्ट प्राप्त करने के उपरांत अधिकरण एक अन्तिम आदेश पारित करेगा। अधिनियम, 2005 के प्रावधानों और विशेषकर धारा 9 के प्रावधानों को देखते हुए और अधिनियम, 2005 की धाराएँ 11 एवं 13 के प्रावधानों को भी देखते हुए और इस तथ्य को भी देखते हुए कि न तो किसी विशिष्ट विद्यालय के विरूद्ध कोई शिकायत है और न हीं इन विद्यालयो को कोई नोटिस दी गई थी और पूर्वोक्त याचीगण-विद्यालयों के लिए अधिकरण द्वारा दिनांक 6 जून, 2009 को एक सामान्य आदेश पारित कर दिया गया है। डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 5939 वर्ष 2008 के याची संख्या 2 और डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 5941 वर्ष 2008 के याची संख्या 1, 2, 4, 5 एवं 6 को इसी प्रकार नोटिस दी गई है। इस प्रकार, इन याचीगण के सिवाय, शेष याचीगण को अधिकरण द्वारा कोई नोटिस निर्गत नहीं की गई है। झारखण्ड शिक्षा अधिकरण के समक्ष किसी परिवादी द्वारा कोई शिकायत दाखिल नहीं की गई है और दिनांक 6 जून, 2009 के आदेश में यह कहा गया है कि राज्य के सभी निजी सहायता वाले और सम्बद्ध विद्यालयों पर 15% का स्लैब (Slab) लागू होगा क्योंकि इस राज्य के लगभग सभी विद्यालयों ने इस शैक्षणिक वर्ष में शुल्क की मनमाने तरीके से बढ़ोतरी कर दी है। इस प्रकार, याचीगण के पक्ष में प्रथम दृष्टया एक मामला है। सुविधा का संतुलन भी याचीगण के पक्ष में है। राज्य के अधिवक्ता द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि झारखण्ड राज्य में लगभग 3000 विद्यालय है। इसलिए, अगर जे॰ ई॰ टी॰ समिति से रिपोर्ट आने की प्रतीक्षा करेगा तो इसमें कई महीने लग सकते हैं और इस प्रकार शैक्षणिक वर्ष या ऐसे कई वर्ष गुजर जाऐंगे। वर्धित वेतन और अन्य खर्च इन वर्षों के दौरान बना रहेगा। कई

महीनों तक एक साथ अवहन योग्य होने के कारण विद्यालयों को बन्द तक करने की आवश्यकता आ सकती है। इस प्रकार, याचीगण को अपूरणीय क्षति कारित होगी अगर यथा प्रार्थित रूप से स्थगन प्रदान नहीं किया जाता है।

8. इन तथ्यों एवं कारणों से, मैं एतद् द्वारा झारखण्ड शिक्षा अधिकरण द्वारा पारित दिनांक 6 जून, 2009 के एक आदेश के प्रवर्तन, कार्यान्वयन और निष्पादन को स्थगित करता हूँ, जहाँ तक पूर्वोक्त याचीगण-विद्यालयों का सवाल है। क्योंकि उनके विरुद्ध कोई परिवाद नहीं है और झारखण्ड शिक्षा अधिकरण द्वारा कोई नोटिस निर्गत नहीं की गई है। जहाँ तक डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 5939 वर्ष 2008 का सवाल है याची संख्या 3 को स्थगन दिया जाता है और शेष रिट याचिकाओं में, सभी याचीगण के पक्ष में स्थगन दिया जाता है, क्योंकि इनमें से किसी भी विद्यालय को किसी नोटिस का तामीला नहीं कराया गया है और जहाँ तक इन याचीगण विद्यालयो का सवाल है झारखण्ड शिक्षा अधिकरण ने कोई शिकायत प्राप्त नहीं की है।

9. जहाँ तक शेष रिट याचिकाओं में शेष याचीगण का सवाल है, विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि कई याचीगण को नोटिस निर्गत की गई है और वे झारखण्ड शिक्षा अधिकरण के समक्ष उपस्थित हो रहें हैं। झारखण्ड शिक्षा अधिकरण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि जिन मामले में नोटिस निर्गत की गई है, अन्तिम निर्णय यथासंभव शीघ्रातिशीघ्र लिया जायगा।

10. पूर्वोक्त आश्वासन पर, याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वे सुनवाई के साथ सहयोग करेंगे और वे अपेक्षा करते हैं कि अधिकरण सुनवाई के कार्य दैनिक आधार पर करेगा, ताकि अधिकरण के समक्ष सफल होने की स्थिति में भी वे अपने शुल्क की हानि न भुगते और ऐसी स्थिति में उपचार बीमारी से भी बढ़कर होगा और इसलिए याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है जिनपर नोटिसों का तामीला कराया गया है कि अधिकरण को एक निर्देश दिया जाय कि दस दिनों के भीतर एक निर्णय लिया जाए और बिना किसी स्थगन के वे प्रतिदिन सुनवाई किए जाने के लिए तैयार है। उन मामलों, जिनमें नोटिस निर्गत की गई है, का निस्तारण करने के लिए झारखण्ड शिक्षा अधिकरण के एक उपयुक्त निर्देश दिया जाए, ताकि विद्यालयों को अपने विद्यालयों की शुल्क संरचना के अन्तिम परिणाम और अपने दावे की वैधता के बारे में जानकारी मिल सके। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह इंगित किया गया है कि अगर उन विद्यालयों को, जिनको नोटिस निर्गत की गई है, न्याय प्रदान करने के अधिकरण के इच्छा, चिन्ता और तत्परता है तो समिति की आंशिक रिपोर्ट मंगाई जा सकती है या अधिकरण स्वयं ही आय एवं खर्च के आँकड़ों, भावी विकास की योजना इत्यादि का अवलोकन कर सकता है। इस सुझाव पर अधिकरण द्वारा विचार किया जाएगा।

11. डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्याएं 5939, 5940 और 5941 (सभी वर्ष 2008) में याचीगण विद्यालयों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अधिकरण के समिति को नियुक्त करने की कोई शक्ति अधिकारिता एवं प्राधिकार भी नहीं है। याचीगण के सभी विद्वान अधिवक्ताओं का भी यही निवेदन है। इन सभी मामलों को इस न्यायालय के समक्ष खुला रखा जाता है और चूंकि मामले अभी चल रहे थे, अत: वे मुद्दे, जो याचीगण द्वारा उठाए गए हैं, खुले रखे जाते हैं।

12. मामले 14 सितम्बर, 2009 तक के लिए स्थगित किए जाते हैं।

<u>डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) संख्या 3098 वर्ष 2009 :</u>

याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री आनन्द सेन ने निवेदन किया कि डी॰ ए॰ वी॰ महाविद्यालय प्रबंध समिति के प्रबंधक ने याची द्वारा संचालित महाविद्यालयों/विद्यालयों की ओर से यह रिट आवेदन दाखिल किया है। उनकी संख्या साठ से अधिक है। परन्तु, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाई गई अभ्यापति को देखते हुए, प्रत्येक विद्यालय के मामले में पृथक याचिकाएं दाखिल करेंगे और इस प्रकार

इस याचिका के वापस लेने की अनुमति दी जा सकती है। पृथक रिट याचिकांए दाखिल करने की स्वतंत्रता याची-प्रबंध-समिति के पास सुरक्षित रहेगी।

यथा इप्सित अनुमति प्रदान की जाती है और याची प्रबंध समिति के अधीन व्यक्तिगत विद्यालयों को पृथक रिट याचिकाएं दाखिल करने की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है और मामले के गुणावगुण में प्रवेश किए बगैर, इन रिट याचिका को वापस लेने की अनुमति दी जाती है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

राधा कांत चौधरी

बनाम

पीठासीन पदाधिकारी, श्रम न्यायालय, राँची एवं एक अन्य

एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 297 वर्ष 2004. 2 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–विभागीय कार्यवाही–विभागीय कार्यवाही की समाप्ति याची की बर्खास्तगी में हुई–अधिकरण ने भी बर्खास्तगी के आदेश को बरकरार रखा–अभिनिर्धारित, उच्च न्यायालय एक अपील का न्यायालय नहीं है–किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती है जब एक विभागीय जाँच/कार्यवाही में आरोप सिद्ध कर दी जाती है विशेषकर जब अधिकरण ने समूचे साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया है और दण्ड को बरकरार रखा है। (पैरा 6 से 8)

निर्णयज विधि.–AIR 1999 SC 2407; (2006) 1 SCC 430; 2002 AIR SCW 2172—Relied upon.

अधिवक्तागण.–M/s Indrajit Sinha, Bibhash Sinha, For the Appellant; Mr. Rajiv Ranjan, For the Respondents.

आदेश

सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 2812 वर्ष 1994 (आर॰) में पारित दिनांक 14.11.2003 के निर्णय के विरुद्ध यह लेटर्स पेटेण्ट अपील निर्दिष्ट है जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को खारिज कर दी है। पूर्वोक्त रिट याचिका में अपीलार्थी ने पीठासीन पदाधिकारी, श्रम न्यायालय, राँची द्वारा संदर्भ केस संख्या 4 वर्ष 1993 में पारित अधिनिर्णय को चुनौती दी थी जिसके द्वारा उन्होंने अपीलार्थी की सेवा से बर्खास्तगी के आदेश को बरकरार रखा था।

2. यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी-कर्मकार, प्रत्यर्थी एच॰ ई॰ सी॰ की 06 शॉप एफ॰ एफ॰ पी॰ में एक फिटर था। अगस्त, 1979 में, अपीलार्थी को एक अन्य के साथ 02 शॉप में स्थानांतरित कर दिया गया इस आधार पर कि 06 शॉप में कोई कार्य नहीं था। अपीलार्थी ने अपने स्थानांतरण पर अभ्यापति जताई और लगभग एक महीने के उपरांत उसने 06 शॉप के सहायक प्रबंधक के कार्यालय में प्रवेश किया और उसके चेहरे पर थप्पड़ मारकर उसपर प्रहार किया। तत्पश्चात अपीलार्थी को निलंबित कर दिया गया और निम्नांकित आरोपों पर उसके विरुद्ध एक विभागीय कार्यवाही प्रारम्भ की गई।

(i) दिनांक 1.8.1979 के कार्यालय आदेश से, याची को 02-शॉप पर रिपोर्ट करने के लिए 06 शॉप से अवमुक्त कर दिया गया जिसकी उसने अनुपालन नहीं की। यह सक्षम प्राधिकार के विधिपूर्ण और युक्तिसंगत आदेशों की अवज्ञा के तुल्य था।

(ii) याची को 3.8.1979 के प्रभाव से 02-शॉप पर रिपोर्ट करना था परन्तु उसने ऐसा नहीं किया और किसी पूर्व सूचना या अवकाश की स्वीकृति के बिना अपने को ड्यूटी से अनुपस्थित रखा जो छुट्टी के बिना या पर्याप्त कारण के बगैर ड्यूटी से जानबूझकर अनुपस्थित रहने के तुल्य था।

(iii) 3.9.1979 को याची ने श्री जी० वी० वी० गिरि, सहायक प्रबंधक, 06-शॉप के कार्यालय में प्रवेश किया और उसके चेहरे पर थप्पड़ मारकर उसपर प्रहार किया।

3. विभागीय कार्यवाही में सभी पूर्वोक्त आरोप सिद्ध किए गए और अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त किया गया। एक विभागीय अपील दाखिल की गई परन्तु उसे भी खारिज कर दिया गया। तत्पश्चात् अपीलार्थी द्वारा उठाए गए औद्योगिक विवाद के आधार पर मामला श्रम न्यायालय पहुँचा। श्रम न्यायालय, समूचे साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन के उपरांत, इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध किया गया है और संदर्भ का तद्नुसार उत्तर दिया गया। तत्पश्चात अपीलार्थी ने एक रिट याचिका सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 2126 वर्ष 1989 (आर) दाखिल करके उक्त अधिनिर्णय को चुनौती दी। एक संक्षिप्त प्रश्न-पर, रिट याचिका अनुज्ञात की गई और श्रम न्यायालय को एक नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया। श्रम न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्देश का अनुपालन करके मामले की सुनवाई की और बर्खास्तगी के आदेश को बरकरार रखते हुए अधिनिर्णय पारित किया। अपीलार्थी ने फिर सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 2812 वर्ष 1994 (आर) दाखिल करके उक्त अधिनिर्णय को चुनौती दी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने समूचे साक्ष्य को पुनर्मूल्यांकन करने के उपरांत और पक्षों की सुनवाई करने के उपरांत, रिट याचिका को यह अवधारित करते हुए खारिज कर दिया कि श्रम न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष में किसी अवैधानिकता, अनियमितता या अनुचितता नहीं है।

4. हमने अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री इन्द्रजीत सिन्हा को सुना है, जिन्होंने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और श्रम न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय पर भी प्रहार किया है इस आधार पर कि सेवा से बर्खास्तगी के तौर पर दण्ड अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के अननुपाती है। तथापि, विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य को विवादित नहीं किया है कि एक थप्पड़ मारकर प्रबंधक पर प्रहार करने समेत सभी तीन आरोपों को सिद्ध किया गया है जैसा कि श्रम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था। इन स्वीकृत स्थितियों में, जो एक मात्र प्रश्न विचारण के लिए रह जाता है वह इसको लेकर है कि क्या यह न्यायालय श्रम न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय के साथ हस्तक्षेप कर सकता है जिसने एक विभागीय कार्यवाही में पारित बर्खास्तगी के आदेश को बरकरार रखा है।

5. यह प्रश्न अब अनिर्णीत विषय नहीं रहा है। सर्वोच्च न्यायालय ने **बैंक ऑफ इण्डिया बनाम देगाला सूर्यनारायण [ए॰ आई॰ आर॰ 1999 एस॰ सी॰ 2407]** के मामले में विभागीय जाँच में पहुँचे गए तथ्य के निष्कर्ष के साथ रिट अभिकारिता का इस्तेमाल करते हुए उच्च न्यायालय के न्यायिक पुनर्विलोकन की कार्य-सीमा पर परिचर्चा की है। न्यायधीशों ने सम्परीक्षित किया:-

"11. विभागीय जाँच कार्यवाही में साक्ष्य के कठोर नियम लागू नहीं होते हैं। विधि की एकमात्र आवश्यकता यह है कि अपचारी पदाधिकारी के विरुद्ध अभिकथन ऐसे साक्ष्य से सिद्ध होना चाहिए जिसपर एक युक्तिसंगत व्यक्ति युक्तिसंगत रूप से और वस्तुपरकता के साथ कार्य करते हुए अपचारी पदाधिकारी के विरुद्ध आरोप की गंभीरता को बरकरार रखने वाले एक निष्कर्ष तक पहुँचे। विभागीय कार्यवाही में भी मात्र अनुमान या अटकले के आधार पर निष्कर्ष को बरकरार नहीं रखा जा सकता। न्यायिक पुनर्विलोकन की अधिकारिता का इस्तेमाल करने वाला न्यायालय विभागीय जाँच की कार्यवाही में पहुँचे गए तथ्य के निष्कर्ष के साथ हस्तक्षेप नहीं करेगा। सिवाय दुर्भावना या अनुचितता के मामलो में, यानि वहाँ जहाँ एक निष्कर्ष को समर्थित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है या जहाँ एक निष्कर्ष ऐसा है जिसपर कोई भी व्यक्ति युक्तिसंगत रूप से और वस्तुपरक्ता के साथ कार्य करते हुए नहीं पहुँच सकता है। न्यायालय एक अपीलीय प्राधिकार के समान साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने या इसको परखने की कार्यवाही नहीं कर सकता। जबतक विभागीय प्राधिकार द्वारा पहुँचे गए इस निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए कुछ साक्ष्य है, इसे बरकरार रखना होगा। भारत संघ बनाम एच० सी० गोयल में संविधान पीठ ने निर्णय किया है:

"[T] उच्च न्यायालय जाँच सकता है और उसे अनिवार्यतः जाँचना चाहिए कि आक्षेपित निष्कर्ष के समर्थन में कोई साक्ष्य भी है या नहीं। अन्य शब्दों में अगर जाँच में रखे गए साक्ष्य के संपूर्ण अंश सत्य के तौर पर स्वीकार कर लिया जाता है, तो क्या इसका निष्कर्ष निकलता है कि प्रश्नाधीन आरोप प्रत्यर्थी के विरुद्ध सिद्ध होता है यह दृष्टिकोण साक्ष्य का मूल्यांकन करने से बचाएगा। यह साक्ष्य को उसी रूप में लेगा जैसा वह है और केवल यह परीक्षित करेगा कि उस साक्ष्य पर आक्षेपित निष्कर्ष विधिक रूप में निकलता है या नहीं।''

6. होम्बे गौंडा एडुकेशनल ट्रस्ट बनाम कर्नाटक राज्य [(2006)1 एस॰ सी॰ सी॰ 430] के मामले में अपचारी के इस अभिकथन पर एक विभागीय कार्यवाही के अध्यधीन किया गया था कि उसने एक शैक्षणिक संस्थान के प्राचार्य पर (हमला) किया था। उसे आरोपो का दोषी पाया गया था और सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। उसके द्वारा दाखिल विभागीय अपील को भी खारिज कर दिया गया था। तत्पश्चात, कार्यवाही अधिकरण के पास पहुँची। अधिकरण साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन के बाद उस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आरोपो के अकाट्य तर्क द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है। उक्त आदेश के विरुद्ध, शैक्षणिक न्यास की निशानदेही पर मामला सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा। ऐसे एक मामले में हस्तक्षेप के संबंध में विधि के सिद्धांतों की परिचर्चा करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया:–

"19. एक कार्यस्थल पर उच्च पदस्थ पर हमला करना गंभीर अनुशासनहीनता की एक कार्रवाई के तुल्य है। प्रत्यर्थी एक शिक्षक है। गंभीर उत्तेजना के अधीन भी एक शिक्षक से भाषा का दुरूपयोग कर संस्थान के प्रधान के साथ गाली–गलौज करने और उसपर एक चप्पल से प्रहार करने की उम्मीद नहीं की जाती है। इसलिए, सेवा से बर्खास्तगी का दण्ड इतना अननुपाती नहीं कहा जा सकता जो किसी के अन्तःकरण को विचलित कर दें।

20. एक व्यक्ति, जब सेवा से बर्खास्त हो जाता है, अत्यन्त कठिनाई का सामना करता है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि एक गंभीर कदाचार दण्ड से बचा रह जाएगा। यद्यपि ऐसे मामलों में अनुपात का सिद्धांत प्रयोज्य हो सकता है परन्तु ऐसे एक कदाचार के लिए सेवा से बर्खास्तगी को ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह कभी सुना ही नहीं गया हो। एक संस्थान के अनुशासन को बनाए रखना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। पूर्वोल्लिखित सिद्धांतों को दृष्टिगत रखते हुए हम इसके पश्चात इस न्यायालय के हाल के कुछ निर्णयों को गौर कर सकते हैं।''

7. भारत संघ बनाम नारायण सिंह [2002 एस॰ सी॰ डब्ल्यू॰ 2172] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि जब एक विभागीय जाँच में आरोप सिद्ध हो जाते है तो न्यायालय को दण्ड की मात्रा के साथ हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। न्यायाधीशों ने अवधारित किया:–

"9. जैसा कि उपर देखा गया है, खण्ड पीठ नोट करती है कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरोप सिद्ध है और आरोप गंभीर प्रकृति के हैं। एक बार न्यायालय द्वारा उस निष्कर्ष पर पहुँच जाने पर कि आरोप सिद्ध हो गए थे और आरोप गंभीर प्रकृति के थे, तो दण्ड की मात्रा के साथ हस्तक्षेप करना न्यायालय का कार्य नहीं था। खण्ड पीठ यह निर्णीत करने में गलत थी कि (a) व्यक्ति किस स्थान से आया है। (b) उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि क्या है, और (c) उसने सेवा अभिलेख इत्यादि को ध्यान में रखना था। हमारे विचार में, खण्ड पीठ यह अवधारित करने मे भी त्रुटि पर थी कि अगर एक निर्धन व्यक्ति कदाचार के दोषी होने का अभिवाक् करता है, तो बर्खास्तगी का अन्तिम दण्ड अवांछित है। हमारे विचार में, एक न्यायालय को एक उपयुक्त रूप से संचालित जाँच के उपरांत पारित दण्डादेशों के साथ हल्के रूप से भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जहाँ दोषसिद्ध हो चुका है। दण्डादेश का घटाया जाना विशेषतः सैन्य, अर्द्ध–सैनिक या पुलिस सेवाओं में मनोबल को गिराने का प्रभाव उत्पन्न कर सकता है और जहाँ तक इन सेवाओं का अनुशासन का सवाल है यह एक पश्चातगामी

पदक्षेप होगा। इस मामले में आरोपों की प्रकृति गंभीर होने के कारण दण्ड आरोपो का संगत था। इसके अतिरिक्त, खण्ड पीठ ने स्वयं नोट किया है कि यह तीसरा अवसर था जबकि प्रत्यर्थी को दण्डित किया गया था।''

8. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक विभागीय जाँच में आरोपो को सिद्ध किया गया है और समूचे साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन के उपरांत, श्रम न्यायालय ने अपीलार्थी पर अधिरोपित दण्ड को बरकरार रखा है और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के आलोक में, हम अधिकरण द्वारा पारित अधिनिर्णय के साथ हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं। विद्वान एकल न्यायाधीश ने उचित रूप से रिट याचिका को खारिज कर दिया है।

9. पूर्वोक्ति कारणों से, इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है, जो तद्नुसार खारिज की जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 7034 वर्ष 2005. 26 जून, 2009 को विनिश्चित।

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948—धारा 2(17)—मांग की वसूली—याची कम्पनी प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के कर्मचारीगण के 'प्रधान नियोक्ता' के अन्तर्गत नहीं आती क्योंकि कम्पनी स्वयं एक विधिक इकाई होने और अपने कारखाने की स्वामी होने के नाते अपने कर्मचारीगण की प्रधान नियोक्ता है—अधिनियम के अधीन किसी भी दायिता को केवल प्रत्यर्थी संख्या 5 कम्पनी की अनन्य दायिता के तौर पर माना जाएगा और याची-कम्पनी की दायिता के रूप में नहीं। (पैरा 9)

निर्णयज विधि.—No. 6928/2002; (1998)6 SCC 238; AIR (1998) SC 1737—Relied upon.

अधिवक्तागण.—Mr. Rajiv Ranjan, For the Petitioner; J.C. to G.P.-III, For the Respondent-State; Mr. Ranjan Raj, For the Respondent Nos. 2 to 4.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजीव रंजन प्रत्यर्थी सं॰ 2 से 4 के अधिवक्ता, श्री राजन राज और प्रत्यर्थी राज्य की ओर से सरकारी वकील-III के कनीय अधिवक्ता को सुना।

2. वसूली पदाधिकारी, कर्मचारी राज्य बीमा निगम (प्रत्यर्थी सं॰ 4) द्वारा निर्गत दिनांक 25.11.2005 (परिशिष्ट-6) के आदेश को याची ने इस रिट आवेदन में चुनौती दी है जिसके द्वारा 29,53,351/- रुपए की एक राशि, जो तात्पर्यित रूप से भारतीय स्टील वायर प्रोडक्टस लिमिटेड, जमशेदपुर (प्रत्यर्थी सं॰ 5) द्वारा देय बकाया है, की मांग याची से की गई है और राशि को जोड़ लिया गया है। प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा याची-कम्पनी से पूर्वोक्त राशि की मांग इस आधार पर की गई थी कि याची-कम्पनी ने प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी का प्रबंधन एवं नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया था और इसलिए याची-कम्पनी उन बकायों का भुगतान करने की दायी है जो प्रोदभूत हुए थे और प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी द्वारा देय था।

3. मांग के आक्षेपित आदेश को प्रतिवाद करते हुए, याची ने अभ्यापति की है कि याची-कम्पनी को प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के किसी बकायों को चुकाने की कोई दायिता नहीं है क्योंकि प्रत्यर्थी सं॰ 5

कम्पनी अपने-आप में एक बिल्कुल ही पृथक एवं स्वतंत्र इकाई है और यह एक तथ्य नहीं है कि याची-कम्पनी प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के प्रबंधन पर स्वामित्व रखती है या इसका नियंत्रण करती है।

4. इस रिट आवेदन के लम्बित रहने के दौरान, इस न्यायालय ने दिनांक 10.7.2006 के अपने आदेश से याची कम्पनी से मांग की गई राशि की वसूली का स्थगन कर दिया था। तथापि, इसे बाद में सूचित किया गया था, कि अन्तरिम आदेश के पारित होने से पहले ही, समूची राशि 4.7.2006 को प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा याची के बैंक खाते से जब्त कर ली गई थी।

5. प्रत्यर्थी निगम ने इस रिट आवेदन में याची का दावा मुख्यत: इस आधार पर प्रतिवाद किया है कि याची-कम्पनी ने 20.12.2003 के प्रभाव से प्रत्यर्थी संख्या 5 कम्पनी का नियंत्रण एवं प्रबंधन अपने हाथों में लिया था इसलिए याची-कम्पनी को प्रत्यर्थी संख्या 5 कम्पनी द्वारा ऐसे देय बकायों के दायित्व का भार वहन करना पड़ेगा।

6. प्रत्यर्थी सं॰ 5 द्वारा अपने प्रति शपथपत्र के माध्यम से पक्ष लिया गया है कि दिनांक 24.8.2005 की नोटिस के माध्यम से 29,53,351/- रुपए की राशि के भुगतान हेतु मांग प्रत्यर्थी सं॰ 5 के विरुद्ध प्रत्यर्थी निगम द्वारा उठाई गई थी। प्रत्यर्थी सं॰ 5 ने डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 7032 वर्ष 2005 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष पूर्वोक्त मांग को इस आधार पर चुनौती दी थी कि इसने राज्य सरकार के यथोचित विभाग में राज्य कर्मचारी बीमा निगम अधिनियम के अधीन अपनी दायिता से मुक्त होने के लिए एक आवेदन दाखिल किया था और आवेदन के निस्तारण तक मांग के स्थगन का अन्तरिम आदेश भी प्राप्त कर लिया था जो राज्य सरकार के समक्ष लंबित था। प्रति शपथपत्र में यह भी कहा गया है कि मांग का भुगतान करना प्रत्यर्थी सं॰ 5 की अनन्य दायिता है और यह राशि का भुगतान करने की वचनबद्धता देता है जब कभी भी राज्य सरकार द्वारा छूट के आवेदन को खारिज कर दिया जाता है।

7. इसलिए इस रिट आवेदन में मुख्य विवाद यह है कि क्या प्रत्यर्थी सं॰ 5 के अधीन कार्यरत कर्मचारीगण के संबंध में कर्मचारी राज्य बीमा निगम की ओर अंशदान के तौर पर मांगी गई राशि के भुगतान करने की प्रत्यर्थी सं॰ 5 के दायिता के लिए याची-कम्पनी को उत्तरदायी अवधारित किया जा सकता है?

8. विवाद के बेहतर मूल्यांकन के लिए, आधारभुत तथ्यों का संक्षिप्त कथन आवश्यक होगा। प्रत्यर्थी सं॰ 5, अर्थात् इण्डियन स्टील वायर प्रोडक्टस जिसे पूर्व में इसके प्रवर्तक रवि इन्दर सिंह एवं इन्दर सिंह एण्ड सन्स प्राईवेट लिमिटेड थे, एक रुग्ण औद्योगिक कम्पनी बन गई और 24.9.2001 के औद्योगिक एवं वित्तीय पुर्ननिर्माण के बोर्ड (बी॰ आई॰ एफ॰ आर॰) द्वारा इस प्रकार घोषित कर दिया गया था। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई॰ डी॰ बी॰ आई॰) को बी॰ आई॰ एफ॰ आई॰ द्वारा परिचालनात्मक एजेन्सी के तौर पर नियुक्त किया गया था और इसे प्रत्यर्थी संख्या 5 कम्पनी के भूतपूर्व प्रबंधन की दायिता अभिनिश्चित करने का कर्तव्य सौंपा गया था।

परिचालनात्मक एजेन्सी के तौर पर इसकी नियुक्ति के अनुसरण में आई॰ डी॰ बी॰ आई॰ के द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के प्रबंधन के परिवर्तन के लिए एक विज्ञापन निर्गत किया।

जवाब में, याची-कम्पनी ने प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के प्रबंधन को अंगीकार करने के लिए एक प्रस्ताव पेश किया। याची-कम्पनी द्वारा किए गए प्रस्ताव पर आई॰ डी॰ बी॰ आई॰ द्वारा एक पुनर्वास योजना तैयार की गई और प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के पुनर्वास की योजना को बी॰ आई॰ एफ॰ आर॰ द्वारा अन्तिम रूप से 22.10.2003 को मंजूर कर दिया गया।

पुनर्वास की स्वीकृति योजना के अधीन, बी॰ आई॰ एफ॰ आर॰ ने याची-कम्पनी को प्रतिस्थापित करके सम्प्रवर्तको के परिवर्तन की अनुमति दे दी थी। तत्पश्चात, याची-कम्पनी ने प्रत्यर्थी संख्या 5 के प्रबंधन एवं नियंत्रण को प्राप्त कर लिया और प्रत्यर्थी सं॰ 5 का कारखाना, जो छः वर्षों से बन्द पड़ी थी, को दुबारा खोला गया था। इस प्रकार, पुनर्वास योजना के क्रियान्वयन की तिथि के बाद से ही प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के कारखाना के परिचालन को याची-कम्पनी द्वारा इसके सम्प्रवर्तको के तौर पर पुनरूज्जीवित कर दिया गया था।

इस अवधि के दौरान, प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी ने यथोचित विभाग में राज्य सरकार के समक्ष, आवेदन में विनिर्दिष्ट आधारों पर राज्य कर्मचारी बीमा निगम अधिनियम की धारा 87 के अधीन अधिनियम के प्रावधानों के अधीन दायिता से इसकी छूट के लिए एक आवेदन दाखिल किया। जबकि आवेदन राज्य सरकार के सम्बद्ध प्राधिकारों के समक्ष विचारण एवं निस्तारण के लिए लम्बित था, प्रत्यर्थी निगम ने अप्रैल, 2004 से मार्च, 2005 तक अंशदान के बकायों के तौर पर 29,53,351/- रुपए की एक राशि के भुगतान की मांग करते हुए प्रत्यर्थी संख्या 5 को मांग की एक सूचना निर्गत की गई। इस न्यायालय के समक्ष एक रिट आवेदन दाखिल करके प्रत्यर्थी सं॰ 5 ने मांग को चुनौती दी और राज्य सरकार द्वारा प्रत्यर्थी सं॰ 5 के पूर्वोल्लिखित आवेदन के निस्तारण होने तक मांग पर एक स्थगन का एक अन्तरिम आदेश प्राप्त कर लिया। याची के विरुद्ध पूर्वोक्त राशि के भुगतान की मांग करते हुए प्रत्यर्थी निगम द्वारा इसी प्रकार की मांग की नोटिस निर्गत की गई और मांग पूरी करने से याची के विफल होने पर, प्रत्यर्थी निगम ने याची के बैंक खातों से राशि की कुर्की करके इसकी वसूली करने की कार्यवाही भी कर दी थी। इसी आक्षेपित मांग की नोटिस और प्रत्यर्थी निगम द्वारा यथा किए गए बैंक खाते की कुर्की के आदेश को इस रिट आवेदन में, याची द्वारा चुनौती दी गई है।

9. रिट आवेदन में रखे गए आधारों का स्पष्टीकरण करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजीव रंजन निवेदन करते हैं कि प्रत्यर्थी निगम द्वारा यथा की गई मांग का आक्षेपित आदेश और याची के बैंक खाते के जब्त करने से प्रत्यर्थी निगम की कार्रवाई पूर्णतः अवैधानिक और अधिकारिता रहित है क्योंकि याची-कम्पनी पर प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी की दायिता का भार अधिरोपित नहीं किया जा सकता मात्र इस कारण से कि यह याची-कम्पनी प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के सम्प्रवर्तक हुआ करती है।

विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 अर्थात् इण्डियन स्टील वायर प्रोडक्टस लिमिटेड, कम्पनी अधिनियम के अधीन और राज्य कर्मचारी बीमा निगम अधिनियम के अधीन भी पृथक रूप से पंजीकृत एक पृथक एवं भिन्न कम्पनी है और इसकी अपनी परिसम्पत्तियां एवं दायिता है जो याची-कम्पनी से पूर्णतः पृथक एवं भिन्न है। इसलिए प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के नाम से उद्भूत होने वाले बकाए एवं दायित्व केवल प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी द्वारा ही देय है और किसी प्रकार की कल्पना से ऐसी दायिता याची-कम्पनी पर स्थानांतरित नहीं की जा सकती है। विद्वान अधिवक्ता जोड़ते हैं कि याची-कम्पनी भी कम्पनी अधिनियम के अधीन एवं राज्य कर्मचारी बीमा निगम अधिनियम के अधीन दोनों में ही पंजीकृत एक पृथक एवं भिन्न कम्पनी है और इसलिए राज्य कर्मचारी बीमा निगम अधिनियम के अधीन अपने कर्मचारीगण के प्रति इसके दायित्व है और प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के कर्मचारीगण के प्रति इसके दायित्व नहीं है।

विद्वान अधिवक्ता अग्रेतर यह भी जोड़ते हैं कि याची कम्पनी राज्य कर्मचारी बीमा निगम अधिनियम की धारा 2(17) के अधीन यथा परिभाषित प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के कर्मचारीगण के ''प्रधान स्वामी'' के अर्थ के भीतर नहीं आती। अपितु, प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी स्वतः इस विधिक इकाई होने और अपने कारखाने की मालिक होने के कारण, कर्मचारीगण की प्रधान नियोक्ता है और राज्य कर्मचारी

बीमा निगम अधिनियम के अधीन दायिता अगर कोई है तो इसे केवल प्रत्यर्थी सं॰ 5 की कम्पनी की अनन्य दायिता ही माना जाना होगा। यहाँ तक की प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के निदेशक भी ''प्रधान नियोक्ता'', की परिभाषा द्वारा शासित नहीं होंगे, जैसा कि अधिनियम के अधीन अधिकथित किया गया है। अपने तर्क पर जोर देने के लिए, विद्वान अधिवक्ता **क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त एवं अन्य बनाम ए॰ बी॰ एस॰ स्पिनिंग उड़ीसा लिमिटेड एवं एक अन्य** के मामले में **सिविल अपील संख्या 6928 वर्ष 2002** का था एवं एक अन्य मामले अर्थात् **राज्य कर्मचारी बीमा निगम बनाम एस॰ के॰ अग्रवाल एवं अन्य 1998(6) एस॰ सी॰ 288** के निर्णयो को निर्दिष्ट करते हैं।

यह भी निवेदन किया गया है कि अन्यथा भी, प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी द्वारा अपने प्रति शपथपत्र में की गई विनिर्दिष्ट घोषणा की दृष्टि में जिसमें यह कहा गया है कि राज्य सरकार द्वारा ई॰ एस॰ आई॰ सी॰ अधिनियम के अधीन छूट के लिए इसके आवेदन को खारिज किए जाने की स्थिति में, प्रत्यर्थी निगम, वह सारे, उपाय कर सकता है, जो प्रत्यर्थी सं॰ 5 से ही राशि की वसूली करने के लिए उपयुक्त हो और याची कम्पनी से ऐसी कोई वसूली नहीं की जा सकती।

10. इसके विरुद्ध, प्रत्यर्थी निगम के विद्वान अधिवक्ता, श्री राजन राज ने तर्क रखा है कि याची द्वारा अभिवाक् किया गया यह आधार कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी एक पृथक एवं भिन्न कम्पनी है जिसका याची-कम्पनी से कोई संबंध नहीं है, गलत और भ्रामक है। रिट आवेदन के विनिर्दिष्ट अनुच्छेदों को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान अधिवक्ता तर्क देते हैं कि याची-कम्पनी ने प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के प्रबंधन एवं नियंत्रण को अंगीकार करना स्वीकार किया है और उक्त कम्पनी जो छः वर्षों से अधिक समय से बन्द पड़ी थी, को दुबारा खोला गया है। विद्वान अधिवक्ता तर्क देते हैं कि याची की पूर्वोक्त स्वीकृति से, यह प्रकट होगा कि याची-कम्पनी ने 22.11.2003 को और उस तिथि से प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के नियंत्रण और प्रबंधन को प्राप्त किया था और इस प्रकार याची कम्पनी को मांगी गई राशि को लेकर प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी की दायिता को वहन करना होगा।

विद्वान अधिवक्ता यह भी तर्क देते हैं कि इस मामले में याची द्वारा उठाए गए विवाद का समाधान ''विधिक आवरण के पीछे आर्थिक वास्तविकताओं को देखकर करना होगा'' और इसे केवल संकीर्ण विधिक दृष्टिकोण तक सीमित नहीं रखना होगा। विद्वान अधिवक्ता आगे स्पष्ट करते हैं कि जहाँ एक कम्पनी का चरित्र या, उसे नियंत्रित करने वाले व्यक्तियों की प्रकृति, एक सुसंगत लक्षण हो तो न्यायालय ''कॉर्पोरेट पर्दे को हटाकर कम्पनी के दर्जे के पीछे जाकर दोबारा देखेगा और यह पता लगाएगा कि कम्पनी के वास्तविक प्रबंधन एवं नियंत्रण कहां है। अपने तर्क पर जोर देने के लिए विद्वान अधिवक्ता ने **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रेणुसागर पावर कम्पनी, ए॰ आई॰ आर॰ 1998 (एस॰ सी॰) 1737** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया और इसपर भरोसा किया।

11. मामले के तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी का पुनर्वास करने के लिए बी॰ आई॰ एफ॰ आर॰ द्वारा एक पुनर्वास योजना सामने रखी गई, जिसके अधीन याची-कम्पनी द्वारा रखे गए प्रस्ताव को स्वीकार किया गया था और ऐसे स्वीकरण के अनुसरण में, प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के सम्प्रवर्तकों में एक परिवर्तन को अनुज्ञात किया गया था और याची-कम्पनी को प्रतिस्थापित किया गया था। तत्पश्चात्, याची-कम्पनी के सम्प्रवर्तन के अधीन प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के पुनस्थापन को प्रभावी बनाया गया। पुनर्वास की समूची प्रक्रिया में जो अपने सम्प्रवर्तन कों अर्थात, याची-कम्पनी से एक पृथक एवं भिन्न कम्पनी के तौर पर प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी की पहचान बनाई रखी गई है। जैसा कि याची के

विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों द्वारा इंगित किया गया है, पुनर्वास योजना केवल यह प्रावधान करती थी कि याची-कम्पनी प्रत्यर्थी सं॰ 5 के निदेशक मंडल के लिए व्यक्तियों को मनोनीत कर सकती थी और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। यह सम्पुष्ट करने के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा कुछ नहीं लाया गया है कि याची-कम्पनी ने प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी का स्वामित्व प्राप्त कर लिया या प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के निदेशक मंडल के निर्णय याची कम्पनी द्वारा मार्ग-निर्दिष्ट और संचालित होते हैं। प्रत्यर्थी निगम द्वारा यह इंगित करने के लिए कुछ भी अभिलेख पर नहीं लाया गया है कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी याची-कम्पनी की एक 100% समनुषंगी है। इस प्रकार, ''कॉरपोरेटेड इकाई के पर्दे को हटाकर भी'' जैसा कि प्रत्यर्थी निगम के विद्वान अधिवक्ता चाहतें है, यह पूर्णतया स्पष्ट है कि याची-कम्पनी न तो स्वामी है और न ही प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के व्यवसाय या प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के निदेशक मंडल द्वारा किए गए निर्णयों पर इसका पूरा नियंत्रण है। इन्हीं कारणों से, यह नहीं कहा जा सकता कि याची-कम्पनी प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के अधीन कार्य कर रहे कर्मचारियों की प्रधान नियोक्ता है। सभी व्यवहारिक प्रयोजनों के लिए, प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी अपने स्वयं की एक पहचान एवं प्रतिष्ठा है, जो याची-कम्पनी से भिन्न और पृथक है। इस प्रकार, वह कारखाना जिसमें कर्मकार नियोजित हैं और जिसके संबंध में प्रत्यर्थी निगम द्वारा अंशदान के दावे को उठाया गया है, उस पर प्रत्यर्थी सं॰ 5 का स्वामित्व है जो एक लिमिटेड कम्पनी है और जो E.S.I.C. अधिनियम की धारा 2(17) की परिभाषा के अधीन भी प्रधान नियोक्ता है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के श्रृंखला द्वारा अब यह सुस्थापित है कि एक अनुषंगी कम्पनी का स्वामित्व वाली कम्पनी के विरुद्ध भी अपना एक पृथक अस्तित्व होता है और इसलिए स्वामित्व धारण करने वाला कम्पनी पर अनुषंगी कम्पनी द्वारा देय बकायों के भुगतान करने की दायिता नहीं होगी।

''कॉरपोरेट आवरण को हटाने'' के निवेदन को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष रखे गए तथ्यों के संदर्भ में इसके द्वारा स्पष्टीकृत और लागू किया गया था कि प्रत्यर्थी-कम्पनी अर्थात रेणुसागर पावर कम्पनी सभी मामलों में हिन्डालको द्वारा नियोजित रहते हुए हिन्डालको की एक 100/- समनुषंगी थी। इस प्रकार **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रेणुसागर पावर कम्पनी (ऊपर)** के मामले में निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा।

12. जैसा कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी के प्रति शपथपत्र में की गई घोषणा से प्रतीत होता है, इसने राज्य सरकार द्वारा राज्य कर्मचारी बीमा निगम अधिनियम के प्रावधानो के अधीन इसके आवेदन को खारिज किये जाने की स्थिति में मांगी गई राशि को चुकाने की वचनबद्धता दी है। चूंकि प्रत्यर्थी सं॰ 5 ने दायिता पूरा करने की बचनबद्धता ले ली है, तो प्रत्यर्थी निगम को केवल प्रत्यर्थी सं॰ 5 कम्पनी से ही राशि को वसूल करने का एक अधिकार हो सकता है और याची कम्पनी से नहीं।

13. तथ्यों एवं परिस्थितियों और उपर की गई परिचर्चाओं की दृष्टि में, मैं इस रिट आवेदन में गुणागुण पाता हूँ और यह अनुज्ञात किया जाता है। प्रत्यर्थी सं॰ 4 के हस्ताक्षराधीन निर्गत प्रत्यर्थी निगम का आक्षेपित आदेश और याची के बैंक खातो से मांग की राशि की कुर्की करने का प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा यथा पारित आदेश एतद् द्वारा निरस्त किया जाता है। प्रत्यर्थी निगम को इस आदेश की तिथि से एक महीने के भीतर सावधिक ब्याज के साथ कुर्की की गई राशि को याची को वापस करने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

शारदा नन्द शर्मा

बनाम

अपने कुलपति के माध्यम से राँची विश्वविद्यालय, राँची एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3855 वर्ष 2008. 21 अगस्त, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–वेतन का भुगतान–याची ने 1986 में एक व्याख्याता के तौर पर पद ग्रहण किया–1992 में सेवा समाप्त की गयी–1998 में पुनर्बहाल किया गया–सेवा सशर्त नवम्बर, 2005 से विनियमित की गयी–वेतन का भुगतान नहीं किया गया–अभिनिर्धारित, चूँकि याची निरन्तर कार्यरत है इसलिए वह वेतन के भुगतान का हकदार है–राज्य सरकार को वेतन के भुगतान के लिए आवश्यक कोष निर्मुक्त करने का निर्देश दिया गया–अग्रेतर अभिनिर्धारित, यदि सरकार ने पहले ही आवश्यक कोष निर्मुक्त कर दिया है तो याची को इसका भुगतान तत्काल किया जाना चाहिए। (पैरा 3)

अधिवक्तागण.–M/s M.S. Anwar, Afaque Ahmad, Altaf Hussain, For the Petitioner; Mr. Anoop Kumar Mehta, For the Respondent.

आदेश

वर्तमान याचिका मुख्यत: इस उद्देश्य से दाखिल की गयी है कि यद्यपि याची व्याख्याता के रूप में कार्यरत है, फिर भी उसे प्रत्यर्थियों द्वारा वेतन नहीं दिया जा रहा है। याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याची 1986 से व्याख्याता के रूप में कार्यरत था, तत्पश्चात् उसकी सेवा 1992 के प्रभाव से समाप्त कर दी गयी थी। याचिका के ज्ञापन के परिशिष्ट-1 में संलग्न आदेश के मुताबिक याची को वर्ष 1998 में पुनर्बहाल कर दिया गया था। दिनांक 29.11.2005 के आदेश (परिशिष्ट-2) के माध्यम से याची की सेवाएँ शर्त सहित नियमित कर दी गयी थीं। याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि एक अन्य समस्थित व्याख्याता के मामले, जिसे इस न्यायालय द्वारा पहले ही निपटा दिया गया है, में वर्तमान याची की तरह एक नियुक्ति की गयी थी और तत्पश्चात उसकी सेवा समाप्त कर दी गयी थी। पुन: उसकी सेवाएँ पुनर्बहाल और नियमित कर दी गयी थी, लेकिन समस्थित व्याख्याता को वेतन का भुगतान नहीं किया गया था और इसलिए व्याख्याता अर्थात् बंकिम चंद्र चटर्जी ने डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3168 वर्ष 2008 दाखिल किया था, जिसे इस न्यायालय द्वारा दिनांक 30.7.2008 के आदेश के माध्यम से अनुज्ञात किया गया था। उक्त आदेश का प्रासंगिक पैरा निम्नवत पठित है:-

> *''प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के अधिवक्ता के निवेदनों के बावजूद यह तथ्य बना रहता है याची एक शिक्षक के रूप में महाविद्यालय, जिसे विश्वविद्यालय के घटक महाविद्यालय के तौर पर घोषित किया जा चुका है, में अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहा था और उसकी सेवाएँ निरन्तर ली जा रही थी और कोई कारण नहीं है कि क्यों उसका बकाया सहित वेतन का दावा नहीं माना जा रहा है भले ही उसकी सेवा के नियमितीकरण के मामले में अंतिम निर्णय लिया जाना शेष हो।*
>
> *तद्नुसार, मैं प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को निर्देश देता हूँ कि सक्षम अधिकारी द्वारा उसकी सेवा के नियमितीकरण के मामले में अंतिम निर्णय लिये जाने तक चालू वेतन के साथ बकाया वेतन का भुगतान याची को करें। राज्य सरकार याची को उक्त राशि के भुगतान के लिए अपेक्षित कोष विश्वविद्यालय को निर्मुक्त करेगा।*
>
> *इन सम्प्रेक्षणों और निर्देशों के साथ यह रिट याचिका निपटायी जाती है।''*

उक्त निर्णय के दृष्टि में, याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि वर्तमान याची का मामला उक्त याची की तरह है और इसलिए समान रूप का आदेश पारित किया जाए क्योंकि वर्तमान याची भी व्याख्याता के रूप में कार्यरत है और प्रत्यर्थियों द्वारा उसे वेतन नहीं दिया जा रहा है।

2. मैंने प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि राज्य सरकार द्वारा याची के नियमितीकरण को अभी तक अनुमोदित नहीं किया गया है। फिर भी, यह तथ्य कायम रहता है कि याची रसायन शास्त्र विषय में पंच परगना किसान महाविद्यालय, बुन्डु, राँची के व्याख्याता के रूप में कार्यरत है। प्रत्यर्थियों द्वारा यह भी निवेदन किया गया है कि याची और महाविद्यालय दोनों के नामों के बारे में परिशिष्ट-2 में कुछ गलतियाँ है। याची द्वारा परिशिष्ट-2 में अपने और महाविद्यालय के नामों का सुधार करने के लिए आवेदन दिया गया है। प्रत्यर्थियों के पास यह आवेदन अभी भी लंबित है।

3. इन निवेदनों की दृष्टि में और तथ्यों को देखने पर कि वर्तमान याची रसायन शास्त्र विषय में व्याख्याता के रूप में कार्यरत है और वर्ष 1998 में परिशिष्ट-1 के आदेश के माध्यम से पुनर्बहाल किया जा चुका है और परिशिष्ट-2 के आदेश के माध्यम से शर्त सहित नियमितीकरण भी किया जा चुका है और यह भी विवाद में नहीं है कि आज भी वर्तमान याची बुन्डु, राँची के उक्त महाविद्यालय में व्याख्याता के रूप में कार्यरत है और, अत: वह विधि के अनुसार, वेतन पाने का हकदार है। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय द्वारा डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3168 वर्ष 2008 में 30 जुलाई, 2008 को दिये गये निर्णय को देखते हुए, जैसा कि इसके ऊपर कहा गया है, उक्त आदेश की तरह, यह प्रत्यर्थियों पर वर्तमान याची के वेतन भुगतान का कर्तव्य अधिरोपित करता है। तद्द्वारा मैं, सक्षम प्राधिकारी द्वारा सेवाओं के नियमितीकरण मामलें में अंतिम निर्णय लिए जाने तक, प्रत्यर्थियों को याची को बकाया वेतन सहित चालू वेतन देने का निर्देश देता हूँ। राज्य सरकार याची को उक्त राशि का भुगतान करने हेतु प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को अपेक्षित राशि निर्गत करेगी। बकाया वेतन सहित चालू वेतन का भुगतान करने हेतु उक्त कार्रवाई जहाँ तक संभव और व्यावहारिक हो उतनी शीघ्रता से अर्थात् इस न्यायालय के आदेश की प्रति मिलने के 16 हफ्तों की अवधि के भीतर पूरी की जानी चाहिए। अगर सरकार ने याची के वेतन के भुगतान हेतु प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय को आवश्यक निधि पहले ही निर्गत कर दी है, तब प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय द्वारा बिना विलम्ब के याची को राशि का भुगतान तुरंत कर देना होगा।

4. पूर्वोवत निर्देशों एवं संप्रेक्षणों की दृष्टि में, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और निस्तारित की जाती है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

अशोक कुमार मिश्र

बनाम

बिरला इन्स्टिच्यूट ऑफ टेक्नलॉजी, मेसरा, राँची अपने रजिस्ट्रार के माध्यम से एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 2667 वर्ष 2001. 28 अगस्त, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–पुनर्बहाली/पुनर्नियुक्ति–याची बिरला इंस्टिच्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, मेसरा, राँची में सहायक प्राध्यापक के तौर पर कार्यरत थे–मेकेनिकल इंजिनियरिंग के चौथे सेमेस्टर के छात्रों को पढ़ाते समय उन्होंने एक छात्र को निर्दयतापूर्वक पीटा–विभागीय कार्यवाही की

गयी एवं कुलपति द्वारा उनकी सेवायें समाप्त की गयी परन्तु संस्थान में भावी नियोजन के लिए बिना किसी निरर्हता के। दण्ड की मात्रा के बारे में सहानुभूतिपूर्वक विचार करने एवं साथ ही मौद्रिक लाभ का दावा किए बिना अपनी नवीन नियुक्ति/पुनर्बहाली पर पुनर्विचार करने की प्रार्थना–मामले को याची के प्रस्ताव के आलोक में इसपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के लिए संस्थान के निदेशक बोर्ड के समक्ष प्रतिप्रेषित किया गया। (पैरा 2 से 7)

निर्णयज विधि.–(2006)8 SCC 108.

अधिवक्तागण.–Mr. R.R. Mishra, For the Petitioner; Mr. R.S. Mazumdar, For the Respondents.

अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति.–विभिन्न पक्षों को सुना और उनकी सहमति से यह रिट याचिका दाखिला के प्रक्रम पर ही निपटायी जा रही है।

2. याची जो बिरला इन्स्टिच्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, मेसरा राँची, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 के अधीन एक डीम्ड विश्वविद्यालय, में कार्य कर रहा था, के विरुद्ध सम्यक रूप से गठित जाँच समिति द्वारा विभागीय कार्यवाही की गयी कि उसने चतुर्थ सत्र के यांत्रिकी अभियंत्रण के छात्रों को दिनांक 29.2.1996 को पढ़ाने के दौरान, अपना आपा खो दिया और वर्ग के छात्र ए॰ एस॰ वेदान्त, रौल नम्बर 102/94 को निर्ममतापूर्वक पीटा, उसकी गर्दन पकड़ी, बाँह मरोड़ी और उस पर जोरदार घूँसे बरसाये और उसकी कमीज फाड़ डाली। जाँच समिति ने, विभागीय कार्यवाही पूरी होने पर, अपना रिपोर्ट पेश किया और अवधारित किया कि याची के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गये हैं और वह परिशिष्ट-24 के मुताबिक दोषी है। द्वितीय कारण बताओ नोटिस के पश्चात् याची ने कारण बताओ दर्ज किया जिसे संतोषजनक नहीं पाया गया था और तत्पश्चात् परिशिष्ट-28 में अंतर्विष्ट आदेश द्वारा कुलपति ने दिनांक 3.7.2000 के पत्र द्वारा याची को सूचित किया कि उसे निम्नलिखित सजा दी गयी है:-

> *''सेवा से हटाया गया जो संस्थान के अंतर्गत भविष्य में रोजगार के लिए निरर्हता नहीं माना जाएगा।''*

3. तत्पश्चात, याची ने चेयरमैन, बोर्ड ऑफ गवर्नर, बी॰ आइ॰ टी॰ मेसरा, राँची के सम्मुख अपील दाखिल की लेकिन इसे अस्वीकृत कर दिया गया जिसकी सूचना दिनांक 20.3.2001 को परिशिष्ट-30 में अंतर्विष्ट पत्र द्वारा याची को दे दी गयी थी। तत्पश्चात् याची ने परिशिष्टि-28 में अंतर्विष्ट सेवा से हटाये जाने की सजा के आदेश को और रिट याचिका के परिशिष्ट-30 में अंतर्विष्ट बोर्ड ऑफ गवर्नर द्वारा पारित अपीलीय आदेश को चुनौती देते हुए यह रिट याचिका दाखिल की और बिरला इन्स्टिच्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, मेसरा, राँची में अपनी सेवा बहाल करने और आदेश खारिज करने की प्रार्थना की। उसने प्रत्यर्थियों को ये निर्देश दिये जाने की भी प्रार्थना की कि उसे मध्यवर्ती अवधि हेतु समस्त वेतन और अन्य लाभों का भुगतान किया जाए।

4. याची की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री आर॰ आर॰ मिश्रा ने शुरु में ही निवेदन किया था कि याची को दोषी अवधारित करते हुए जाँच समिति के निष्कर्षों को याची चुनौती नहीं दे रहा है बल्कि वह सजा की मात्रा, जो विद्वान अधिवक्ता के अनुसार उसके विरुद्ध लगाये गये आरोप के अननुपात में है, पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किये जाने की प्रार्थना की है। श्री आर॰ आर॰ मिश्रा ने आगे निवेदन किया है कि याची वर्ष 1996 से अर्थात नौ वर्षों से ज्यादा सेवा से बाहर रहा है। इस दौरान वह निजी शिक्षण द्वारा जीविका उपार्जन कर अपने परिवार की देखभाल कर रहा है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि याची स्वयं बिरला इन्स्टिच्यूट ऑफ टेक्नॉलोजी, मेसरा, राँची का छात्र रहा है। उसने इस संस्थान से एम॰ ई॰ की डिग्री प्राप्त की और एसोसियेट लेक्चरर के रूप में बिरला इन्स्टिच्यूट ऑफ टेक्नॉलोजी को अपनी सेवा अर्पित की और चूँकि शिक्षण कार्य उसे पसंद था, इसलिए उसने एसोसिएट प्रोफेसर के तौर पर बिरला इंस्टिच्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, मेसरा, राँची की सेवा ग्रहण की और तत्पश्चात वर्ष 1992 में

उसे असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर प्रोन्नत किया गया, अत: उसके मामले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाये।

याची के विद्वान अधिवक्ता श्री आर॰ आर॰ मिश्रा ने यह भी निवेदन किया कि याची इन्स्टिच्यूट द्वारा रखे गये किसी भी शर्त पर सेवा अर्पित करने को तैयार है और सेवा से बाहर रहने की अवधि के लिए कोई भी आर्थिक दावा या वरीयता का दावा नहीं करने का परिवचन देता है।

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता श्री आर॰ एस॰ मजूमदार निवेदन करते हैं कि यह सर्वविदित कानून है कि सामान्यत: न्यायालय सजा प्रतिस्थापित नहीं करते है जबतक कि उन्हें बेहद अननुपातिक न पाया जाए और अगर अपनी असाधारण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए सजा में हस्तक्षेप या उसका प्रतिस्थापन किया जाता है तो यह न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने की कोटि का होगा। अपने निवेदन के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता श्री आर॰ एस॰ मजुमदार ने **उत्तर प्रदेश राज्य परिवहन निगम, देहरादून बनाम सुरेश लाल, (2006)8 SCC 108** में प्रकाशित, मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय में आस्था प्रकट की है।

6. चूँकि जाँच समिति द्वारा प्राप्त तथ्यों के निष्कर्षों को चुनौती नहीं दी जा रही है और इसलिए मामले के इस पक्ष का विवेचना आवश्यक नहीं है, लेकिन, साथ-ही-साथ, अनुशासनिक अधिकारी अर्थात् कुलपति के सजा अधिरोपित करते आदेश जैसा परिशिष्ट-28 में अंतर्विष्ट है का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि याची को सेवा से हटाए जाने की सजा दी गयी है पर संस्थान के अधीन भविष्य में रोजगार हेतु इसे निरर्हता नहीं माना गया है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि समुचित मामले में, संस्थान, सही और उपयुक्त पाने पर, एक कर्मचारी, जिसे खण्ड 12 (11)(b) (vi) के अधीन सेवा से हटाया गया है, को प्रतिस्थापित करने अथवा पुनर्बहाल करने हेतु विचार कर सकता है।

7. तथ्यों और परिस्थितियों पर समग्रता से विचार करके और तथ्य की इस दृष्टि में कि याची एक अर्हित शिक्षक था, एसोसिएट प्रोफेसर का पद धारण किये था और हटाये जाने तक वर्ष 1989 से सेवा दे रहा था, और जब याची ने वरीयता का अथवा सेवा से बाहर रहने की अवधि के लिए आर्थिक दावा नहीं करने का परिवचन दिया है, तब मेरे दृष्टिकोण में, संस्थान को सजा की मात्रा पर पुन: सोच-विचार करना चाहिए और याची के मामले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करना चाहिए। तद्नुसार यह मामला प्रत्यर्थी बिरला इन्स्टिच्यूट ऑफ टेक्नॉलोजी के निदेशक बोर्ड के पास इस निवेदन के साथ कि इस न्यायालय द्वारा की गयी उक्त सम्प्रेक्षणों और इस आदेश में दर्ज याची के प्रस्ताव और परिवचन की दृष्टि में सहानुभूति पूर्वक विचार किया जाए, वापस भेजा जाता है। निदेशक बोर्ड जितनी जल्दी हो सके, अधिमानत: इस आदेश की प्रति प्राप्त करने के दो महीने के भीतर, इस मामले में निर्णय ले सकता है। अगर आवश्यकता या अपेक्षा हो तो निदेशक बोर्ड याची को निजी सुनवाई का अवसर दे सकता है।

8. उक्त टिप्पणियों और निर्देशों के अनुसार, यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

माननीय सुशील हरकौली, न्यायमूर्ति

अलकास्ट इंजीनियरिंग प्राईवेट लिमिटेड

बनाम

झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य।

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2111 वर्ष 2009. 25 अगस्त, 2009 को विनिश्चित।

विद्युत विधि–विद्युत आपूर्त्ति संहिता विनियमन, 2005–खण्ड 7.5 सह-पठित खंड 9.2.1—एच॰ टी॰ करार–3 वर्षों की सांविधिक अवधि की समाप्ति के पूर्व लोड की संविदा मांग को 101 के॰ वी॰ ए॰ (एच॰ टी॰ कनेक्शन) से 60 एच॰ पी॰ (एल॰ टी॰ कनेक्शन) तक की कटौती की प्रार्थना–अभिनिर्धारित, ऐसी प्रार्थना मंजूर नहीं की जा सकती है क्योंकि यह एच॰ टी॰ करार के विनिर्दिष्ट शर्त एवं साथ ही साथ आपूर्त्ति संहिता विनियमन के उल्लंघन में एच॰ टी॰ करार में नियत 3 वर्षों की प्रारंभिक अवधि की समाप्ति से पूर्व 101 के॰ वी॰ ए॰ के एच॰ टी॰ करार को समाप्त करने एवं इसे 60 एच॰ पी॰ के नए एल॰ टी॰ करार द्वारा प्रतिस्थापित करने की अनुमति उपभोक्ता, याची को देने की कोटि का होगा। (पैरा 4 से 12)

निर्णयज विधि.–W.P.(C) No. 2653 of 2008; W.P.(C) No. 2655 of 2008 : (1990)1 SCC 731; (1990)1 SCC 741.

अधिवक्तागण.–Mr. N.K. Pasari, For the Petitioner; Mr. Rajesh Shankar, For the Respondents.

आदेश

याची स्वयं को कम्पनी अधिनियम, 1956 के प्रावधानों के अधीन निगमित प्राईवेट लिमिटेड कम्पनी होने का दावा करते हुए अभिकथित करता है कि इसने अपने बोकारो स्थित लघु उद्योग के लिए 64 एच॰ पी॰ लोड/भार वाला एल॰ टी॰ आइ॰ एस॰ विद्युत कनेक्शन लिया था।

2. विविधीकरण हेतु, याची ने वर्ष 2008 में, 101 के॰ भी॰ ए॰ के संविदा मांग के लिए एच॰ टी॰ आइ॰ एस॰ कनेक्शन चाहा था जिसे मंजूर कर लिया गया था और जिसके लिए याची एवं झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड के बीच दिनांक 11.4.2008 को एक लिखित करार (परिशिष्ट-1) किया गया था।

3. करार के खण्ड 9(a) के अधीन, उपभोक्ता अर्थात याची को ऊर्जा आपूर्ति शुरु होने की तारीख से तीन वर्षों से पहले उक्त करार को समाप्त करने की स्वतंत्रता नहीं थी।

4. दिनांक 18.11.2008 के एक पत्र (परिशिष्ट-3) द्वारा याची ने एच॰ टी॰ कनेक्शन अभ्यर्पित करना चाहा और निवेदन किया कि याची को एच॰ टी॰ कनेक्शन को काटते समय एल॰ टी॰ व्यवसायिक कनेक्शन दिया जाए।

5. तत्पश्चात् प्रकटत: 3 वर्षों की वर्जना महसूस करते हुए याची का भार 101 के॰ भी॰ ए॰ से 60 एच॰ पी॰ तक कम करने की प्रार्थना करते हुए याची ने दिनांक 18.2.2009 को पुनरीक्षित पत्र लिखा। भाषा के इस परिवर्तन द्वारा याची ने प्रकटत: यह धारणा बनाने की कोशिश की कि वह करार समाप्त नहीं कर रहा था जो, जैसा कि ऊपर कहा गया है, याची उपभोक्ता द्वारा ऊर्जा आपूर्ति शुरू होने से तीन वर्ष पूरा होने तक समाप्त किया भी नहीं जा सकता था, बल्कि याची विद्यमान करार के अधीन सिर्फ भार 60 एच॰ पी॰ तक घटवाने की कोशिश कर रहा था।

6. करार का खण्ड-12, जो भार वृद्धि से संबंधित है और जो विद्यमान करार के अधीन अनुज्ञेय है, पर विश्वसनीयता प्रकट की गयी थी। यह निवेदन किया गया था कि जब करार भार वृद्धि की अनुज्ञा देता है, तो उसे वैसे ही भार घटाने की भी अनुज्ञा देनी चाहिए। **डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6651 वर्ष 2007, मेसर्स रामकृष्ण फोर्जिंग लिमिटेड बनाम झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य** के मामले में इस न्यायालय की एक खंड पीठ द्वारा दिनांक 23.7.2008 को दिये गए निर्णय पर विश्वसनीयता प्रकट की गयी। यह एक मामला था जहाँ भार को 4000 के॰ भी॰ ए॰ से 1325 के॰ भी॰ ए॰ तक घटाने की अपेक्षा की गयी थी। खंडपीठ ने अवधारित किया कि झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड को भार घटा देना चाहिए।

7. यहाँ यह बताया जा सकता है कि भार, टैरिफ, आपूर्त्ति के तरीके और करार के बाबत एच॰ टी॰ कनेक्शन और एल॰ टी॰ कनेक्शन में भिन्नता है। 101 के॰ भी॰ ए॰ लोड एच॰ टी॰ करार के अन्तर्गत आयेगा जबकि 60 एच॰ पी॰, एल॰ टी॰ करार के अन्तर्गत आयेगा। याची द्वारा विश्वास प्रकट किए गए **रामकृष्ण फोर्जिंग लिमिटेड बनाम झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य (ऊपर)** के मामले में मूल संविदा मांग और चाही गयी कमी की मांग 4000 के॰ भी॰ ए॰ से 1325 के॰ भी॰ ए॰ किये जाने का होने के कारण दोनों एच॰ टी॰ करार के अधीन आते है।

8. वर्तमान मामले में, याची भार को 101 के॰ भी॰ ए॰ से जो एच॰ टी॰ करार के अन्तर्गत आता है 60 एच॰ पी॰ तक जो एल॰ टी॰ करार के अधीन आता है कम किये जाने की अपेक्षा करता है। यह विवाद्यक मामला इस न्यायालय की खण्ड पीठ के निर्णय द्वारा दिनांक 23.7.2008 को **डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2653 वर्ष 2008** में **मेसर्स न्यू इंजीनियरिंग वर्क्स बनाम झारखंड राज्य,** सह-संबंधित **डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 2655 वर्ष 2008** में **मेसर्स ए॰ एस॰ एल॰ मोटर्स प्राईवेट लिमिटेड बनाम झारखंड राज्य एवं कई अन्य** के मामलों में आच्छादित किया जा चुका है। उक्त निर्णय में **बिहार राज्य विद्युत बोर्ड बनाम मेसर्स ग्रीन रबर इंडस्ट्रीज एवं अन्य (1990)1 SCC 731** और **जेनरल मैनेजर कम चीफ इंजीनियर, बिहार राज्य विद्युत बोर्ड एवं कई अन्य बनाम राजेश्वर सिंह एवं अन्य (1990)1 SCC 741** के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विश्वास प्रकट करते हुए अवधारित किया गया कि एच॰ टी॰ करार, को उसमें उल्लिखित समय की समाप्ति से पूर्व, समाप्त करना अनुज्ञेय नहीं है। दिनांक 28.7.2005 को झारखण्ड राज्य विद्युत विनियामक आयोग की अधिसूचना द्वारा जारी विद्युत आपूर्त्ति विनियमन संहिता, 2005 का खण्ड 7.5 उपभोक्ता के करार समाप्ति के अधिकार की चर्चा करते हुए कहता है कि

> *''फिर भी अगर करार की शुरुआती अवधि की समाप्ति के पूर्व करार समाप्त किया जाना हो तो उपभोक्ता करार की शुरुआती अवधि के बाद बची शेष अवधि के लिए टैरिफ के मुताबिक प्रभार भुगतान का जिम्मेदार होगा।''*

9. उसी तरह उसी विनियमन के खण्ड 9.2.1 में एक परंतुक अंतर्विष्ट है कि वितरण अनुज्ञप्तिधारी द्वारा करार की शुरुआती अवधि के समाप्ति के पूर्व भार में कमी की स्वीकृति नहीं दी जायगी।

10. वर्तमान मामला एक ही कोटि अर्थात् एच॰ टी॰ अथवा एल॰ टी॰ के भीतर अनुज्ञेय भार घटाने का नहीं है। जैसा कि बताया जा चुका है कि वर्तमान मामला नये एल॰ टी॰ करार के प्रतिस्थापन के निवेदन सहित एच॰ टी॰ करार की समाप्ति का मामला है।

11. याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह दर्शाने के लिए कि दिनांक 11.4.2008 का वर्तमान करार 101 के॰ भी॰ ए॰ तक भार वृद्धि से पूर्व पुराने करार को जारी रखने या विस्तारण के रूप में माना जा रहा है, परिशिष्ट-5 में संलग्न कतिपय बिलों सह-पठित रिट याचिका के पैराग्राफ 15 पर विश्वास प्रकट किया है। याची का प्रतिवाद है कि वर्तमान करार के खण्ड 4(c) के अधीन, सेवा के पहले 12 महीनों के लिए, किसी भी महीने हेतु उस महीना के अधिकतम मांग प्रभार खण्ड पर आधारित होगा भले ही वो संविदा मांग के 75 प्रतिशत से कम हो। यह प्रतिवाद, अगर सही है तो, याची को सेवा के पहले 12 महीनों के लिए अधिक मांग को चुनौती देने का आधार प्रदान कर सकता है लेकिन इसे यह अर्थ निकालने के लिए इस तरह व्यवस्थित नहीं किया जा सकता है कि 101 के॰ भी॰ ए॰ के एच॰ टी॰ भार की आपूर्त्ति पुराने एल॰ टी॰ करार के अधीन की जा रही है। परिशिष्ट-1 जो एच॰ टी॰ करार की प्रति है, स्पष्टत: दर्शाती है कि यह एक पूर्णत: नया करार है जो एच॰ टी॰ मांग के लिए विधिवत् आवश्यक था।

12. इन परिस्थितियों में, रिट याचिका में की गयी प्रार्थना कि, पहले पत्र की तारीख के प्रभाव से अर्थात् दिनांक 18.11.2008 के पत्र (परिशिष्ट-3) अथवा कम से कम दूसरे पत्र के तारीख के

प्रभाव से अर्थात् दिनांक 18.2.2009 के पत्र (परिशिष्ट-4) के मुताबिक प्रत्यर्थियों को याची के संविदा मांग को 101 के॰ भी॰ ए॰ से 60 एच॰ पी॰ तक घटाने का निर्देश दिया जाए, स्वीकार नहीं की जा सकती क्योंकि इसका अर्थ उपभोक्ता याची को 101 के॰ भी॰ ए॰ के एच॰ टी॰ करार को समाप्त करने और एच॰ टी॰ करार के विशेष शर्तों एवं आपूर्त्ति विनियमन संहिता के विशेष प्रावधानों का उल्लंघन कर एच॰ टी॰ करार में तय शुरुआती अवधि के तीन वर्ष के समाप्ति पूर्व 60 एच॰ पी॰ वाले एक नये एल॰ टी॰ करार से प्रतिस्थापित करने की अनुज्ञा देना होगा।

13. तद्नुसार यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

माननीय प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति

मेसर्स जी इन्टरएक्टिव लर्निंग सिस्टम्स लिमिटेड एवं अन्य

बनाम

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

क्रि॰ एम॰ पी॰ सं॰ 1141 वर्ष 2006. 3 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 420—पक्षों के बीच एक निश्चित कम्प्यूटर आधारित शिक्षण संस्थान चलाने हेतु संविदा–ऐसे संविदा की विफलता–भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन अभिकथन–अभिनिर्धारित, शुरुआती वादे के समय दंडनीय आशय की अनुपस्थिति में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन अपराध नहीं बनता है–आगे अवधारित किया गया कि विवाद सिविल प्रकृति का है और इस तरह दांडिक कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। (पैरा 6 एवं 7)

(ख) भारतीय दंड संहिता, 1860–धारा 406—आपराधिक न्यास भंग–अभिनिर्धारित, कोई भी न्यासभंग अपराध नहीं है–आपराधिक न्यास भंग का अपराध तभी पूर्ण होता है जब संपत्ति का दुविर्नियोग अथवा परिवर्तन बेईमानी से किया जाता है–संविदा की विफलता विशेषतः तब, जब अभिकथित पक्ष पैसों को वापस करने के लिए तैयार है, मामले को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 406 के प्रावधानों के अंतर्गत नहीं लाएगा–सम्पूर्ण कार्यवाही अभिखंडित। (पैरा 10 से 14)

अधिवक्तागण.–M/s B.P. Pandey, A.K. Sahani, For the Petitioners; Mr. S.N. Roy, For the State; Mr. L.C.N. Sahdeo, For the O.P. No.2.

आदेश

यह याचिका मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, सरायकेला के न्यायालय में लंबित आदित्यपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 252 वर्ष 2004 दिनांक 8.11.2004 (जी॰ आर॰ सं॰ 815 वर्ष 2004 तत्समान) में धारा 406 और 420 के अधीन सम्पूर्ण कार्यवाही को अभिखंडित करने के लिये दाखिल की गयी है।

2. परिवादी का मामला यह है कि समाचार-पत्र में छपे विज्ञापन का अनुसरण करते हुए परिवादी जेड कैरियर एकेडमी के माध्यम से सूचना प्रौद्योगिकी समर्पित शिक्षा शुरु करने के लिए याचियों के साथ एक करार किया। आगे यह अभिकथन किया गया है कि कम्प्यूटर शिक्षा पर आधारित उक्त प्रोजेक्ट के लिए स्टार्टअप किट के लिए 44000 रुपयों की राशि के अतिरिक्त तीन लाख रुपया फ्रैन्चाइजी फीस के तौर पर लिया गया था और उक्त करार की अवधि पाँच वर्षों की थी। आगे यह कथन किया गया है कि परिवादी द्वारा वृहत खर्चा उठाने के बाद संपूर्ण इंतजाम और अपेक्षापूर्ति सहित जेड कैरियर एकेडमी के उक्त प्रोजेक्ट का दिनांक 4.6.2000 को उद्घाटन किया गया था। आगे यह अभिकथन किया गया है कि इस बीच याचियों द्वारा जी लाइभ वायर प्रोजेक्ट का सूत्रपात करने हेतु

दैनिक टेलीग्राफ में एक अन्य विज्ञापन जारी किया गया था। आगे यह कथन किया गया है कि द्वितीय प्रोजेक्ट अर्थात् जी लाइभ वायर प्रोजेक्ट के लिए दिनांक 1.9.2000 को परिवादी एवं याचियों ने एक मेमोरेन्डम ऑफ अन्डरस्टैंडिंग पर हस्ताक्षर किया। तत्पश्चात्, जैसी मांग की गयी थी, परिवादी ने डिमान्ड ड्राफ्ट संख्या 010853 के जरिये जी लाइभ वायर प्रोजेक्ट के लिए याचियों को चार लाख रुपयों का भुगतान किया। आगे कथन किया गया है कि याचियों ने परिवादी को उसके द्वारा जी लाइववायर प्रोजेक्ट के फ्रैन्चाइजी फीस के तौर पर 65,000 रुपये अधिक भुगतान की गयी राशि के तौर पर लौटा दी और 3,55,000 रुपयों की कुल रकम अपने पास रख ली। आगे यह अभिकथन किया गया है कि जैसी याचियों की अपेक्षा थी, परिवादी ने जी लाइववायर प्रोजेक्ट सूत्रपात करने के लिए संपूर्ण अवसंरचना निर्मित कर ली थी लेकिन इसके बावजूद याचियों ने परिवादी की कम्पनी में जी लाइववायर प्रोजेक्ट संस्थापित करने में विलम्ब किया। यह कथन किया गया है कि अनेकों बार याद दिलाने पर भी याचियों ने उक्त जी लाइववायर प्रोजेक्ट का सूत्रपात नहीं किया और अंततः जनवरी 2002 के अंत में वर्तमान आई॰ सेल सेवा समाप्त कर दिया। यह अभिकथन किया गया है कि जी लाइववायर/आई॰ सेल प्रोजेक्ट का सूत्रपात करने में याचियों की विफलता के कारण परिवादी को गंभीर हानी पहुँची है, अतः उसने याचियों को फ्रेन्चाइजी फीस वापस करने को कहा। आगे यह कथन किया गया है कि अभियुक्त–याचियों ने तीन क्रमिक दिनांक पर 3,55,000 रुपयों में से 1,92,600 रुपया लौटा दिया किन्तु अभी भी 1,62,400 रुपये याचियों के पास शेष है जिसे परिवादी को नहीं वापस किया गया है। आगे यह अभिकथन किया गया है कि याचियों द्वारा वादा पूरा नहीं किये जाने के कारण परिवादी को गंभीर हानी हुई है। तद्नुसार, यह अभिकथन किया गया है कि अभियुक्त याचियों ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 406 और 420 के अधीन अपराध किया है।

3. याचियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि प्राथमिकी में किये गये अभिकथनों से याचियों द्वारा संविदात्मक बाध्यता के अननुपालन के लिए सिविल विवाद बनाया गया है। आगे निवेदन किया गया है कि सिविल विवाद और वृहत न्यायालय फीस से बचने के लिए और याचियों को ब्लैकमेल करने के उद्देश्य से परिवाद याचिका दाखिल कर परिवादी ने एक घुमावदार तरीका अपनाया है। आगे निवेदन किया गया है कि परिवाद याचिका का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट है याचियों में से किसी के भी विरुद्ध ऐसा आरोप नहीं है कि उन्होंने परिवादी (वि॰ प॰ 2) के धन का आपराधिक दुर्विनियोग कर लिया है। इसके विपरीत, यह दर्शाने को सामग्रियाँ है कि याचियों ने परिवादी (वि॰ प॰ 2) को फ्रैन्चाइजी राशि का कुछ भाग वापस कर दिया है और वह शेष राशि भी वापस करने को तैयार है, लेकिन परिवादी प्राथमिकी के आवरण में अधिक राशि उद्यापन करने के लिए उक्त राशि लेने से इन्कार कर रहा है। आगे यह निवेदन किया गया है कि संपूर्ण शिकायत याचिका में यह आरोप नहीं है कि याचियों ने शिकायतकर्ता को उत्प्रेरित किया था और इस तरह धोखे से संपति हड़प ली जो छल के अपराध के आवश्यक तत्व हैं। अतः भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन अपराध भी नहीं बनता है।

4. दूसरी ओर, विरोधी पक्षकार के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते है कि याची परिवादी को 1,62,400 रुपये जिसका उन्होंने अपने इस्तेमाल के लिये दुर्विनियोग कर लिया है, नहीं लौटा रहे थे। अतः भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 406 के अधीन अपराध बनता है। आगे यह निवेदन किया गया है कि याचियों ने जी लाइववायर प्रोजेक्ट का सूत्रपात करने के लिए समाचार पत्र में आकर्षक और प्रभावशाली विज्ञापन दिया था और इस प्रकार परिवादी को फ्रैन्चाइजी फीस के तौर पर 4,00,000/- रुपय देने के लिये उत्प्रेरित किया था। अभियुक्त याचियों द्वारा उक्त वादा पूरा नहीं किया गया, अतः अभियुक्त याचियों के विरुद्ध छल का अपराध बनता है।

5. निवेदनों को सुनने के बाद, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। प्राथमिकी के परिशीलन से यह प्रकट है कि जमशेदपुर में जी लाइववायर प्रोजेक्ट का सूत्रपात करने के लिए पक्षों के बीच एक करार था। आगे यह प्रकट होता है कि उक्त उद्देश्य के लिए, परिवादी ने याचियों को शुरु में 4,00,000/- रुपये दिये थे। परिवाद याचिका में यह कथन किया गया है कि याचियों की कम्पनी ने अधिक भुगतान पाने के कारण 65,000 रुपये शिकायतकर्ता को वापस कर दिया था और नए प्रोजेक्ट अर्थात् जी लाइववायर का सूत्रपात करने के लिए सिर्फ 3,55,000/- रुपये की राशि अपने पास रख ली थी। आगे यह प्रकट होता है कि कुछ कारण से उक्त जी लाइववायर प्रोजेक्ट का सूत्रपात नहीं किया गया है। स्वयं परिवाद याचिका में यह उल्लिखित है कि परिवादी द्वारा किये गये फ्रेन्चाइजी फीस के भुगतान का विस्तृत विवरण देते हुए परिवादी ने दिनांक 17.9.2002 को याची संख्या 3 को एक पत्र भेजा था। परिवाद याचिका में आगे यह कथन किया गया है कि याचियों को फ्रेन्चाइजी फीस के तौर पर भुगतान की गयी 3,55,000 रुपयों में से याचियों ने 1,92,600 रुपये लौटा दिया है और अभी भी अभियुक्त याचियों के पास 1,62,400 रुपयें की राशि शेष है।

6. इस तरह, संपूर्ण परिवाद याचिका के पठन से, यह प्रकट होता है कि संविदात्मक बाध्यता जैसा करार में उल्लिखित है, के अननुपालन को लेकर पक्षों के बीच विवाद है जो मेरी दृष्टि में सिविल प्रकृति का विवाद को अन्तर्ग्रस्त करता है। परिवाद याचिका से यह नहीं पता चलता है कि करार पर हस्ताक्षर करते समय याचियों का जी लाइववायर प्रोजेक्ट को कार्यान्वित करने का आशय नहीं था बल्कि पक्षों के बीच पत्राचार, जिनका परिवाद याचिका में विस्तृत विवरण दिया गया है, दर्शाते है कि प्रोजेक्ट के रद्द किये जाने तक दोनों पक्ष जी लाइववायर प्रोजेक्ट का सूत्रपात करने में सक्रिय अभिरुचि ले रहे थे। पैराग्राफ 22 में परिवादी द्वारा स्वीकार किया गया है कि दिनांक 21.2.2002 को याचियों ने परिवादी को जी लाइववायर प्रोजेक्ट से संबंधित एक परिचालन निर्देशिका भेजी थी। अत: परिवादी का उक्त कथन दर्शाता है, कि पक्षों के बीच करार के समय याचियों का परिवादी (वि॰ प॰ 2) को प्रवंचित करने का कपटपूर्ण अथवा बेईमानी भरा आशय था।

भी॰ वाई॰ जोस बनाम गुजरात राज्य, 2009 (2) JLJR (SC)1 में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा अवधारित किया गया है कि ''छल का अपराध गठित करने के लिए परिवादी से यह दर्शाने की अपेक्षा की जाती है कि वादा अथवा व्यपदेशन करते समय अभियुक्तों का उद्देश्य कपटपूर्ण अथवा बेईमानी का था। ऐसी मामले में भी जहाँ अभियुक्त द्वारा वादा पूरा करने में विफलता का अभिकथन किया गया है, प्रारंभ में किये गये वादे में आपराधिक आशय की अनुपस्थिति के कारण, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन आरोप बनना नहीं माना जा सकता है।

मेरी दृष्टि में, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का उक्त निर्णय वर्तमान मामले को भी आच्छादित करता है। वर्तमान मामले में, जैसा ऊपर दिखाया गया है, अभियुक्त याचियों का करार के समय कपटपूर्ण या बेईमानी भरा आशय नहीं था। अत: मेरी दृष्टि में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन अपराध नहीं बनता है।

8. जहाँ तक भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 406 के अधीन अपराध का संबंध है, परिवादी ने स्वयं पैराग्राफ 34 में स्वीकार किया है कि जी लाइववायर प्रोजेक्ट रद्द किये जाने के पश्चात याचियों ने 1,92,600 रुपये शिकायतकर्ता को वापस कर दिया है और 1,62,400 रुपये अभी भी शेष है। आगे पूरक शपथपत्र के परिशिष्ट 4 से प्रकट होता है कि दिनांक 19.1.2005 को अभियुक्त-याचियों ने चेक सं॰ 023592 दिनांकित 31.1.2005 द्वारा परिवादी को 25000 रुपये वापस कर दिया है और अभिस्वीकृत किया है कि आई॰ सेल द्वारा 1, 25, 358 रुपये की राशि परिवादी को भुगतेय है।

9. उक्त परिस्थितियों के अंतर्गत, यह नहीं कहा जा सकता है कि परिवादी द्वारा याचियों को भुगतान किये गये फ्रैन्चाइजी राशि का अभियुक्त याचियों ने दुर्विनियोग कर लिया है। वर्तमान दांडिक विविध याचिका में, पैराग्राफ 19 पर याचियों द्वारा यह कथन किया गया है कि वे 1,37,400 रुपये का भुगतान परिवादी को करने के लिए तैयार है, लेकिन परिवादी इसे लेने से इन्कार कर रहा है।

10. आपराधिक न्यासभंग का अपराध नियत करने के लिये अभियोजन के लिए यह दर्शाना आज्ञापक है कि अभियुक्त जिनको संपत्ति न्यस्त की गयी थी, ने उक्त संपत्ति बेईमानी से दुर्विनियोग कर लिया है अथवा अपने इस्तेमाल के लिये परिवर्तित कर लिया है। बेईमानीपूर्ण आशय अपराध का सार है। कोई भी न्यासभंग अपराध नहीं है। अपराधिक न्यासभंग का अपराध तभी पूरा होता है जब संपत्ति का दुर्विनियोग अथवा परिवर्तन बेईमानी से किया गया था।

11. वर्तमान मामले में जैसाकि ऊपर दिखाया गया है, परिवादी ने स्वयं स्वीकार किया है कि याचियों को भुगतान किये गये 3,55,000 रुपये में से, परिवाद याचिका दाखिल किये जाने की तारीख तक, उसने 1,92,600 रुपया पाया है। परिशिष्ट 4 से आगे यह प्रकट होता है कि वर्ष 2005 में परिवादी को 25,000 रुपयों का भी भुगतान किया गया है। वर्तमान याचिका में, याचियों ने कथन किया है कि वे शेष 1,37,400 रुपये वापस करने को तैयार है, लेकिन परिवादी स्वयं उक्त राशि लेने से इन्कार कर रहा है। उक्त परिस्थितियों के अधीन मैं पाता हूँ कि अभियुक्त याचियों का परिवादी द्वारा जमा किये गये शेष फ्रैन्चाइजी फीस का दुर्विनियोग करने का बेईमानीपूर्ण आशय नहीं है। मामले को इस दृष्टि से देखने पर, मेरे सुनिश्चित विचार में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 406 के अधीन अपराध नहीं बनता है।

12. उक्त **भी॰ वाइ॰ जोस मामले (ऊपर)** में, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने आगे अवधारित किया है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482, न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति की रक्षा करती है। यह कल्याणकारी प्रयोजन को पूरा करता है, अर्थात् किसी व्यक्ति को कई सालों तक मुकदमें में परेशान नहीं किया जाना चाहिए। जब उसके विरूद्ध कोई मामला निर्मित नहीं हुआ हो। यह कहना अलग बात है कि विचारण के लिए एक मुकदमा बना है और इस तरह दांडिक कार्यवाही अभिखंडित नहीं की जानी चाहिए लेकिन यह कहना दूसरी बात है कि इस तथ्य के बावजूद कि कोई मामला नहीं बना है फिर भी किसी व्यक्ति को दांडिक विचारण से गुजरना चाहिए।

13. जैसा ऊपर चर्चा की गयी है, मेरी दृष्टि में, परिवाद याचिका में किये गये अभिकथनों से भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 406 और 420 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है। मेरी दृष्टि में, पक्षों के बीच का विवाद करार में किये गये वादे के अननुपालन, जिससे परिवादी को गंभीर क्षति हुई है, से निर्मित सिविल प्रकृति का है। उक्त विवाद के समाधान के लिये दांडिक न्यायालय उचित स्थान नहीं है।

14. तद्नुसार याचिका अनुज्ञात की जाती है। मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, सरायकेला के न्यायालय में लंबित भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 406 और 420 के अधीन आदित्यपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 252 वर्ष 2004 दिनांक 8.11.2004, जी॰ आर॰ सं॰ 815 वर्ष 2004 तत्समान, से उद्भूत समस्त दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जाती है।

माननीय प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति

बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह (528 में)

बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह (486 में)

बनाम

झारखण्ड राज्य (दोनों में)

दां अपील सं॰ 528, 486 वर्ष 2007. 2 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

सत्र विचारण सं॰ 206 वर्ष 2006 में राम नाथ प्रसाद, अपर सत्र न्यायाधीश, त्वरित द्वितीय न्यायालय, डाल्टेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 20.4.2007 के निर्णय एवं दोषसिद्धि के आदेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 376(g)—सामूहिक बलात्कार–अपीलार्थी सं॰ 2 गली में रुका रहा और अपीलार्थी सं॰ 1 जिसने अवयस्क लड़की का खेत में बलात्कार किया, के पीछे नहीं गया–अभिनिर्धारित, चूंकि अपीलार्थी सं॰ 2 ने बलात्कार नहीं किया है अथवा मुख्य अभियुक्त के बलात्कार करने में मदद नहीं की है, इसलिए वह संदेह के लाभ का हकदार है। (पैरा 10 एवं 11)

अधिवक्तागण.–M/s Vijay Pratap Singh, T.R. Bajaj, For the Appellants; M/s Tapas Roy, Shekhar Sinha, For the Respondent.

प्रदीप कुमार, न्यायमूर्ति.–बबलू सिंह ऊर्फ सूर्यदेव सिंह द्वारा दाखिल दांडिक अपील सं॰ 528 वर्ष 2007 और बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह द्वारा दाखिल दांडिक अपील सं॰ 486 वर्ष, 2007 एक ही सत्र विचारण सं॰ 206 वर्ष 2006 से उद्भूत होती है, जिस निर्णय द्वारा दोनों ही अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 (g)/34 के अधीन दोषी पाया गया था और 10 वर्ष की अवधि के लिए सश्रम कारावास और प्रत्येक को 10,000 रुपये जुर्माना भरने और इसके व्यतिक्रम में और भी एक वर्ष की अवधि के लिये सश्रम कारावास की सजा दी गयी थी।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि अभियोजन आरोपों को युक्तियुक्त संदेहों से परे सिद्ध करने में विफल रहा है। प्राथमिकी दर्ज करने में हुए दो दिन विलम्ब का जबकि पुलिस थाना नजदीक था, का कोई स्पष्टीकरण नहीं है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि यह भी प्रकट होगा कि सूचक ने कथन किया था कि रात्रि 10.30 बजे वह नित्यकर्म हेतु अपने घर से बाहर गयी थी और उसे अपीलार्थी ने, पकड़ लिया और उसने शोर नहीं मचाया बलात्कार होने के बाद वह अपने घर आयी और बिना कोई शिकायत किये रात भर सोई जो दर्शाता है कि सूचक सहमत पक्षकार थी और इस तरह भारतीय दंड संहिता की धारा 376(g)/34 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, यह निवेदन किया गया है कि दांडिक अपील सं॰ 486 वर्ष 2007 के दूसरे अभियुक्त बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह ने न तो बलात्कार करने और न ही मुख्य अभियुक्त बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह को मदद करने में भाग लिया और इस तरह भारतीय दंड संहिता की धारा 376(g)/34 के अधीन उसकी दोषसिद्धि पूर्णत: अन्यायपूर्ण, विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण और अभिखंडित करने योग्य है।

3. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने अपीलार्थियों की ओर से की गयी प्रार्थना का विरोध किया है और निवेदन किया है कि अभियोक्त्री 14 वर्षीय अवयस्क बालिका है और जब वह नित्यकर्म से निपटने रात्रि 10.30 में अपने घर से बाहर गयी तब अभियुक्त ने उसे पकड़ लिया और नजदीक के खेत में घसीटते हुए ले गया, जब उसने हल्ला करना चाहा तो उसने उसका मुँह बन्द कर दिया और तत्पश्चात् बलात्कार किया जिससे अवयस्क लड़की हतबाक् हो गयी। तत्पश्चात् वह रात में शिकायत नहीं कर पायी, लेकिन प्रात: वह रो रही थी और उसने अपनी माँ को घटना के बारे में सब कुछ बता दिया और इस तरह यह नहीं कहा जा सकता है कि सूचक एक सहमत पक्षकार थी, बल्कि यह अवयस्क बालिका के साथ बलात्कार का मामला है। द्वितीय अपीलार्थी, बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह ने पहले अभियुक्त, बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह की मदद भी की है क्योंकि यह अभिकथन किया गया है कि वह गली में चौकसी कर रहा था ताकि बलात्कार की घटना के दौरान कोई आए तो वह चौकन्ना कर सके और इस तरह उसने मुख्य अभियुक्त बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह को बलात्कार का अपराध करने में मदद की है और वह इस कृत्य के लिए पूर्णरुप से जिम्मेदार है। तद्नुसार, अपील खारिज करने योग्य है।

4. दोनों पक्षों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के बाद मैं पाता हूँ कि अभियोजन के मामले की शुरुआत गोपाल साव की 14 वर्षीय पुत्री कोमल कुमारी द्वारा रेहला गाँव में दिनांक 17.3.2006 को शाम 6.30 बजे अपने घर के दरवाजे पर एस॰ आइ॰ मनोज कुमार को दी गई प्राथमिकी के आधार पर की गयी थी जिसमें कथन किया गया है कि पिछली रात अर्थात दिनांक 16.3.2006 को लगभग रात्रि में 10.30 बजे वह अपने घर से उत्तर महावीर साव की चारदीवारी के नजदीक नित्यकर्म से निपटने के लिये घर से बाहर गयी थी और जब वह नित्यकर्म से निपट कर वापस आ रही थी तब गली के पास बेलचम्पा के उमेश सिंह का पुत्र बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह अचानक उसके सामने आ गया और रेहला के बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह ने उसका मुँह बन्द कर दिया और उसे महावीर साव के चारदीवारी के अंधकारपूर्ण उत्तरी हिस्से की ओर घसीटते हुए ले जाने लगा और धमकाया कि वह उसे जान से मार देगा और तत्पश्चात उसके साथ बलात्कार किया। वह रो रही थी और उसे अपने साथ ऐसा नहीं करने की याचना कर रही थी, लेकिन उसने कुछ भी सुनने से इन्कार कर दिया और उसे जमीन पर पटक दिया और बलात्कार किया जिससे उसके दांये हाथ और पीठ पर जख्म कारित हुआ। रेहला के बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह द्वारा बलात्कार की घटना के दौरान बेलचंपा का बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह गली में ही खड़ा था। बलात्कार करने के बाद दोनों भाग गए। तब वह अपने घर आयी और भय के कारण किसी को कुछ भी नहीं कहा, लेकिन प्रातः जब उसके गुप्तांगों का दर्द असहनीय हो गया तब उसने अपनी माँ को घटना के बारे में बताया। तत्पश्चात् मामला दर्ज किया गया।

5. उक्त प्राथमिकी के आधार पर पुलिस ने भारतीय दंड संहिता की धारा 376(g)/34 के अधीन दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध मामला दर्ज किया।

6. चूंकि मामला सिर्फ सत्र न्यायालय द्वारा विचारण के योग्य था, इसलिए इसे सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया जहाँ भारतीय दंड संहिता की धारा 376(g)/34 के अधीन आरोप दर्ज किया गया और अपीलार्थियों का विचारण किया गया और दोषसिद्ध किया गया जैसा कि ऊपर कहा गया है।

7. यह प्रतीत होता है कि आरोपों को सिद्ध करने के लिये अभियोजन ने निम्नलिखित सात गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1 सूचक कोमल कुमारी है। अ॰ सा॰ 2 मंजू देवी पीड़ित बालिका की माँ है। अ॰ सा॰ 3 ललन प्रसाद उर्फ ललन साह है। अ॰ सा॰ 4 शंकर साव है। अ॰ सा॰ 5 पीड़ित बालिका का पिता गोपाल साव है। अ॰ सा॰ 6 डाक्टर पूनम सिन्हा है जिन्होंने पीड़ित बालिका का चिकित्सीय परीक्षण किया है और अ॰ सा॰ 7 मामले का अन्वेषण अधिकारी मनोज कुमार है।

8. यह प्रतीत होता है कि सूचक कोमल कुमारी ने अभियोजन के मामले जैसा कि प्राथमिकी में दिया गया है, का पूरा समर्थन किया है और कथन किया है कि घटना की रात्रि के 10.30 बजे जब वह नित्यकर्म से निपट कर वापस आ रही थी तब रेहला के बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह ने उसे पकड़ लिया और उसका मुँह बंद करके ताकि वह हल्ला नहीं कर पाये, खेत में खींचते हुए ले गया और उसके साथ बलात्कार किया। उस समय बेलचंपा का बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह गली में खड़ा था और चौकसी कर रहा था। बलात्कार करने के बाद रेहला का बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह भाग गया और धमकी दी कि अगर उसने इस घटना के बारे में बताया तो उसे जान से मार दिया जाएगा। भय के कारण वह अपने घर आयी और किसी को घटना के बारे में बताये बिना सोने चली गयी। दूसरे दिन उसने घटना के बारे में अपनी माँ को बताया। दूसरे दिन पुलिस आयी और तब उसने अपना बयान दिया जिसे दर्ज किया गया और उसने इस पर हस्ताक्षर भी किया। तब पुलिस ने उसे चिकित्सीय परीक्षण के लिए भेजा। तब उसका परीक्षण किया गया और न्यायालय में दण्डाधिकारी के समक्ष उसका कथन दर्ज किया गया। उसने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन कथन पर हस्ताक्षर किया। उसने न्यायालय में अभियुक्तों की पहचान भी की।

अपने प्रतिपरीक्षण में उसने कथन किया कि उसके घर के पास सिर्फ चार घर है जो महावीर सिंह, रमनी साव और डोमन साव के है। उसने आगे कथन किया है कि अभियुक्त बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह निवासी रेहला, का घर उसके घर से दस कदम की दूरी पर है। उसने अपने प्रति-परीक्षण के पैरा 12 में कथन किया है कि जब उसने हल्ला करना चाहा तो रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह ने अपने हाथ से उसका मुँह बन्द कर दिया। उसने आगे कथन किया है कि वह सप्तम वर्ग की छात्रा है। अपने प्रति-परीक्षण के पैरा-33 में उसने कथन किया है कि रोजन नदी पार करने के बाद कुछ दूरी पर बेलचम्पा गाँव है। उसने पैरा 38 में इन्कार किया है कि उसके पिता और अभियुक्त रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह के बीच मुकदमेबाजी है।

अ॰ सा॰-2 मंजू देवी, अभियोक्त्री की माता ने भी अभियोजन के मामले का समर्थन किया है। और कथन किया है कि घटना रात्रि 10.30 बजे घटी जब उसकी बेटी नित्यकर्म से निपटने अपने घर से बाहर गयी थी, लेकिन प्रात: जब वह दर्द के कारण रो रही थी तब पूछताछ करने पर उसने घटना के बारे में बताया और कथन किया कि अभियुक्त रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह ने उसके साथ जबरदस्ती बलात्कार किया है। उसने यह भी कथन किया है कि उसकी पुत्री ने बताया कि बेलचम्पा निवासी बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह गली में खड़ा था और चौकसी कर रहा था। उसने घटना के बारे में अपने पड़ोसियों को भी बताया। शाम में जब पुलिस आयी तब उसकी पुत्री ने फर्दबयान दिया जिस पर उसने गवाह के तौर पर हस्ताक्षर भी किया है। उसने अपना हस्ताक्षर प्रदर्श 1/1 के तौर पर सिद्ध किया। उसने न्यायालय में दोनों अभियुक्तों की पहचान की। अपने प्रति परीक्षण के पैरा-4 में, उसने कथन किया कि उसे सवेरे पता चला कि रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह ने उसकी पुत्री का बलात्कार किया है। तब उसने अपने पड़ोसियों को घटना के बारे में बताया और उसका पति उपस्थित नहीं था। तत्पश्चात्, उसने घटना के बारे में अपने पति को भी बताया और तब शाम में पुलिस आयी। अपने प्रति परीक्षण में, पैरा-11 पर, वह कथन करती है कि पुलिस ने उसका कथन दर्ज किया। पैरा 22 में उसने यह भी कथन किया है कि घटना स्थल पर धान दर्शाया जा रहा है पर घटना के समय वह खाली था। पैरा 24 में उसने कथन किया है कि वह रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह को जानती है जो उसके घर के पास रहते है। पैरा 25 में उसने कथन किया है कि वह बेलचम्पा निवासी बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह को भी जानती है। उसने अपने प्रति परीक्षण के पैरा 31 में इन्कार किया है कि अभियुक्तों के विरोधियों के कहने पर उसने रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह का नाम लिया है ताकि उन्हें गलत ढंग से फंसाया जा सके।

अ॰ सा॰ 3 ललन प्रसाद उर्फ ललन साह है, जिसने अभियोजन के मामले का पूरा समर्थन किया है और कथन किया है कि उसे दूसरे दिन सुबह अभियोक्त्री कोमल कुमारी की माता से घटना के बारे में पता चला कि रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह ने उसकी बेटी का जबरन बलात्कार किया। उस समय बेलचम्पा निवासी बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह गली में खड़ा था।

अ॰ सा॰ 4 शंकर साव ने भी अभियोजन के मामले का समर्थन किया है और कथन किया है कि उसे दूसरे दिन सुबह घटना की जानकारी हुई।

अ॰ सा॰ 5 गोपाल साव पीड़ित बालिका का पिता है और उसने कथन किया है कि 16.3.2006 की रात में अभियुक्त रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह ने उसकी बेटी का जबरन बलात्कार किया है। उस समय बेलचम्पा निवासी बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह गली में खड़ा था और चौकसी कर रहा था। दूसरे दिन सुबह उसकी पुत्री ने अपनी माँ को घटना के बारे में बताया। अपने प्रति परीक्षण में उसने कथन किया कि उसकी पत्नी ने उसे घटना के बारे में दिनांक 17.3.2006 को प्रात: 7.30 बजे बताया। उसने तुरन्त अपने भतीजे ललन साव को सूचना दी। तत्पश्चात् पुलिस सबेरे

आयी और उसकी पुत्री का बयान दर्ज किया। अपने प्रति-परीक्षण के पैरा 11 में उसने कथन किया है कि वह रेहला निवासी मुन्द्रिका सिंह और याचक सिंह को जानता है और उनकी मृत्यु हो चुकी है और उनके परिवार का कोई सदस्य न्यायालय नहीं आया था और पैरा 13 में उसने इन्कार किया कि परिवार के सदस्यों जो अभियुक्त के परिवार के विरोधी हैं, के कहने पर उसने मुकदमा दायर किया है।

अ॰ सा॰ 6 डॉक्टर पूनम सिन्हा है, जिन्होंने 18.3.2006 को लगभग प्रात: 11.30 बजे पीड़ित बालिका का परीक्षण किया और घटना के दिन उसे 14-16 वर्ष का पाया। उसने उसकी दांयी बांह पर बाहरी जख्म और गर्दन पर खरोंच पाया। पीठ के ऊपरी हिस्से में डॉक्टर ने दो खरोंच भी पाया। पीड़ित बालिका के गुप्तांगों का परीक्षण करने पर उसने लेबिया के दांये भाग पर लाल रंग का 2" x 1" माप वाला रगड़ पाया। आंतरिक परीक्षण करने पर उसने पाया कि योनि में सिर्फ एक उंगली दर्द के साथ जा सकती है, सतीच्छद फटा हुआ, योनिस्राव लेकर अनुवीक्षण द्वारा परीक्षण के लिये भेजा गया और पैथोलोजिकल रिपोर्ट सं॰ 10 दिनांक 18.3.2006 के अनुसार योनिस्राव में वीर्य नहीं पाया गया है। डॉक्टर के अनुसार बलात्कार की संभावना अपवर्जित नहीं की जा सकती है। पैरा-2 में उसने कथन किया कि एक उत्तेजित शिश्न के प्रवेश से पीड़िता के गुप्तांगों में उपहति होने की संभावना है। उसने अपना उपहति रिपोर्ट प्रदर्श-3 के तौर पर सिद्ध किया।

अ॰ सा॰ 7 मामले का अन्वेषण अधिकारी मनोज कुमार है। उसने न्यायालय में कथन किया कि उसने दिनांक 17.3.2006 को रेहला बाजार में अफवाह सुनी कि गोपाल साव की पुत्री का बलात्कार हुआ है। तब उसने स्टेशन डायरी में इस बात को दर्ज किया और सत्यापन के लिये गोपाल साव के घर आया। गोपाल साव के घर पर उसकी 14 वर्षीय पुत्री कोमल कुमारी ने अपनी प्राथमिकी दी। उसने फर्दबयान को, जिसे उसकी माँ की उपस्थिति में सूचक को पढ़कर सुनाया गया, प्रदर्श-4 के तौर पर सिद्ध किया जिस पर उसने हस्ताक्षर किया। उसने उसका हस्ताक्षर प्रदर्श-1 के तौर पर सिद्ध किया और कथन किया कि उसने अन्वेषण शुरु किया और तत्पश्चात् सूचका का बयान दर्ज किया। तत्पश्चात् उसने उसकी माँ और उसकी बहन कंचन कुमारी का परीक्षण किया। वह घटनास्थल पर आया और पाया कि घटनास्थल महावीर साव की चारदीवारी के पीछे है जो खुला मैदान है। घटना स्थल, जिसे पाया गया, पर थाने की मुहर लगायी गयी। उसने औपचारिक प्राथमिकी को प्रदर्श-5 के तौर पर सिद्ध किया। उसने पीड़ित बालिका का परीक्षण करवाया और उपहति रिपोर्ट प्राप्त की और अन्वेषण के बाद अभियुक्तों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया।

अपने प्रति परीक्षण में उसने कथन किया कि वह पुलिस स्टेशन में प्रविष्ट मूल स्टेशन डायरी की प्रति लाया है। उसने आगे कथन किया कि पीड़ित बालिका का घर पुलिस थाना से लगभग 300 मीटर दूर है। पैरा 25 में उसने कथन किया कि पीड़ित बालिका का बयान दर्ज करने के बाद उसने अंधकार हो जाने के कारण पीड़ित बालिका को उसकी माँ के घर ही छोड़ दिया और दूसरे दिन उसे अपना चिकित्सीय परीक्षण करवाने को कहा। अपने प्रति-परीक्षण में, पैरा 28 पर वह कथन करता है कि पीड़ित बालिका को चिकित्सीय परीक्षण के लिये पुलिस जीप में भेजा गया था। उसे जीप का नम्बर याद नहीं है। अपने प्रति परीक्षण के पैरा 35 में वह कथन करता है कि उसने पीड़ित बालिका का कपड़ा नहीं लिया था क्योंकि घटना के बाद उन्हें धुला पाया गया। उसने कथन किया कि अन्वेषण की समाप्ति और उच्चतर प्राधिकारियों के पर्यवेक्षण के बाद उसने आरोप पत्र दाखिल किया।

9. अत: समस्त अभियोजन मामले के परिशीलन के बाद मैं पाता हूँ कि अ॰ सा॰ 1, 2, 3 और 5 के साक्ष्यों ने अभियोजन मामले का पूर्ण समर्थन किया है कि घटना की रात्रि अर्थात् दिनांक 16.3.2006 को जब नित्यकर्म से निपटने हेतु पीड़िता अपने घर से बाहर गयी और जब वह वापस आ रही थी, अभियुक्त बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह ने उसे पकड़ लिया और उसके साथ जबरन बलात्कार किया। अ॰ सा॰ 6 डॉक्टर ने भी पाया है कि पीड़ित बालिका 14 वर्ष की अवयस्क लड़की है और बलात्कार का चिन्ह है। उसके हाथ और पीठ पर बाहरी चोट है जो उसके अभिकथन के अनुसार

तब हुई जब अभियुक्त रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह ने उसे ताकत से जमीन पर पटक दिया और जबरन बलात्कार किया तब उसे हाथ और पीठ पर जख्म हुआ। डॉक्टर ने उसके गुप्तांगों पर भी जख्म पाया है जो उत्तेजित शिश्न के जबरन प्रवेश से कारित हुआ है।

अन्वेषण अधिकारी ने भी अभियोजन मामले का समर्थन किया है और इस तरह मेरे विचार में, विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह को उचित रूप से दोषसिद्ध किया है।

10. फिर भी, जहाँ तक बेलचम्पा निवासी बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह द्वारा दाखिल अपील का संबंध है, सूचक ने सिर्फ यह अभिकथन किया है कि वह मुख्य अभियुक्त रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह के साथ उपस्थित था। ऐसा कोई अभिकथन नहीं है कि उसने रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह को पीड़ित बालिका का बलात्कार करने के लिए उकसाया था और उसके कथन के मुताबिक न ही उसे छूने या उसके विरुद्ध कोई भी अपराध करने की कोशिश की थी जब मुख्य अभियुक्त रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह ने उसका मुँह बंदकर उसे महावीर साव की दीवाल के पीछे के मैदान तक घसीटता ले गया। वह उसके पीछे नहीं गया बल्कि गली में रुका रहा। यह भी अभिकथन नहीं है कि घटना के बाद जब रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह पीड़ित बालिका को धमका रहा था, वह चला गया। मामले के इस दृष्टि में, उसके द्वारा बलात्कार करने अथवा मुख्य अभियुक्त को बलात्कार करने में मदद पहुँचाने का, क्योंकि वह गली में खड़ा था अभिकथन नहीं किया गया है। अ॰ सा॰ 1 पीड़ित बालिका कोमल कुमारी ने सोचा कि वह चौकसी कर रहा है।

11. फिर भी, अभियुक्त बेलचम्पा निवासी बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह द्वारा की गयी किसी सक्रिय क्रिया की अनुपस्थिति में यह विचार पर्याप्त नहीं है और इस तरह मेरे विचार में अभियुक्त बेलचम्पा निवासी बबलू सिंह उर्फ आनन्द कुमार सिंह, पी॰ एस॰ गढ़वा, जिला गढ़वा को संदेह का लाभ दिया जाता है और उसके द्वारा दाखिल अपील अर्थात् दांडिक अपील 486/07 को अनुज्ञात किया जाता है और चूंकि वह जमानत पर है अत: उसे अपने जमानत पत्र के बंधन से मुक्त किया जाता है। जहाँ तक अपीलार्थी रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह, पी॰ एस॰ रेहला, जिला पलामू का संबंध है, अभियोजन ने सब युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध कर दिया है कि उसने पीड़ित बालिका का बलात्कार किया है और इस तरह भारतीय दंड संहिता की धारा 376(g)/34 के अधीन उसकी दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 में परिवर्तित किया जाता है और उसकी दस वर्ष की सजा घटा कर सात वर्ष की जाती है और उसे 7000 रुपये जुर्माना देने का निर्देश दिया जाता है और यदि यह राशि दी जाती है तो 6000 रुपये पीड़ित बालिका के पिता को दिया जाय और 1000 रुपये सरकारी कोषागार में जमा कर दिया जाएगा और भुगतान के व्यतिक्रम में अपीलार्थी को और अधिक 6 महीने का सश्रम कारावास भुगतना होगा।

12. दोषसिद्धि के निर्णय और सजा में उक्त परिवर्तन के बाद अभियुक्त रेहला निवासी बबलू सिंह उर्फ सूर्यदेव सिंह द्वारा दाखिल दांडिक अपील 528 वर्ष 2007 को खारिज किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी को जमानत नहीं दिया गया था और वह अभी भी जेल की हिरासत में है। विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह देखे कि वह अपनी सजा पूरी करे।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

दादुल धोबी उर्फ दादुल बैठा एवं अन्य (425 में)

राम सुंदर बैठा (1514 में)

बनाम

झारखण्ड राज्य (दोनों में)

दांडिक अपील सं॰ 425 वर्ष 2000 सहित दांडिक अपील सं॰ 1514 वर्ष 2005. 28 अगस्त, 2009 को विनिश्चित।

जी॰ आर॰ केस सं॰ 209 वर्ष 1990 से उद्भूत एस॰ टी॰ सं॰ 208A/92 में तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 27.8.2005 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरूद्ध एवं सत्र विचारण सं॰ 208 वर्ष 1992 में द्वितीय सहायक सत्र न्यायाधीश, गढ़वा द्वारा पारित दिनांक 19.9.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 376/34—बलात्कार–पीड़ितों ने अभिसाक्ष्य दिया कि उनका बलात्कार हुआ था–चिकित्सीय बोर्ड द्वारा दिया गया जाँच रिपोर्ट और डॉक्टर द्वारा दिये गये साक्ष्य ने बलात्कार के तथ्य की संपुष्टि की–पुराने भूमि विवाद के कारण गलत ढंग से फँसाने का अभिवचन पर अविश्वास व्यक्त किया गया–पीड़ितों का साक्ष्य स्वाभाविक एवं विश्वसनीय है–प्राथमिकी दर्ज करने में हुआ विलम्ब मुख्य नहीं है–दोषसिद्धि कायम।

(पैरा 5, 6, 12 एवं 14)

निर्णयज विधि.–(2008) 11 SCC 20—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Azimuddin (in 425), Mr. Awadhesh Pandey (in 1514), For the Appellants; Mr. M.B.Lal, For the Respondent.

निर्णय

दोनों अपील मजगाँव पी॰ एस॰ केस सं॰ 28 वर्ष 1990, जी॰ आर॰ केस सं॰ 209 वर्ष 1990 तत्समान में दिये गये दो भिन्न निर्णयों से उद्भूत होते है। चूंकि अपीलार्थी राम सुन्दर बैठा (दांडिक अपील सं॰ 1514 वर्ष 2005 में अपीलार्थी) लंबे समय तक फरार रहा, इसलिए उसका विचारण पृथक कर दिया गया था।

2. अभियोजन का मामला संक्षिप्त है जैसा कि पीड़िता सह सूचक कबूतरी देवी (अ॰ सा॰ 4) के फर्दवयान से प्रदर्शित है जिसे कि दिनांक 25.5.1990 को रात्रि 10 बजे दर्ज किया गया जिसमें उसने कहा है कि पिछले शनिवार 20.5.1990 को लगभग 9 बजे रात में जब वह अपनी बहु बचिया देवी (अ॰ सा॰ 3) के साथ खाना खाने के बाद बिना दरवाजे वाले अपने कमरे में सो रही थी जबकि उसकी बहु दरवाजे वाले दूसरे कमरे में सो रही थी जिसका दरवाजा राजा घटवा गाँव में है, तब छः व्यक्ति उसके घर आये जिसकी पहचान उसने रामसुन्दर बैठा, दादुल धोबी, सुरेश साव, बिहारी चमार, प्रसाद महतो और रमेश महतो (सभी अपीलार्थी) के तौर पर की थी क्योंकि उनको वह पहले से जानती थी और पानी एवं हाथ से झलने वाला पंखा (बेना) मांगा। पानी पीने के बाद उन्होंने बिस्तर की फर्माइश की। तब, चूंकि घर पर कोई मर्द सदस्य उपस्थित नहीं था, उसने उनलोगों को जाने को कहा पर वे नहीं गये। रामसुन्दर धोबी के हाथ, में एक बड़ी बंदूक थी और दादुल धोबी के पास भी एक छोटा बंदूक था। अभियुक्त/अपीलार्थी रामसुन्दर धोबी, दादुल धोबी और सुरेश साव उसके साथ बने रहे जबकि अभियुक्त अपीलार्थी बिहारी चमार, प्रसाद महतो और रमेश महतो उसकी बहु बचिया देवी (अ॰ सा॰ 3) के कमरे में जबरदस्ती घुस गये और तत्पश्चात अंदर से दरवाजा बन्द कर लिया। जब वह स्वयं को बचाने की कोशिश कर रही थी, रामसुन्दर धोबी ने उसका गला दबाया और उसके गर्दन, कंधे और गाल नोचने लगा और जबरन उसके साथ बलात्कार किया। रामसुन्दर धोबी, दादुल धोबी और सुरेश साव ने बारी-बारी से सूचक के साथ बलात्कार किया। तत्पश्चात् वे चले गये। तीन अन्य व्यक्ति उसकी बहु के कमरे से बाहर आए और धमकी देकर चले गये। उनके जाने के बाद सूचक की बहु ने कथन किया कि तीनों अभियुक्तों ने बारी-बारी से उसके साथ बलात्कार किया जिस कारण वह कमर, गर्दन, गला और कंधे में दर्द से पीड़ित हो गयी थी। अगले दिन सुबह वह सह-ग्रामीणों नानक पासवान (अ॰ सा॰ 1) और बुधिया पासवान को उक्त घटना के बारे में बताया लेकिन उक्त व्यक्तियों ने उससे कहा कि सभी अभियुक्त गुंडे है और यह इज्जत का मामला है। इस कारण, वह उस दिन पुलिस थाना नहीं गयी। आगे यह कथन किया गया है कि घटना की रात को उसका पति और

सूचक का पुत्र घर पर उपस्थित नहीं थे। फर्दबयान के आधार पर, उक्त छः अभियुक्त अपीलार्थियों के विरुद्ध मामला दर्ज किया गया और अन्वेषण के पश्चात भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376/34 के अधीन उन सभी के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया। चूँकि अभियुक्त राम सुंदर बैठा (दां॰ अपील सं॰ 1514 वर्ष 2005 में अपीलार्थी लम्बे समय से फरार था, इसलिए उसका विचारण पृथक किया गया था।

3. अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध करने हेतु सात गवाहों का परीक्षण किया है। उनमें से अ॰ सा॰ 1, नन्हक पासवान को पक्षद्रोही घोषित किया गया है; अ॰ सा॰ 2 श्याम सुन्दर पासवान टेंडर्ड है; अ॰ सा॰ 3 बचिया देवी पीड़िता है और सूचक की बहु है; अ॰ सा॰ 4 कबूतरी देवी इस मामले की सूचक सह पीड़िता है; अ॰ सा॰ 5 डॉक्टर सुधाकर लाल और अ॰ सा॰ 6 डॉक्टर रामनरेश सिंह दिवाकर हैं जिन्होंने चिकित्सीय बोर्ड गठित कर पीड़ितों का परीक्षण किया है। दो जख्म रिपोर्ट और चिकित्सीय बोर्ड गठित करने के आदेश क्रमशः प्रदर्श 1, 1/1 और 2 के तौर पर चिन्हित किये गये है। अ॰ सा॰ 7 सूचक का पुत्र है, जो एक अनुश्रुत गवाह है। अपीलार्थियों ने अपने बचाव में भूमि विवाद के कारण गलत फँसाये जाने की बात कही है और विचारण का सामना करने का दावा किया।

4. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्राथमिकी दर्ज करने में विलम्ब हुआ था, और अभियोजन द्वारा कोई सही स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। अ॰ सा॰ 3, 4 और 7 के साक्ष्यों में अनेक विरोधाभास है।

5. अपीलार्थियों एवं राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेखों का परिशीलन करने के पश्चात् मैं पाती हूँ कि अ॰ सा॰ 4 पीड़ित-सह-सूचक ने अभिसाक्ष्य दिया है कि दस वर्ष पूर्व रात के 9-10 बजे वह अपने कमरे में उपस्थित थी और उसकी बहु भी दूसरे कमरे में उपस्थित थी, इस बीच उक्त छः अपीलार्थी उसके घर आये और उससे पानी एवं पंखा (बेना) मांगा। उसने उन्हें दिया। तत्पश्चात, उनलोगों ने बिस्तर की मांग की लेकिन अपने घर में कोई मर्द सदस्य उपस्थित नहीं होने के कारण उसने मना कर दिया। उसने आगे कथन किया कि रामसुन्दर के हाथ में बंदूक था और दादुल के हाथ में भी बड़ा बंदूक था। तत्पश्चात् रामसुन्दर, सुरेश और रमेश ने बारी-बारी से उसके साथ जबरन बलात्कार किया। पहले, रामसुन्दर ने उसका बलात्कार किया और जब उसने विरोध किया, तब रामसुन्दर ने उसका गला दबाया और उसे मारा-पीटा जिस कारण उसके शरीर को कई जख्म हुए। इस संदर्भ में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते है कि अ॰ सा॰ 4 ने अपने प्रति परीक्षण में रामसुन्दर का नाम नहीं लिया है और अभिसाक्ष्य दिया है कि सुरेश और फिर रमेश ने उसे नीचे लिटा दिया। दोनों ने उसका बलात्कार किया। लेकिन मैं अभिलेख से पाती हूँ कि अ॰ सा॰ 4 ने अपने कथन में राम सुन्दर के बारे में विनिर्दिष्ट कथन किया है कि उसने उसका बलात्कार किया और मारा-पीटा भी जैसा कि उसने फर्दबयान में भी अभिकथन किया है। अतः गवाह के लिए स्वाभाविक है कि जब वह घटना के 8-10 वर्ष पश्चात् अभिसाक्ष्य दे रही हो, तब वह किसी एक समय पर अभियुक्तों में, से किसी एक का नाम लेना भूल जाए। इसके अतिरिक्त घटना के दस वर्ष पश्चात् अभिसाक्ष्य लिया गया है और इस कारण गवाह विशेषकर एक अनपढ़ ग्रामीण महिला के लिए विस्तारपूर्वक संपूर्ण घटना को याद रखना असंभव है। अतः न्यायालय को मामले की व्यापक संभावनाओं का परीक्षण करना चाहिए और छोटे-मोटे विरोधाभासों से प्रभावित नहीं होना चाहिए।

4. एक अन्य मुख्य गवाह अ॰ सा॰ 3 बचिया देवी है जो सूचक की बहु और पीड़िता है। बचिया देवी ने भी अपने साक्ष्य में कथन किया है कि जब अभियुक्त उसके घर आये, तब वह कमरे में सो रही थी। उसकी सास ने उसे उन्हें पानी देने के लिए जगाया। पानी देने के बाद, उसने अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया और वहाँ बैठी रही। लेकिन उसने सुना कि अभियुक्त क्या बात कर रहे थे। तत्पश्चात् तीन अभियुक्त दादुल, प्रसाद और बिहारी उसके कमरे में घुसे और बारी-बारी से उसका बलात्कार किया। पहले दादुल ने बंदूक दिखाते हुए उसे लिटाया और बलात्कार किया। जब उसने हल्ला

करने की कोशिश की, तो अभियुक्तों द्वारा उसे धमकाया गया था और उसे मारा-पीटा भी गया था। उसने अपने प्रति परीक्षण में उचित रूप से ही कथन किया है कि उसने नहीं देखा कि उसकी सास का बलात्कार किसने किया था। उसकी सास ने उसे बताया। अ॰ सा॰ 3 और 4 के संपूर्ण साक्ष्य पर विचार करने से प्रतीत होता है कि उनका साक्ष्य स्वाभाविक और विश्वसनीय है। सिर्फ यही नहीं, चिकित्सीय रिपोर्ट भी इसकी संपुष्टि करते है।

7. मैं अ॰ सा॰ 7 के साक्ष्य पर आती हूँ जो सूचक का पुत्र है जिसने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि घटना की तारीख को वह लमारी में काम कर रहा था। उसको सूचना मिली कि उसकी पत्नी बचिया देवी और उसकी माँ का राम सुन्दर, रमेश, सुरेश, दादुल, बिहारी और प्रसाद द्वारा बलात्कार किया गया था। वह तुरन्त अपने घर लौटा और पूछने पर उसकी माँ और पत्नी ने सारी घटना बतायी। अत: उसने अभियोजन के मामले और अ॰ सा॰ 3 एवं 4 के साक्ष्यों का पूर्ण समर्थन किया है। उसके अभिसाक्ष्य को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है।

8. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे बताया है कि यद्यपि अ॰ सा॰ 4 कबूतरी देवी ने अपने फर्दबयान और अपने साक्ष्य में भी कथन किया है कि घटना के समय घर में कोई पुरुष सदस्य उपस्थित नहीं था लेकिन अपने साक्ष्य के पैरा 19 और 22 में उसने अभिसाक्ष्य दिया कि उसके श्वसुर घर में उपस्थित थे और उसकी बहु को एक वर्ष का शिशु भी था। अत: उसका साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है। उसके साक्ष्य का जाँच करने पर मैं पाती हूँ कि घटना के दिन अ॰ सा॰ 4 का श्वसुर बहुत वृद्ध, अंधा और चलने-फिरने से लाचार था। अत: अ॰ सा॰ 4 ने उसे सक्षम पुरुष सदस्य नहीं माना है जो उनकी रक्षा कर सकता था। स्वीकृत तौर पर, घटना के दिन न तो अ॰ सा॰ 4 का पति, न ही उसका पुत्र (बचिया देवी का पति) घर में उपस्थित था।

9. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क किया है कि किसी भी स्वतंत्र गवाह का परीक्षण नहीं किया गया है यद्यपि अ॰ सा॰ 4 गाँव के चौकीदार सहित अन्य ग्रामीणों के पास गयी और उन्हें घटना की सूचना दी थी। इस संदर्भ में मैं अ॰ सा॰ 3 का कथन उल्लेख करना चाहती हूँ जिसने अपने साक्ष्य के पैरा-14 में स्पष्ट तौर पर उल्लेख किया है कि दूसरी सुबह 8-9 बजे पहले उसके श्वसुर और तत्पश्चात् उसके पति आये। उन्होंने गाँव वालों को एकत्रित किया लेकिन ग्रामीणों ने उन्हें मामला न दर्ज करने की सलाह दी। इस कथन से स्पष्ट है कि ग्रामीण अभियुक्त अपीलार्थियों के विरुद्ध नहीं जाना चाहते थे चाहे इसके पीछे जो भी कारण हो। इस परिस्थिति में, मैं अपेक्षा नहीं कर सकती कि कोई भी ग्रामीण न्यायालय में आयेगा और अभियोजन मामले का समर्थन करेगा।

10. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता का अगला प्रतिवाद यह है कि अपराध करते समय अभियुक्त अधिकतर 25-30 वर्ष के थे अर्थात् व्यावहारिक रूप से वे सूचक कबूतरी देवी के पुत्र के उम्र के थे और यह संभाव्य नहीं है कि वे उसका बलात्कार करेंगे। यौन अपराध करने के लिए उम्र का प्रश्न नहीं उद्‌भूत होता है जब तक कि पीड़िता बहुत वृद्ध न हो। अत: मैं इस तर्क में ज्यादा बल नहीं पाती हूँ।

11. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता तर्क करते हैं कि अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण नहीं किये जाने के कारण, बचाव पक्ष पर काफी हद तक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। मेरे विचार में अ॰ सा॰ 3, 4 और 7 के साक्ष्य की दृष्टि में, अभियोजन ने अभियुक्त अपीलार्थियों के विरुद्ध अपना मामला सफलतापूर्वक सिद्ध कर दिया है।

12. अंत में, अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अभियुक्त अपीलार्थियों को दोनों पक्षों के बीच भूमि विवाद होने के कारण गलत ढंग से फँसाया गया है। इस बारे में, अ॰ सा॰ 7 ने स्पष्ट कथन किया है कि उसके जन्म अर्थात् 30-35 वर्ष पहले अभियुक्त रमेश महतो ने उन्हें

जमीन से बेदखल कर दिया था जिसके लिए पंचायती भी बुलाई गयी थी। मैं सोचती हूँ कि उक्त बेदखली के 30-35 वर्ष पश्चात सूचक का परिवार अभियुक्तों को बलात्कार के मामले (अर्थात् वर्तमान मामले) में गलत ढंग से नहीं फँसाएगा जिसमें उनके परिवार के सदस्य की प्रतिष्ठा जुड़ी है।

13. मतिलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2008)11 SCC पृष्ठ 20 में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय के हाल के निर्णय में यह अवधारित किया गया है कि:–

12. 'यह एक सर्वविदित विधि है कि लैंगिक प्रहार की पीड़िता को सह–अपराधी नहीं माना जा सकता है और इस प्रकार, उसके साक्ष्य की संपुष्टि डॉक्टर के साक्ष्य सहित अन्य साक्ष्यों से कराना आवश्यक नहीं है। किसी दिये गये मामले में अगर डॉक्टर, जिसने पीड़िता का परीक्षण किया है, बलात्कार का कोई चिन्ह नहीं भी पाता है तब भी यह अभियोक्त्री के एकमात्र साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई आधार नहीं है। सामान्यतः लैंगिक प्रहार की पीड़िता अपने परिवार के सदस्यों के सम्मुख भी ऐसे अपराध को प्रकट करना नहीं चाहती, पुलिस या जनता के समक्ष तो और भी नहीं। भारतीय महिलाओं में ऐसे अपराध को छुपाने की प्रवृत्ति है क्योंकि इसमें उनकी और उनके परिवार की प्रतिष्ठा अंतर्विष्ट है।''

14. उपरोक्त विवेचन के प्रकाश में और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को समग्र रूप से देखने पर मैं दोनों अपीलों में कोई गुणागुण नहीं पाती हूँ। तद्नुसार, दोनों अपीलों को खारिज किया जाता है और एस॰ टी॰ सं॰ 208 वर्ष 1992 एवं एस॰ टी॰ सं॰ 208A वर्ष 1992 में क्रमशः दिनांक 19.2.2000 और दिनांक 27.8.2003 को विचारण न्यायालय द्वारा पारित सजा के आदेश और दोषसिद्धि को संपुष्ट किया जाता है। चूंकि दोनों अपीलों के अपीलार्थी जमानत पर है उनका जमानत पत्र रद्द किया जाता है और विचारण न्यायालय को उनके विरुद्ध आवश्यक कदम उठाने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

मेसर्स भारत कोकिंग कोल लिमिटेड

बनाम

उनके कर्मकार एवं एक अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एल॰) सं॰ 2452 वर्ष 2001. 2 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947—धारा 25(F)—केन्द्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण के अधिनिर्णय को चुनौती दी गयी–अभिनिर्धारित, मात्र विलम्ब के आधार पर कर्मकार को किसी अनुतोष से वंचित नहीं किया जा सकता है जब वह विधि एवं साथ ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विनिश्चयों की दृष्टि में इसका हकदार है–अग्रेतर अभिनिर्धारित, सेवा के बदले में प्रतिकर का अधिनिर्णय किया जाना ऐसे मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है एवं ऐसा कोई सर्वमान्य सन्नियम नहीं है कि विवाद उठाने में विलम्ब के सभी मामलों में नियोजन के बदले में प्रतिकर प्रदान किया जाना है–अधिनिर्णय में कोई अशक्तता नहीं–हस्तक्षेप से इनकार किया गया। (पैरा 15)

अधिवक्तागण.–Mr. Anoop Kr. Mehta, For the Petitioner; Mr. S.K. Laik, For the Respondents.

आदेश

पक्षों को सुना।

2. इस रिट याचिका में याची ने संदर्भ सं॰ 128/1991 में दिनांक 20.2.2001 के केन्द्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण सं॰–1, धनबाद के अधिनिर्णय, जिसके द्वारा कर्मकार–प्रत्यर्थी सं॰ 1 के

पक्ष में संदर्भ को उत्तर दिया गया है और प्रबंधन-याची संबद्ध कर्मकार, मो० असलम शदमानी को बिना बकाया मजदूरी के पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया गया है, को अभिखंडित करने की प्रार्थना की गयी है।

3. पृष्ठभूमि में, संक्षिपत तथ्य यह है कि दिनांक 7.11.1981 को संबद्ध कर्मकार सुरक्षा अनुयायी के तौर पर नियुक्त किया गया था। तत्पश्चात् उसे दिनांक 20.1.1982 को तेरह अन्य कर्मचारियों के साथ कनीय प्रहरी के तौर पर स्थापित और नियमित किया गया था। अचानक, दिनांक 7.10.1982 को नियमितीकरण का उक्त आदेश वापस ले लिया गया और उक्त कर्मकार को सेवा से हटाने का प्रयास किया गया।

4. यह विवाद में नहीं है कि दिनांक 7.10.1982 के उक्त आक्षेपित आदेश जारी करने से पहले सम्बद्ध कर्मकार-प्रत्यर्थी सं० 1 को कोई नोटिस नहीं दिया गया था और कोई नोटिस के एवज में देय भी नहीं दिया गया था।

5. संबद्ध कर्मकार ने औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25 के आज्ञापक प्रावधानों और नैसगिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में नियमितीकरण के आदेश को वापस लेकर सेवा से अचानक हटाये जाने का विरोध किया।

6. संबद्ध कर्मकार ने प्रबंधन के समक्ष स्वयं को पुनर्स्थापित एवं बकाया मजदूरी का भुगतान करने की प्रार्थना करते हुए अनेक अभ्यावेदन दिये, परन्तु कोई नतीजा नहीं निकला।

7. जब प्रबंधन ने याची के अभ्यावेदनों का कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया, उसने सहायक श्रम आयुक्त (सी०), धनबाद के समक्ष औद्योगिक विवाद उठाया। सहायक श्रम आयुक्त ने सुलह कराने की कोशिश की, परन्तु विफल रहा। सहायक श्रम आयुक्त (सी०) द्वारा श्रम मंत्रालय, भारत सरकार के समक्ष विफलता रिपोर्ट पेश किया गया था। उक्त यथोचित सरकार ने विवाद को न्यायनिर्णयन हेतु केन्द्रीय सरकार औद्योगिक अधिकरण-1, धनबाद, को निर्दिष्ट कर दिया। संदर्भ का निबंधन निम्नलिखित था:-

> *''क्या मेसर्स बी० सी० सी० लि० द्वारा अपने दिनांक 19/20.1.82 के कार्यालय आदेश सं० बी० सी० सी० एल०/पी० ए०-5/प्रॉम/टी० आर०/प्रहरी/82/7478-388 के माध्यम से की गयी असलम शदमानी की नियुक्ति को अपने दिनांक 7.10.82 के कार्यालय आदेश सं० बी० सी० सी० एल०/पी० ए०-5/प्रॉम-जू० प्रहरी-82 द्वारा रद्द करने एवं परिणामस्वरूप उसकी सेवा समाप्त करने की कार्रवाई न्यायोचित है? अगर ऐसा है तो संबंधित कर्मकार किन अनुतोषों को पाने का हकदार है?''*

8. दोनों पक्ष औद्योगिक अधिकरण के समक्ष प्रकट हुए और अपना-अपना लिखित कथन-सह-प्रत्युत्तर दाखिल किया। संबद्ध कर्मकार का विनिर्दिष्ट दावा औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25(F) के प्रावधानों एवं नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में गैर-कानूनी सेवा समाप्ति का है। प्रबंधन ने अपने लिखित कथन में दावों का इस आधार पर प्रतिवाद किया है कि औद्योगिक विवाद उठाने में बहुत अधिक विलम्ब किया गया था और संबद्ध कर्मकार ने 240 दिन पूरा नहीं किया था और इस प्रकार औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25(F) के प्रावधानों के तहत मामला नहीं बनता है। चूँकि कम्पनी द्वारा विहित नियमावली के विपरीत संबद्ध कर्मकार का नियमितीकरण किया गया था, संबद्ध कर्मकार के सेवा के नियमितीकरण के आदेश को वापस लेना गैर-कानूनी नहीं है।

9. दोनों पक्षों ने अपने-अपने दावों के समर्थन में साक्ष्य पेश किया और अनेक दस्तावेजों पर, जिन्हें प्रदर्श के तौर पर चिन्हित किया गया था, अपनी-अपनी विश्वसनीयता प्रकट की है।

10. तदुपरांत, विद्वान अधिकरण ने अपने निष्कर्ष देते हुए अपना अधिनिर्णय दिया कि संबद्ध कर्मकार दिनांक 19/20.1.82 के आदेश द्वारा कनीय प्रहरी के तौर पर नियुक्त किया गया था उसने

दिनांक 21.1.1982 को अपना पद संभाला और दिनांक 7.10.1982 के आक्षेपित आदेश द्वारा हटाया गया। संबद्ध कर्मकार ने स्वीकार्यत: केवल 8 महीने 16 दिन काम किया था। प्रबंधन ने यह दर्शाने के लिए कि उक्त अवधि के दौरान संबद्ध कर्मकार अपनी ड्यूटी पर अनुपस्थित था, कोई उपस्थिति रजिस्टर प्रस्तुत नहीं किया। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह एक स्वीकृत स्थिति है कि प्रबंधन ने औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25(F) के अधीन विहित प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया है और न ही संबद्ध कर्मकार के कनीय प्रहरी के पद पर स्थापना को रद्द करने से पहले उसे कारण बताने का अवसर दिया गया था। स्वीकृत तथ्यों एवं दस्तावेजों के आधार पर नियोक्ता एवं कर्मचारी का संबंध स्थापित हुआ है। अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में, सिर्फ विलम्ब के आधार पर कर्मकार को विधि के अधीन उपलब्ध अनुतोष देने से इन्कार नहीं किया जा सकता है और बकाया मजदूरी और अन्य पारिणामिक लाभों को देने के मामले में विलम्ब की अवधि को अपवर्जित करते हुए अधिनिर्णय को रूपायित किया जा सकता है। विद्वान अधिकरण ने आगे अभिनिर्धारित किया है कि औद्योगिक विवाद उठाने के लिए कोई विहित सीमा नहीं है और जब संबद्ध कर्मकार की सेवा समाप्ति गैर कानूनी है तो पुनर्बहाली के अनुतोष से इंकार नहीं किया जा सकता है। अधिकाधिक संबद्ध कर्मकार बकाया वेतन पाने का हकदार नहीं होगा।

11. उक्त निष्कर्षों के आधार पर विद्वान अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि संबद्ध कर्मकार, मो॰ असलम शदमानी की नियुक्ति के सम्बन्ध में दिनांक 7.10.82 के अपने कार्यालयी आदेश सं॰ BCCL/PA-V/Prom-Jr. Watcher/82/52502-522 के माध्यम से दिनांक 19/20.1.82 के कार्यालयी आदेश सं॰ BCCL/PA-V/Prom/Jr./Watcher/82/3478-388 को रद्द करने की एवं परिणामस्वरूप उसकी सेवा समाप्त करने की मेसर्स बी॰ सी॰ सी॰ लि॰ की कार्रवाई न्यायोचित नहीं थी एवं वह बकाया मजदूरियों के बिना अपनी पुनर्बहाली का हकदार है।

12. याची ने उक्त अधिनिर्णय का प्रतिवाद तीन आधारों पर किया है:-

(i) संबद्ध कर्मकार यह सिद्ध करने में विफल रहा है कि उसने एक कैलेन्डर वर्ष में 240 दिनों से अधिक काम किया है जिसे, औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25(F) के प्रावधानों के अननुपालन की शिकायत उठाने से पहले सिद्ध करने की जिम्मेदारी उस पर है।

(ii) दावा करने में हुए आत्यधिक विलम्ब के विरुद्ध आपत्ति पर, सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किये जाने के कारण आक्षेपित अधिनिर्णय दोषपूर्ण है।

(iii) प्रबंधन ने दिनांक 7.10.1982 के आक्षेपित आदेश द्वारा पहले के गैर-कानूनी आदेश को सिर्फ वापस लिया और ऐसे मामलों में संबद्ध कर्मकार को कोई नोटिस दिये जाने की अपेक्षा अथवा नैसर्गिक न्याय के उल्लंघन का प्रश्न ही नहीं उठता है। संबद्ध कर्मकार को हटाये जाने की तिथि से एक लंबी अवधि बीत जाने की दृष्टि में औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25(F) की आज्ञापक अपेक्षाओं के उल्लंघन के सिद्ध मामलों में भी विद्वान अधिकरण नियोजन के बदले मुआवजा दिये जाने का अधिनिर्णय दे सकता था।

13. विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के **रेंज फॉरेस्ट अधिकारी बनाम एस॰ टी॰ हदीमानी, (2002)3 SCC 25** में प्रकाशित **प्रबंधक रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, बंगलोर बनाम एस॰ मणि एवं अन्य (2005)5 SCC 100 में प्रकाशित;** एवं **सीताराम ठाकुर बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** (1993)2 PLJR 140 में प्रकाशित निर्णयों पर विश्वास प्रकट किया है।

14. दूसरी ओर प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि आक्षेपित अधिनिर्णय तथ्यों, सामग्रियों एवं अभिलेख पर लाए गए साक्ष्यों का उचित विचारण करके विद्वान अधिकरण ने पुख्ता कारणों के आधार पर उनका उत्तर पहले ही दे दिया है। अधिनिर्णय में कोई भी अशक्तता या अवैधता नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि संबद्ध कर्मकार द्वारा

प्राथमिक रूप से यह दायिता कि वह कर्मकार था और उसने एक कैलेन्डर वर्ष में 240 दिनों से अधिक काम किया है और उसने प्रथम दृष्टया सिद्ध कर दिया है कि वह एक कर्मकार था और उसने 240 दिन पूरा किया है, जबकि प्रबंधन स्वीकार योग्य साक्ष्यों द्वारा इसका खंडन करने में असफल रहा है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि **रेंज फॉरेस्ट ऑफिसर (ऊपर) (2002)3 SCC 25,** मामले में दिया गया निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है। उसने दिनांक 7.11.1981 को सेवा में प्रवेश और दिनांक 7.10.1982 के आदेश द्वारा सेवा से हटाये जाने, और जिनकी गणना करने पर 240 दिन से अधिक होते है, से जुड़े तथ्यों और दस्तावेजों को अभिलेख पर लाकर सिद्ध कर दिया है कि उसने 240 दिनों से अधिक काम किया। विद्वान अधिवक्ता ने **बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम घेमरभाई हरजीभाई रबारी, (2005)10 SCC 792** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया है और विश्वास प्रकट किया है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि **रेंज फॉरेस्ट ऑफिसर (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को **बैंक ऑफ बड़ौदा (ऊपर)** मामले में निर्दिष्ट किया गया है और विचार किया गया है। उन्होंने आगे निवेदन किया है कि **हरियाणा भूमि पुनरुद्धार एवं विकास निगम लिमिटेड बनाम निर्मल कुमार, (2008)2 SCC 366** में प्रकाशित मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया है कि कर्मकार के वास्तविक दावे को सिर्फ इस आधार पर कि दावा करने में विलम्ब हुआ है, अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। विद्वान अधिकरण ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विचार किया है और सही तौर पर अभिनिर्धारित किया है कि सिर्फ परिसीमा के आधार पर औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25(F) के उल्लंघन को दरकिनार नहीं किया जा सकता है और कर्मकार को उन अनुतोषों से जिनका वह कानूनन हकदार है वंचित नहीं किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि मेसर्स बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ के संबंधित पदाधिकारियों द्वारा नियमितीकरण का पत्र जारी किया गया था। मामला यह नहीं है कि नियमितीकरण का पत्र कपट अथवा दुर्व्यपदेशन की कार्रवाई है या अन्यथा नास्ति और शून्य है और इस दृष्टि से, **सीताराम ठाकुर (ऊपर)** में किया गया निर्णय लागू नहीं होता है। चूँकि याची द्वारा स्थापित तथ्य कि उसने दिनांक 7.11.1981 को सेवा में प्रवेश किया और उसे दिनांक 7.10.1982 को सेवा से हटाया गया और उसने लगभग 11 महीने अर्थात् 240 दिनों से ज्यादा काम किया है, का खंडन करने के लिए कोई विपरीत तात्विक साक्ष्य नहीं है। अत: प्रबंधन के लिए यह आज्ञापक था कि वह औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25(F) एवं नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की अपेक्षाओं का अनुपालन करे।

15. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख पर दर्ज तथ्यों और सामग्रियों पर विचार किया है। मैंने पक्षों द्वारा दाखिल लिखित कथनों और अधिकरण द्वारा दिये गये अधिनिर्णय का परिशीलन किया है। यह एक स्वीकृत मामला है कि दिनांक 7.11.1981 को याची को बी॰ सी॰ सी॰ एल॰ में नियुक्त किया गया था। दिनांक 20.1.1982 के पत्र द्वारा अन्यों के साथ याची की सेवा का नियमितीकरण किया गया था। तत्पश्चात् दिनांक 7.10.1982 के आदेश द्वारा दिनांक 20.1.1982 का आदेश प्रबंधन द्वारा वापस ले लिया गया था। यह भी स्वीकृत है कि आदेश वापसी के पहले संबंधित कर्मकार को कारण सूचित करते हुए नोटिस नहीं दिया गया था और न ही नोटिस के ऐवज में देय, जैसा कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25 के अधीन अपेक्षित है, उसे दिया गया था। विद्वान अधिकरण ने उन स्वीकृत तथ्यों और दस्तावेजों, जो कर्मकार के नौकरी में प्रवेश और निर्गमन की तारीख सिद्ध करते हैं, के आधार पर निष्कर्ष निकाला है उक्त स्वीकृत तथ्यों और दस्तावेजों की दृष्टि में कर्मकार ने यह सिद्ध करने की कि वह कर्मकार था और उसने लगभग 11 महीने की सेवा दी है जो 240 दिनों से ज्यादा है, प्रथम दृष्टया जिम्मेवारी का निर्वहन करने में सक्षम रहा है और मैं पाता हूँ कि प्रबंधन अभिलेख पर लाए गए तथ्यों और साक्ष्यों द्वारा इसका खंडन नहीं कर पाया है। विद्वान अधिकरण की उक्त निष्कर्ष स्वीकृत तथ्यों और अभिलेखों पर आधारित है। जहाँ तक विवाद को विलम्ब से उठाये जाने के आक्षेप का संबंध है, विद्वान अधिकरण ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के आधार पर सही अवधारित किया है कि सिर्फ विलम्ब के आधार पर कर्मकार को किसी अनुतोष, जिसे पाने का वह कानून के प्रावधानों के अन्तर्गत हकदार है, से वंचित नहीं किया जा सकता है। जहाँ

तक नियोजन के बदले मुआवजे का प्रश्न है, इसे अधिकरण के समक्ष नहीं उठाया गया था और इस तरह अधिनिर्णय को इस संबंध में निष्कर्ष नहीं निकालने के लिए गैर कानूनी नहीं माना जा सकता है। सेवा के बदले मुआवजे का अधिनिर्णय प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और ऐसा कोई सर्वमान्य फार्मूला नहीं है कि विलम्ब से विवाद उठाये जाने के हर मामले में कर्मकार को रोजगार के बदले मुआवजा ही दिया जाए।

16. उक्त के आलोक में मैं आक्षेपित अधिनिर्णय में कोई अशक्तता या अवैधता नहीं पाता हूँ। विद्वान अधिकरण ने सारे प्रासंगिक पहलू पर सम्यक् विचार विमर्श के बाद आक्षेपित अधिनिर्णय दिया है और सारे निष्कर्ष अभिलेख पर दर्ज तथ्यों और साक्ष्यों पर आधारित है।

17. अत: मैं इस रिट याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ और तद्नुसार यह खारिज की जाती है।

18. फिर भी व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

लालो तुरी

बनाम

सी॰ सी॰ एल॰ एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 5739 वर्ष 2008. 18 अगस्त, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–उपदान, संचित निधि, पारिवारिक पेंशन इत्यादि का भुगतान–अभिनिर्धारित, विलम्बित भुगतान का कारण या तो आवेदक की अनभिज्ञता या निरक्षरता है या भिन्न-भिन्न आवेदन पत्रों की अनुपलब्धता है–भविष्य में इसपर नजर रखने के लिऐ प्रत्यर्थी सी॰ सी॰ एल॰ को कतिपय निर्देश निर्गत किए गए–सी॰ सी॰ एल॰ के प्रबन्ध निदेशक को मृत्यु-सह-सेवांत प्रसुविधाओं की स्थिति से निपटने के क्रम में न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने के लिये अपने अधिकारियों के बीच परिपत्र निर्गत करने का भी निर्देश दिया गया। (पैरा 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–Mr. N.K.P. Sinha, For the Petitioner; M/s Ananda Sen, Deepak Roshan, Ratnesh Kumar, For the Respondents.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि मृतक कर्मचारी (वर्तमान याची का पिता) जो प्रत्यर्थी सं॰ 1 के अधीन काम कर रहा था, की मृत्यु दिनांक 19 दिसम्बर, 1997 को हो गयी थी और वह उपदान, भविष्य निधि राशि, जीवन आच्छादन योजना एवं पारिवारिक पेंशन का हकदार है।

2. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए यह प्रतीत होता है की:–

(i) जहाँ तक उपदान राशि का संबंध है प्रत्यर्थी सं० 1 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि उपदान संदाय अधिनियम, 1972 के अधीन समुचित पदाधिकारी/नियंत्रक पदाधिकारी के समक्ष विधिवत् देय उपदान राशि का चेक जमा किया जा चुका है, एवं इसलिए याची, अधिनियम, 1972 के अधीन उक्त नियंत्रक पदाधिकारी को आवेदन कर सकता है ताकि समुचित पहचान के बाद याची को उक्त राशि प्रदान किया जा सके।

(ii) जहाँ तक भविष्य निधि राशि का संबंध है, प्रत्यर्थी सं० 1 के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन के मुताबिक यह पहले ही दिया जा चुका है।

(iii) जहाँ तक जीवन आच्छादन योजना राशि का संबंध है, कम से कम समय के अंदर इस राशि का भुगतान कर दिया जाएगा क्योंकि याची से आवश्यक आवेदन हाल ही में प्राप्त किया जा चुका है।

(iv) जहाँ तक पारिवारिक पेशन का संबंध है, याची द्वारा आवेदन दिये जाने पर याची अथवा उसके प्रतिनिधि को अपना पक्ष रखने का पर्याप्त अवसर दिये जाने और प्रत्यर्थी सं० 1 से प्रत्यर्थी सं० 6 तक से प्रतिदाय योजना के कागजात पाये जाने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं० 7 को पारिवारिक पेंशन हेतु याची के आवश्यक कागजात इस न्यायालय के आदेश की प्रति प्राप्त होने की तिथि से दस दिनों के भीतर प्रत्यर्थी सं० 7 को अग्रसारित कर देना होगा।

(v) जहाँ तक जीवन आच्छादन योजना की राशि के भुगतान का संबंध है, इस न्यायालय के आदेश की प्रति प्राप्त होने की तिथि से छः सप्ताह की अवधि के भीतर उक्त राशि का भुगतान कर दिया जाएगा।

3. प्रत्यर्थी सं॰ 1 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह दृढ़तापूर्वक निवेदन किया गया है कि आवश्यक फोटो और ऐसे अन्य विवरणों सहित उपयुक्त प्रारुप में समुचित आवेदन की अनुपस्थिति के कारण याची को विधिवत देय राशि का निर्णय और भुगतान करने में विलम्ब हुआ है। प्रत्यर्थी सं॰ 1 को ध्यान रखना चाहिए कि जब कभी भी उनके कर्मचारी की मृत्यु होती है, उन्हें वैध उत्तराधिकारियों जिनके नाम सेन्ट्रल कोल फिल्डस लिमिटेड के पास उपलब्ध सेवा अभिलेखों में परिलक्षित है, को मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों को पाने के लिए ऐसे सारे प्रारुपों को भेजना चाहिए क्योंकि विधिक उत्तराधिकारी कभी मासूम बच्चे तो कभी अनपढ़ विधवा होते हैं और उन्हें नहीं मालूम होता है कि उनके विधिक अधिकार क्या है एवं इसलिए नियोक्ता द्वारा मृतक के विधिक उत्तराधिकारियों को समुचित मार्ग-निर्देश देना चाहिए। इस पवित्र बाध्यता का निष्पादन इतनी तत्परता से किया जाना चाहिए ताकि ऐसा न हो कि दशकों या कई वर्षों तक विधिक उत्तराधिकारियों को उनको विधिवत् देय राशि का भुगतान हो ही न पाये और वर्तमान मामले के तथ्य ये हैं कि दिनांक 19.12.1997 को याची के पिता की मृत्यु के बाद आने वाले दिसम्बर 2009 में 12 वर्ष पूरे हो जाएंगे।

4. इस तरह की परिस्थिति जहाँ सेवानिवृत्ति के लाभों के भुगतान में एक दशक से अधिक का विलम्ब हो, से बचने के लिए सेन्ट्रल कोल फिल्डस लिमिटेड से यह अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसी प्रक्रिया-विकसित करे कि उसके सेवानिवृत्त कर्मचारियों अथवा मृत कर्मचारी के विधिक उत्तराधिकारियों को जितना शीघ्र संभव हो, सेवानिवृत्ति लाभ अथवा मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभ मिल सके। इस न्यायालय द्वारा संप्रेक्षित किया गया है कि सेन्ट्रल कोल फिल्डस लिमिटेड इस न्यायालय में कभी भी आक्षेप नहीं किया है बल्कि इसके विपरीत न्यायालय में उनका रवैया सदैव सकारात्मक है एवं इसलिए भुगतान में विलम्ब का एकमात्र कारण या तो आवेदक की अनभिज्ञता या निरक्षरता अथवा भिन्न प्रकार के आवेदन प्रपत्रों की अनुपलब्धता है और इसलिये सेन्ट्रल कोलफिल्ड को:-

(i) सेवानिवृत्त कर्मचारियों या मृत कर्मचारी के विधिक उत्तराधिकारियों को उन्हें विधिक रूप से भुगतेय देयों के बारे में सूचित करें।

(ii) भिन्न प्रकार के आवेदन प्रपत्रों को, जिन्हें सेवानिवृत्ति लाभ अथवा मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभ पाने के लिए भरा जाना जरूरी है, भेजें क्योंकि ये प्रपत्र खुले बाजार में उपलब्ध नहीं है और कभी-कभार अनुकम्पा के आधार पर नियुक्ति हेतु विधिक उत्तराधिकारियों के आवेदन पत्र इसलिए खारिज कर दिये जाते हैं क्योंकि

उन्होंने नियत समय सीमा के भीतर ऐसे आवेदन दाखिल नहीं किया है। इस प्रकार मृत कर्मचारियों के विधिक उत्तराधिकारी अपनी अनभिज्ञता और खुले बाजार में आवेदन प्रपत्रों की अनुपलब्धता के कारण हमेशा के लिए ऐसे अवसर खो देते हैं।

(iii) यदि आवश्यकता होती है तो सेवानिवृत्त कर्मचारी की बीमारी अथवा मृत कर्मचारी के बच्चों की अवयस्कता अथवा मृत कर्मचारी की विधवा की निरक्षरता को देखते हुए सेन्ट्रल कोल फिल्डस लिमिटेड से अपेक्षा की जाती है कि मानवीय आधारों पर अपने बाध्यतायों के निष्पादन हेतु एक जिम्मेदार अधिकारी को प्रतिनियुक्त करे जो सेवानिवृत्त/मृत कर्मचारी के घर जाकर उन्हें उनके लाभ संबंधी अधिकारों से परिचित कराये और उनको व्यक्तिगत रूप से विभिन्न आवेदन प्रपत्र सौंपे।

अतः, सेवानिवृत्त अथवा मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों के भुगतान के लिए सेन्ट्रल कोल फिल्डस लिमिटेड, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थानुसार एक राज्य है, को हर प्रकार की तत्परता दिखानी चाहिए।

5. सेन्ट्रल कोल फिल्ड्स लि॰ के प्रबंध निदेशक से अपने सभी अधीनस्थ अधिकारियों को एक आवश्यक परिपत्र जारी करने की अपेक्षा की जाती है ताकि उर्ध्व अधिक्रम में प्रत्यर्थी सं॰-1 के प्रबंध निदेशक द्वारा दिये गये निर्देश नीचे तक पहुँचें और पूरी कर्तव्यनिष्ठा से उनका अनुपालन किया जाए।

6. सेन्ट्रल कोलफिल्ड्स लिमिटेड के अधिकारी डॉ॰ सुकुमार देवघरिया, पुत्र शशिभूषण देवघरिया, वरीय कार्मिक अधिकारी, केडला प्रोजेक्ट और श्री संजय कुमार, पुत्र श्री बनारस चौधरी, प्रोजेक्ट अधिकारी, केडला प्रोजेक्ट न्यायालय में उपस्थित हैं और उनके सहयोग से यह मामला निपटाया जा सकता है। न्यायालय इन दोनों अधिकारियों की उपस्थिति की सराहना करता है ओर इन दोनों अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि प्रबंध निदेशक को आवश्यक परिपत्र जारी करने का आदेश जैसा ऊपर कहा गया है, से अवगत करायेंगे।

7. उक्त निर्देशों की दृष्टि में यह रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

माननीय नरेन्द्र नाथ तिवारी, न्यायमूर्ति

अमर नाथ भगत

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) संख्या 1699 वर्ष 2007. 8 जुलाई, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–नियुक्ति–याची को कॉन्स्टेबल के पद पर नियुक्ति के लिए चयनित किया गया–नियुक्ति-पत्र इस आधार पर निर्गत नहीं किया गया कि जब उसकी ऊंचाई की पुनः माप की गई तो उसकी ऊंचाई को उस ऊंचाई से कम पाया गया जो चयन समिति द्वारा मापी गयी थी–अभिनिर्धारित, अन्तिम परिणाम के प्रकाशन के उपरांत, पुनः मापन का कोई अवसर नहीं था–ऊंचाई के पुनः मापन के लिए सिविल सर्जन को एक चिकित्सा बोर्ड गठित करने का निर्देश दिया जाता है और अगर यह पाया जाता है कि चयन बोर्ड द्वारा मापी गई पूर्व की ऊंचाई सही है तो याची के योगदान के संबंध में सही और यथोचित आदेश पारित किया जाए।

(पैरा 7)

अधिवक्तागण.–Mr. S.N. Das, For the Petitioner; J.C. to Sr. S.C.-II, For the Respondents.

आदेश

याची ने बिहार माध्यमिक विद्यालय परीक्षा वर्ष 1994 में उत्तीर्ण करने के उपरांत पुलिस सेवा को चुना एवं इस प्रकार, पुलिस कर्मियों की नियुक्ति के प्रयोजन के लिए प्रकाशित अधिसूचना संख्या

1/04 के जवाब में उसने झारखण्ड पुलिस में कॉन्स्टेबुल (सिपाही) के पद के लिए आवेदन किया। याची को पात्र पाया गया और परीक्षा एवं चयन के लिए उसे बुलाया गया। वह परीक्षा में उपस्थित हुआ और उसके विवरणों और शारीरिक योग्यता इत्यादि की संवीक्षा करके उसे अन्तिम रूप से प्रकाशित चयन सूची में चयनित किया गया, उसका क्रमांक 6564/P था। आरक्षी अधीक्षक, देवघर के कार्यालय से 14.12.2005 को याची को एक बुलावा पत्र निर्गत किया गया। जब याची ने कार्यालय को रिपोर्ट किया तो उसे नियुक्ति के प्रयोजन के लिए पुलिस केन्द्र, देवघर में 20.12.2005 को 10 बजे पूर्वाहन में उपस्थित होने के लिए कहा गया। याची तद्नुसार 20.12.2005 को केन्द्र में उपस्थित हुआ अपने सभी मूल दस्तावेज प्रमाण-पत्र और जाति प्रमाण-पत्र भी पेश किया क्योंकि वह 'बनिया' जाति का है और अन्य पिछड़ा वर्ग कोटि का है। 22.12.2005 को याची की चिकित्सीय परीक्षा की गई और उसे कॉन्स्टेबुल के पद पर नियुक्ति के योग्य पाया गया। नियुक्ति रजिस्टर में उसकी अंगुली के निशान भी लिए गए। तत्पश्चात् याची को योगदान पत्र की प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया, परन्तु लम्बा समय बीत जाने के बाद भी उसे कोई योगदान पत्र प्राप्त नहीं हुआ। तत्पश्चात याची ने सर्जेण्ट पुलिस प्रशिक्षण केन्द्र, देवघर आरक्षी अधीक्षक और आरक्षी उप-महानिरीक्षक, दुमका के समक्ष 3.4.2006 को अभ्यावेदन किया, परन्तु उक्त अभ्यावेदन का कोई जवाब नहीं आया। तत्पश्चात याची ने 11.12.2006 को एक स्मरण-पत्र भेजा, परन्तु इसके बावजूद, सम्बद्ध प्रत्यर्थीगण की ओर से कुछ भी नहीं सुनाया गया। तत्पश्चात याची ने यह रिट याचिका दाखिल की।

2. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अन्तिम चयन और नियुक्ति की भी सारी औपचारिकताओं को पूरा कर लेने के उपरांत योगदान-पत्र को रोके रखना बिल्कुल ही दुर्भावनापूर्ण मनमाना और अन्यायपूर्ण है। यह निवेदन किया गया है कि अन्य उम्मीदवारों, जिनको चयनित किया गया था, को उनका योगदान पत्र प्राप्त हुआ और उन्हें ड्यूटी में योगदान देने की अनुमति दी गई, जबकि याची के विरुद्ध भेदभाव किया गया है। इस प्रकार, याची ने उसके योगदान को स्वीकार करने के लिए प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध एक निर्देश इप्सित किया।

3. याची को योगदान पत्र निर्गत न करने के कारण का स्पष्टीकरण देते हुए प्रत्यथी संख्या 4 की ओर से एक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया है। यह स्वीकार किया गया है कि याची को नियुक्ति के लिए चयन किया गया था, परन्तु योगदान के समय उसकी ऊंचाई की माप 168.5 सेमी॰ मापी गई थी, जबकि पहले उसकी ऊंचाई 170 सेमी॰ मापी गई थी। क्योंकि बाद के मापन पर उसकी ऊंचाई कम पाई गई अत: उसके द्वारा प्राप्त कुल अंक को 14 से घटाकर 13 कर दिया गया। वैसे उम्मीदवारों, जिन्होंने अन्य पिछड़ा वर्ग में 14 अंक प्राप्त किए हैं, को नियुक्त किया गया है और सेवा में योगदान देने की अनुमति दी गई है एवं याची के अंक कम होने के कारण उसे भेदभाव की व्यथा करने का कोई अधिकार नहीं है।

4. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख पर दस्तावेजों का परिशीलन किया है। यह विवादित नहीं है कि याची को सिपाही के पद पर नियुक्ति के लिए अन्तिम रूप से चयनित किया गया था। नियुक्ति के लिए आयोजित परीक्षा में उसे पद के लिए योग्य और उपयुक्त पाया गया था।

5. दस्तावेजों से यह प्रतीत होता है कि चयन सूची के प्रकाशन के उपरांत, उसे नियुक्ति/पदस्थापन के लिए बुलाया गया था और अन्य औपचारिकताओं से होकर गुजरने के लिए कहा गया था। उस तिथि को भी उसे कोई अभ्यापति या कमी या 168.5 सेमी॰ की ऊंचाई जो चयन समिति द्वारा पाई गई ऊंचाई से कम थी, के बारे में सूचित नहीं किया गया था। अभिलेख पर यह दर्शाने के लिए कुछ नहीं है कि याची की ऊंचाई के संबंध में प्रविष्टि को किसी के द्वारा चुनौती दी गई थी या यह कपट द्वारा प्राप्त कर ली गई थी या पद के लिए अन्तिम चयन के उपरांत उसके पुन: मापन का कोई अन्य अवसर आया था। यह दर्शाने के लिए भी अभिलेख पर कुछ नहीं है कि उसके अंकों को 14 से घटाकर 13 करने से पहले उसे कोई अवसर दिया गया था, जो चयन समिति द्वारा दिया गया था।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि पुन:मापन का कोई अवसर नहीं था, अगर याची की ऊंचाई अभी भी मापी जाती है तो उसकी ऊंचाई 170 सेमी॰ पाई जाएगी। यह निवेदन किया गया है कि अन्तिम चयन के साथ हस्तक्षेप मनमाना एवं अवैधानिक है और किसी अन्य को लाभ पहुँचाने और याची को उसकी नियुक्ति और जीविका के स्त्रोत से वंचित करने के लिए ऐसा किया गया है।

7. उपरोक्त पर विचार करके, याची के दावे की जाँच करने और सिविल सर्जन-सह-मुख्य चिकित्सा पदाधिकारी, दुमका के पर्यवेक्षण में कम-से-कम तीन सदस्यों से गठित एक चिकित्सा बोर्ड को याची को निर्दिष्ट करने, ताकि याची की ऊंचाई की माप की जा सके, करने का आरक्षी उप-महानिरीक्षक, दुमका को निर्देश देते हुए इस रिट याचिका का निस्तारण किया जाता है सिविल सर्जन-सह-मुख्य चिकित्सा पदाधिकारी, दुमका इसके निर्दिष्टीकरण पर अपनी अध्यक्षता और दो अन्य चिकित्सा पदाधिकारियों के साथ मिलकर एक बोर्ड का गठन करेगा और याची की ऊंचाई की माप लेकर आरक्षी उप-महानिरीक्षक, दुमका से संदर्भ की प्राप्ति की तिथि से दो सप्ताह की एक अवधि के भीतर रिपोर्ट भी भेजेंगे। अगर याची की ऊंचाई की माप 170 सेमी॰ आती है, जैसा कि चयन बोर्ड द्वारा मापा गया था, तो तत्पश्चात् नियुक्ति प्राधिकार द्वारा दो सप्ताह की एक अवधि के भीतर याची के योगदान के संबंध में यथोचित आदेश पारित किया जाएगा। आरक्षी उप-महानिरीक्षक, दुमका यह देखेंगे कि इस आदेश में दी गई समय सीमा का कठोरता से अनुपालन किया जाए।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

रंजीत सिंह

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू पी॰ (सी॰) सं॰ 1904 वर्ष 2002, 1 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन आवेदन के मामले में।

आयुध अधिनियम, 1959—धारा 21(3)—आयुधों (डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बन्दूक) का समपहरण–अभिनिर्धारित, बन्दूक के समपहरण का आदेश पारित करने से पूर्व उपायुक्त को याची का मृतक, आग्नेयायुध के अनुज्ञप्तिधारी, के किसी अन्य विधिक उत्तराधिकारी को युक्तिसंगत एवं पर्याप्त अवसर देना चाहिए था–समपहरण का आदेश अपास्त एवं विधि के अनुरूप एक नया आदेश पारित करने के लिए मामले को उपायुक्त के पास प्रतिप्रेषित किया गया। (पैरा 12 एवं 13)

निर्णयज विधि.–2001(1) JLJR 297; 1998(3) PLJR 156.

अधिवक्तागण.–Mr. P.A.S. Pati, For the Petitioner; Mr. S. Pandey, For the State.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों को सुना गया।

2. याची ने इस रिट आवेदन में उपायुक्त, राँची द्वारा परिशिष्ट-6 में निहित दिनांक 13.6.2000 को पारित आदेश, जिसके द्वारा आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 21(3) के निबंधनों के अनुसार याची के पितामह की डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बन्दूक के समपहरण का आदेश पारित किया गया है, के अभिखंडन हेतु प्रार्थना की है। याची ने आगे उक्त डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बन्दूक को रखने के लिए अनुज्ञप्ति दिये जाने की प्रार्थना की है।

3. याची का मामला यह है कि उसके पितामह, अर्थात्, स्वर्गीय झूलन सिंह को आग्नेयायुध रखने के लिए एक अनुज्ञप्ति थी और वह वैध आग्नेयायुध अनुज्ञप्ति के अंतर्गत एक डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ के स्वामी थे, उक्त झूलन सिंह, याची के पितामह, की मृत्यु दिनांक 2.5.1994 को हो गयी और वे अपने पीछे दो पुत्रों, अर्थात्, रमेश विजय बहादुर सिंह एवं उमेश विजय बहादुर सिंह, याची के पिता, को छोड़ गए। याची के पिता की मृत्यु अपने पिता की मृत्यु से पहले ही 1980 में हो गयी। दूसरे पुत्र अर्थात् रमेश विजय बहादुर सिंह, जो विकलांग है, ने मेसर्स राँची गन हाऊस मे उक्त डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बन्दूक को जमा करने की अनुमति के लिए आवेदन दिया, जिसे दिनांक 18.5.1994 को स्वीकार कर लिया गया था। उक्त अनुज्ञा के अनुसरण में, रमेश विजय बहादुर सिंह द्वारा मेसर्स राँची गन हाऊस में बंदूक जमा कर दिया गया था। याची का मामला आगे यह है कि मूल अनुज्ञप्तिधारी, अर्थात् झूलन सिंह के एकमात्र जीवित पुत्र रमेश विजय बहादुर सिंह है और चूँकि वह विकलांग है, एवं इस प्रकार याची ने स्व॰ झूलन सिंह का पोता होने के नाते प्रश्नगत उक्त डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बन्दूक को रखे रहने के लिए वर्ष 1996 में अनुज्ञप्ति प्रदान किये जाने के लिए आवेदन दिया था। यह अभिकथन किया गया है कि एक ओर तो उपायुक्त, राँची द्वारा अनुज्ञप्ति प्रदान करने के लिए दिये गये आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया और दूसरी ओर याची को जिला आयुध दण्डाधिकारी के कार्यालय से निर्गत एक नोटिस की तामीला कराई गई थी, जिसमें उसे कारण-पृच्छा के लिए कहा गया था क्यों न आयुध अधिनियम की धारा 21(3) के अधीन प्रश्नगत आयुध को समपहृत कर लिया जाए। याची ने अपना कारण-पृच्छा प्रस्तुत कर दिया।

याची की व्यथा यह है कि बिना उसके कारण-पृच्छा पर विचार किये उसके आग्नेयायुध, अर्थात् याची के पितामह की डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बंदूक को समपहृत करने का परिशिष्ट 6 में निहित आक्षेपित आदेश को दिनांक 13.6.2000 को पारित कर दिया गया है।

4. याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री पी॰ ए॰ एस॰ पाटी ने निवेदन किया है कि आग्नेयायुध को समपहृत करने का आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले उपायुक्त को अनुज्ञप्ति प्रदान करने के लिऐ दिये गये आवेदन पर विचार करना चाहिए था और केवल यदि अनुज्ञप्ति की मंजुरी प्रदान करने के लिए दिये गये उसके आवेदन को अस्वीकार कर दिया जाता है तब केवल परिशिष्ट-6 में निहित आदेश को दिनांक 13.6.2000 को पारित किया जा सकता था। अपने निवेदन के समर्थन में उन्होंने इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा **''ए॰ हाशिम बनाम बिहार राज्य,** 2001(1) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 279 में प्रकाशित मामले में दिये गये निर्णय पर भरोसा प्रकट किया है।

5. दूसरी ओर जी॰ पी॰-II के विद्वान कनीय अधिवक्ता, श्री सौरभ पांडे ने प्रति शपथ-पत्र में किये गये कथनों को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया है कि उपायुक्त, राँची के कार्यालय में अनुज्ञप्ति प्रदान किये जाने का आवेदन नहीं दिया गया है एवं, इसलिए, याची के आवेदन पर कोई आदेश पारित करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। प्रति शपथ-पत्र में आगे यह निवेदन किया गया है कि वर्तमान याची ने सात वर्षों के पश्चात् अनुमंडल अधिकारी, सदर, राँची के समक्ष दिनांक 10.2.2002 को अपने नाम पर अनुज्ञप्ति प्रदान किये जाने के लिए आवेदन दिया था और वर्तमान याची ने विक्रय अथवा किसी अनुज्ञप्तिधारी के पक्ष में हस्तांतरण द्वारा उक्त डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बन्दूक के निस्तारण हेतु कोई कदम नहीं उठाया और सात वर्ष से ज्यादा बीत जाने के बाद उसने अनुज्ञप्ति प्रदान किये जाने के लिए आवेदन दाखिल किया जो आयुध अधिनियम और उसके अधीन विरचित नियमावलीयों के विरुद्ध है।

याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रोद्धृत निर्णयज विधि से यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने मामले जो कम या अधिक वर्तमान मामले की तरह है, पर विचार करते हुए निम्नवत् अभिनिर्धारित किया कि:-

> *"8. धारा 21 के उप-धारा 2 के पठन से यह प्रकट है कि आयुध धारक की मृत्यु के कारण आयुध जमा करने की स्थिति में अधिनियम के प्रावधानों के मुताबिक उसका विधिक प्रतिनिधि आयुध को अपने कब्जे में लेने का हकदार है। दूसरे शब्दों में, मृतक*

के विधिक प्रतिनिधि द्वारा आयुध जमा करने के पश्चात् यदि विधिक प्रतिनिधि द्वारा अनुज्ञप्ति प्रदान करने अथवा उनके पक्ष में हस्तांतरण करने हेतु आवेदन दिया जाता है, तब अधिनियम के उप-धारा (3) के अधीन समपहरण करने का आदेश पारित करने से पहले सक्षम अधिकारी द्वारा अनुज्ञप्ति प्रदान करने अथवा हस्तांतरण के लिए विधिक प्रतिनिधि द्वारा दाखिल आवेदन पर आदेश पारित करने को बाध्य है। सक्षम अधिकारी द्वारा प्रतिनिधि के पक्ष में अनुज्ञप्ति प्रदान करने के आवेदन को अस्वीकृत करने के पश्चात ही विधिक प्रतिनिधि को अधिनियम की धारा 21 की उप-धारा (2) की अपेक्षाओं का अनुपालन करने हेतु उपयुक्त समय देने के बाद अधिनियम की उप-धारा (3) के अनुसार आयुध समपहरण करने के लिए आवश्यक कदम उठाया जा सकता है।

9. यह सुस्थापित है कि जब अधिनियम की धारा 21 की उप-धारा (1) के अधीन आयुध जमा रहता है, तब वह व्यक्ति जिसने इसे जमा किया है, इसका वैध स्वामी बना रहता है और वह किसी अनुज्ञप्तिधारक को आयुध में साम्पतिक अधिकार कानूनन हस्तांतरित कर सकता है। विहित अवधि के बाद भी जमा रखे गए आयुध को स्वतः ही सरकार द्वारा समपहरण नहीं किया जाएगा। इसलिए सक्षम अधिकारी द्वारा पहले अनुज्ञप्ति प्रदान करने अथवा आयुध के व्यपहरण करने संबंधित मृतक अनुज्ञप्तिधारक के विधिक प्रतिनिधि की प्रार्थना पर विचार करना आवश्यक है और तब अधिनियम की धारा 21 की उप-धारा (3) के अधीन आयुध समपहरण करने पर अंतिम निर्णय लिया जा सकता है।

7. पुर्वोलिखित प्रौद्धृत मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 21 की उप-धारा 2 के पठन से, यह प्रकट है कि यदि आयुध धारक की मृत्यु हो जाने पर आयुध जमा कर दिया जाता है तब अधिनियम के प्रावधानों के मुताबिक उसका विधिक प्रतिनिधि आयुध को अपने कब्जे में लेने का हकदार है। दूसरे शब्दों में, मृतक के विधिक प्रतिनिधि द्वारा आयुध जमा करने के पश्चात्, यदि विधिक प्रतिनिधि द्वारा आयुध को पुनः अपने कब्जे में लेने के लिए अनुज्ञप्ति प्रदान करने अथवा उनके पक्ष में हस्तांतरण करने हेतु आवेदन दिया जाता है, तब अधिनियम की उपधारा (3) के अधीन समपहरण का आदेश पारित करने से पहले सक्षम अधिकारी विधिक प्रतिनिधि द्वारा अनुज्ञप्ति प्रदान अथवा हस्तांतरण करने हेतु दिये गये आवेदन पर आदेश पारित करने के लिए बाध्य है। सक्षम अधिकारी द्वारा प्रतिनिधि के पक्ष में अनुज्ञप्ति प्रदान करने के लिए दिये गये आवेदन को अस्वीकृत किये जाने के बाद भी विधिक प्रतिनिधि को अधिनियम की धारा 21 के उप-धारा (2) की अपेक्षाओं का अनुपालन करने के लिये पर्याप्त समय देने के बाद अधिनियम की धारा 21 के उप-धारा (3) के अनुसार आयुध समपहरण करने हेतु आवश्यक कदम उठाया जा सकता है।

8. याची के अनुसार, डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बंदूक जमा करने के बाद वर्ष 1996 में आग्नेयायुध की अनुज्ञप्ति प्रदान करने के लिए आवेदन दिया गया था लेकिन दूसरे पक्ष द्वारा इस तथ्य पर विवाद किया गया है और कथन किया गया है कि याची ने दिनांक 10.2.2002 को अर्थात् आयुध समपहरण करने के आक्षेपित आदेश पारित होने के काफी समय बाद आवेदन दिया था।

9. जैसा कि प्रकट होता है याची के चाचा को दिनांक 19.1.2000 को कारण बताओं नोटिस दिया गया था और उसे दिनांक 6.3.2000 तक कारण बताने को कहा गया था और तत्पश्चात्, दिनांक 13.6.2000 को आक्षेपित आदेश पारित किया गया था।

10. मेरी दृष्टि में, आयुध को समपहरण करने का आखिरी कदम उठाने से पहले मृतक अनुज्ञप्तिधारक के विधिक उत्तराधिकारियों को उक्त डी॰ बी॰ बी॰ एल॰ बंदूक को निस्तारित करने अथवा आग्नेयायुध को वापस लेने हेतु कदम उठाने का विकल्प देते हुए, उपायुक्त को उन्हें पर्याप्त समय देना चाहिए था।

11. पटना उच्च न्यायालय ने ''**मुन्नी सिंह बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** 1998 (3) पी॰ ए॰ जे॰ आर॰ 156 में प्रकाशित मामले के पैरा 13 में निम्नवत् अभिनिर्धारित किया है:–

13. अधिनियम की धारा 21 सह–पठित नियमावली के नियम 46 के प्रावधानों की संरचना अनुज्ञप्तिधारक के विधिक प्रतिनिधि को आग्नेयायुध वापस पाने अथवा व्ययन के अधिकारों और अग्न्यायुध वापस पाने के लिए आवेदन देने में अभूतपूर्व विलम्ब की स्थिति में उसको सरकार को समपहरण करने के राज्य के अधिकारों के बीच संतुलन बनाने के लिए की गयी है। ये ध्यान में रखना चाहिए कि जमा किये गये आग्नेयायुध अत्यधिक कम कीमत पर बेच दिये जाते हैं। कीमत, जिस पर इसे वस्तुतः बेचा जाता है, का बाजार मूल्य से कोई संबंध नहीं है। संपत्ति का एक बहुमूल्य सामग्री होने के नाते, जो बहुत अधिक कीमत पर खुले बाजार में बेचे जाने योग्य है, समपहरण संबंधित प्रावधानों की व्याख्या उदारतापूर्वक मृतक के उत्तराधिकारियों एवं विधिक प्रतिनिधियों के पक्ष में की जानी चाहिए न कि राज्य के पक्ष में। ऐसे यर्थाथ मामलें हो सकते हैं जहाँ संबद्ध व्यक्ति, इसके स्वामित्व में अथवा इसका स्वामित्व वापस पाने में विहित अवधि के भीतर आग्नेयायुध के विक्रय हेतु कदम उठाने में समर्थ नहीं है। लेकिन उसकी ओर से हुए गफलत के कारण उसे कीमती संपत्ति से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। एक व्यक्ति को आग्नेयायुध के स्वामित्व का मौलिक अधिकार नहीं है, फिर भी, संपत्ति की एक सामग्री के तौर पर उसे सक्षम अधिकारी की स्वीकृति से किसी उपयुक्त व्यक्ति को खुले बाजार में इसका बेचने और इसके लिये उचित मूल्य पाने का अधिकार है। अतः यद्यपि जिला दण्डाधिकारी को नियम 46 में विहित अवधि बीत जाने पर आग्नेयायुध को समपहरण करने की शक्ति है, स्वविवेक के आधार पर आवेदक/दावेदार को आग्नेयायुध वापस पाने अथवा विधि के अनुसार इसे बेचने का अवसर दिया जाना चाहिए।

12. पटना उच्च न्यायालय द्वारा **मुन्नी सिंह बनाम बिहार राज्य (ऊपर)** के मामलें में दिये गये निर्णय में विश्वास प्रकट करते हुए, मैं अवधारित करता हूँ कि आयुध को समपहृत करने का आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले उपायुक्त, राँची को याची अथवा आग्नेयायुध के मृत अनुज्ञप्तिधारक के विधिक उत्तराधिकारियों को पर्याप्त और युक्तियुक्त अवसर देना चाहिए था।

13. उक्त विचार विमर्श और निष्कर्षों की दृष्टि में, परिशिष्ट-6 में निहित दिनांक 13.6.2000 के उपायुक्त, राँची द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है। तद्नुसार, इसे एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है और मामला विधि के अनुसार और उक्त संप्रेक्षणों के प्रकाश में नया आदेश पारित करने के लिए उपायुक्त, राँची के पास वापस भेजा जाता है।

14. तद्नुसार इस रिट याचिका को अनुज्ञात किया जाता है।

मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के आलोक में व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

राकेश कुमार अवस्थी एवं एक अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

अवमान केस (सिविल) सं॰ 184 वर्ष 2008. 2 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971—अवमान केस (सिविल) सं॰ 135 वर्ष 2007 में कतिपय निर्देश दिए गए थे, यद्यपि, सम्यक अनुपालन किया गया है परन्तु फिर भी अपेक्षाकृत अधिक समय व्यतीत हुआ था–अभिनिर्धारत, जब कभी भी उच्च न्यायालय नियत समय के भीतर अनुपालन किए जाने का निर्देश राज्य या किसी पक्षकार को देता है तो राज्य के सम्बन्धित अधिकारी या पक्षकार का जिसे न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया है यह कर्त्तव्य होगा कि वह आदेश/निर्णय में प्रगणित 4 बातों का पालन करें–अवमान कार्यवाहियों से बचने एवं निर्देशों का अनुपालन करने के लिए मुख्य सचिव को अपने अधीनस्थ अधिकारियों के बीच आदेश/निर्णय परिचालित करने का निर्देश दिया गया था। (पैरा 3 से 6)

अधिवक्तागण.–M/s S.N. Pathak, S.S. Choudhary, For the Petitioners; M/s P.K. Prasad, M.S. Akhtar, For the Opposite Parties.

आदेश

दिनांक 1 सितम्बर, 2009 के आदेश का अनुसरण करते हुए आरक्षी अधीक्षक साहिबगंज ने उप-कमिश्नर, साहिबगंज को न्यायालय के समक्ष पेश किया है।

2. मैंने विपक्षी पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान महाधिवक्ता को सुना है जिन्होंने विपक्षी पक्षकारों द्वारा दाखिल शपथ पत्र को विस्तारपूर्वक इस न्यायालय के समक्ष रखा है और निवेदन किया है कि इस न्यायालय द्वारा अवमान केस (सिविल) सं॰ 135 वर्ष 2007 में दिनांक 4.11.2007 को पारित और 6.12.2007 को उच्चारित आदेश का सम्यक रूप से पालन किया गया है और जैसा प्रतिशपथपत्र में कथन किया गया है, चतुर्थवर्गीय कर्मचारियों के 31 पदों को भरने की कार्यवाही शुरु की जा चुकी है। वर्तमान याचियों को रोजगार नहीं देने के कारणों का उल्लेख आज दाखिल अग्रेतर प्रतिशपथपत्र में किया गया है जिसका उल्लेख विरोधी पक्षकारों द्वारा दाखिल पूर्वतर शपथपत्र में भी किया गया था और इसलिए राज्य के विद्वान महाधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि यदि याचीगण व्यथित है, तब याचीगण विधि के अनुसार राज्य की कार्रवाई को चुनौती देने के लिऐ स्वतंत्र है लेकिन, जहाँ तक अवमान का संबंध है, विरोधी पक्षकारों द्वारा जानबूझकर अवज्ञा करने की बात तो दूर इसे न्यायालय द्वारा पारित आदेश का उल्लंघन तक नहीं कहा जा सकता है।

3. मैंने याचियों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने निवेदन किया है कि न्यायनुमत कारणों के बिना विरोधी पक्षकारों ने याचियों को रोजगार देने से इन्कार कर दिया है जैसाकि प्रतिशपथ पत्र में कहा गया है। फिर भी, विरोधी पक्षकारों की कार्रवाई को विधि के अनुसार उचित फोरम में चुनौती देने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए।

4. इन निवेदनों की दृष्टि में और विरोधी पक्षकारों द्वारा आज दाखिल किये गये प्रतिशपथ पत्र को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश का सम्यक रूप से अनुपालन हुआ है जो अवमान आवेदन के मेमों का परिशिष्ट-1 है। इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की जानबूझ कर अवज्ञा नहीं हुई है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया है, चतुर्थ वर्गीय पदों पर नियुक्ति की प्रक्रिया पूर्ण हो गयी है। निश्चय ही इस न्यायालय द्वारा दिये गये समय से ज्यादा समय लिया गया हैं फिर भी, आक्षेपित आदेश की जानबूझ कर अवज्ञा नहीं हुई है ओर इस तरह इस अवमान आवेदन में कोई सार नहीं हैं एतद्द्वारा इसे खारिज किया जाता है और इस प्रकार, इस न्यायालय द्वारा जारी गिरफ्तारी के वारंट का उन्मोचन किया जाता है।

5. जब कभी भी यह न्यायालय राज्य अथवा किसी पक्ष को निर्धारित अवधि के अंदर अनुपालन करने का निर्देश दे रही हो तब राज्य के संबंधित अधिकारी अथवा पक्ष जिसे न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया हो, का कर्त्तव्य है कि वह सारे एहतियात बरतें कि:–

(i) न्यायालय द्वारा दी गयी समय सीमा के अंदर आदेश का अनुपालन किया जाये; अथवा

(ii) अगर राज्य अथवा उस पक्ष जिसे न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया है, के विचार में न्यायालय द्वारा प्रदत्त समय पर्याप्त नहीं है तब संबंधित न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दाखिल करके न्यायालय द्वारा दिये गये निर्देश के अनुपालन हेतु समय बढ़ाने का आदेश प्राप्त किया जाये; अथवा

(iii) अगर राज्य अथवा उस पक्ष, जिसे न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया है, के विचार में न्यायालय के आदेश का अनुपालन नहीं किया जा सकता है, तब निर्देश देने वाले आदेश के विरुद्ध उच्चतर फोरम से स्थगन आदेश प्राप्त किया जाये; अथवा

(iv) अगर राज्य अथवा वह पक्ष, जिसे न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया है, पहला, दूसरा और तीसरा कदम उठाने में चूक गये हो, तब कम से कम अवमान के मामले में एक पृथक परिवचन के साथ शपथपत्र दाखिल करना चाहिए कि <u>कम से कम कितने समय</u> के अंदर आदेश का अनुपालन किया जा सकता है।

उप-कमिश्नर, साहिबगंज द्वारा पूर्वोक्त प्रक्रियाओं में से किसी का भी अनुसरण नहीं किया गया है और अब से, उप-कमिश्नर, साहिबगंज से यह अपेक्षा की जाती है कि पूर्वोक्त प्रक्रियाओं का अनुसरण किया जायेगा। जब राज्य के महाधिवक्ता स्वयं उपस्थित हो रहे हैं, तब अवमान मामले में उक्त चारों कदमों को उठाया जायेगा ताकि अधिकारियों द्वारा गिरफ्तारी के ऐसे वारंट से बचा जा सके और बिना समय नष्ट किये आदेश का अनुपालन किया जा सके।

6. मैं एतद् द्वारा इस राज्य के मुख्य सचिव को एक परिपत्र/आदेश जारी कर अपने सारे अधीनस्थों को सूचित करने का निर्देश देता हूँ कि वे सभी मामलों में, जिसमे किसी भी सक्षम न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया है, जिसे नियत समय के अंदर अनुपालन किये जाने की अपेक्षा की जाती है, उक्त चार कदमों वाली प्रक्रिया का अनुसरण करें। यह परिपत्र/आदेश मुख्य सचिव के अधस्तन अधिक्रम में स्थित सारे अधिकारियों एवं अधीनस्थों को जारी किया जाना चाहिए ताकि आदेश का अनुपालन किया जा सके। और राज्य के पदाधिकारी अवमान की कार्यवाही से बच सके।

7. इस न्यायालय की रजिस्ट्री को इस आदेश की एक प्रति की आपूर्त्ति राज्य के मुख्य सचिव को करने का निर्देश दिया जाता है।

8. चूँकि मामला निपटाया जा चुका है। इसलिए इस न्यायालय द्वारा जारी गिरफ्तारी का वारंट उन्मोचित किया जाता है।

माननीय एम॰ वाई॰ इकबाल एवं जया रॉय, न्यायमूर्तिगण

श्रीमती कर्मी देवी

बनाम

सतेन्द्र कुमार सिंह एवं एक अन्य

एम॰ ए॰ सं॰ 381 वर्ष 2007. 14 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश IX, नियम 1 से 13 एवं आदेश XLIII—मोटर दुर्घटना दावा केस याचिका व्यतिक्रम के चलते खारिज किया गया—प्रतिकर का दावा करते हुए नया आवेदन दाखिल किया गया—पूर्व न्याय के मुकाबले ऐसे आवेदन की पोषणीयता—अभिनिर्धारित, विधायिका ने सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश IX के नियम 2 या नियम 3 के अंतर्गत वाद के खारिज किए

जाने की दशा में एक ही वाद हेतुक पर नवीन वाद दाखिल किए जाने से वादी को अभिव्यक्त शब्दों में प्रवारित नहीं किया है, जबकि आदेश IX का नियम 9 वादी को आदेश IX के नियम 8 के अंतर्गत वाद के खारिज किए जाने की दशा में वादी को नवीन वाद दाखिल करने से विवर्जित करता है–व्यतिक्रम हेतु किसी वाद या आवेदन की खारिजी, विशेषकर सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश IX के नियम 2 या 3 के अन्तर्गत, किसी वाद में उपवर्णित प्रतिरक्षा या दावा किए गए किसी अधिकार पर न्यायनिर्णयन की औपचारिक अभिव्यक्ति नहीं है–व्यतिक्रम में किसी वाद या आवेदन के खारिजी का कोई आदेश भी अपीलीय आदेश नहीं है जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLIII के अंतर्गत प्रावधान किया गया है–आदेश XLIII का पठन यह प्रकट करता है कि सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश IX, नियम 9 या सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश IX, नियम 13 के अन्तर्गत पारित आदेश अपीलीय बनाये गये हैं परन्तु सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश आदेश IX, नियम 4 के अन्तर्गत पारित आदेश अपीलीय नहीं है–इसलिए, यह स्पष्ट है कि सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश IX के नियम 2 या 3 के अधीन व्यतिक्रम में किसी वाद या आवेदन की खारिजी का कोई आदेश न तो कोई न्यायनिर्णयन या डिक्री है और न ही यह कोई अपीलीय आदेश है–सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश IX के नियम 2 एवं नियम 3 के अन्तर्गत किसी वाद के खारिज किए जाने का ऐसा आदेश 'निर्णय' या 'डिक्री' पद की अपेक्षा को पूरा नहीं करता है क्योंकि कोई न्यायनिर्णयन नहीं हुआ है–इसलिए, यदि कोई नवीन वाद दाखिल किया जाता है तो बर्खास्तगी का ऐसा एक आदेश पूर्व न्याय के तौर पर प्रवृत्त नहीं हो सकता एवं नहीं होगा।

(पैरा 10, 11 एवं 20)

निर्णयज विधि.–AIR 1929 Allahabad 131 : AIR 1937 Patna 9.

अधिवक्तागण.–M/s Rajiv Anand, Arvind Kr. Tiwary, For the Appellant; Mr. H.K. Singh, For the Respondents.

आदेश

मोटर वाहन दुर्घटना दावा अधिकरण, रांची द्वारा प्रतिकर केस सं॰ 95/2005 में पारित दिनांक 17.8.2007 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध यह अपील निर्दिष्ट हैं, जिसके द्वारा उन्होंने दावा मामले को असमर्थनीय और पूर्व-न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित बताते हुए खारिज कर दिया है।

2. मामले के तथ्य एक संकीर्ण परिधि में है।

एक मोटर वाहन दुर्घटना में मृतक की मृत्यु के कारण प्रतिकर प्रदान करने के लिए दावेदार अपीलार्थी ने पूर्व में एक प्रतिकर मामला प्रतिकर केस सं॰ 205/96 दाखिल किया था। उक्त दावा मामले को व्यतिक्रम में खारिज कर दिया गया था और तत्पश्चात् दावेदार ने प्रतिकर केस सं॰ 205/96 की पुनर्स्थापना के लिए एक आवेदन दाखिल किया था, जिसे विविध केस सं॰ 2/2002 के तौर पर दर्ज किया गया था। उक्त प्रत्यावर्तन आवेदन में दावेदार को कतिपय त्रुटियों को दूर करने की आवश्यकता थी परन्तु गैर-अनुपालन के कारण, प्रत्यावर्तन आवेदन को भी व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिया गया था। तत्पश्चात्, दावेदार-अपीलार्थी ने प्रतिकर का दावा करते हुए एक नया आवेदन दाखिल किया, जिसे प्रतिकर केस सं॰ 95/2005 के तौर पर दर्ज किया गया। प्रतिकर केस सं॰ 95/2005 की समर्थनीयता के संबंध में प्रारम्भिक अभ्यापति उठाते हुए उक्त दावा आवेदन का प्रत्यर्थीगण द्वारा विरोध किया गया।

3. दावा अधिकरण ने पक्षों की सुनवाई करने के उपरांत, प्रारम्भिक आपत्ति को अनुज्ञात कर दिया और अभिनिर्धारित किया कि पश्चातवर्ती प्रतिकर मामला समर्थनीय नहीं है। और पूर्व-न्याय से वर्जित हैं। यद्यपि अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ दावा मामला के संबंध में प्रयोज्य होगा परन्तु न्यायालय शुल्क स्टैम्प नहीं भरने के कारण प्रतिकर केस सं॰ 205/96 को खारिज कर दिया। अधिकरण ने यह भी नोटिस किया कि प्रत्यावर्तन आवेदन आदेश 9 नियम 4 सि॰ प्र॰ सं॰ के अधीन दाखिल किया था, जिसे व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिया गया था। तथापि, अधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि पूर्वोक्त आधारों पर एक दूसरा दावा मामला दाखिल नहीं किया जा सकता और यह पूर्व-न्याय के सिद्धांत से बाधित होता है।

4. हमने अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री राजीव आनन्द और बीमा कम्पनी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री एच॰ के॰ सिंह को सुना है।

5. मामले के तथ्यों की पृष्ठभूमि में, जो महत्वपूर्ण प्रश्न विचारण के लिए आते हैं वे है:–

(I) क्या आदेश 9, नियम 4 सि० प्र० सं० के अधीन वाद के प्रत्यार्वतन के लिए याचिका के खारिज होने के उपरांत एक नया वाद समर्थनीय है?

(II) क्या व्यतिक्रम के कारण वाद के खारिज होने के उपरांत एक नया वाद पूर्व–न्याय द्वारा वर्जित है?

6. प्रश्न सं॰ (I) का उत्तर देने से पहले, मैं सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 के अधीन प्रावधान की गई प्रक्रिया की परिचर्चा करना चाहूँगा।

7. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 9 पक्षों की उपस्थिति और अनुपस्थिति के परिणामों से संबंधित है। नियम 1 प्रावधान करता है कि प्रतिवादी की उपस्थिति के लिए सम्मन में तय की गई तिथि को पक्षों को व्यक्तिगत रूप से या अपने–अपने प्लीडरों के माध्यम से उपस्थित होना होगा और वाद की सुनवाई की जाएगी। नियम 2 न्यायालय को वाद खारिज करने की शक्ति प्रदान करता है अगर यह पाया जाता है कि इस प्रकार निर्धारित तिथि को न्यायालय शुल्क या डाक–व्यय का भुगतान करने से वादी की विफलता के परिणामत: सम्मन का प्रतिवादी पर तामीला नहीं कराया जा सका। नियम 3 भी न्यायालय को वाद को खारिज करने की शक्ति प्रदान करता है जब इस प्रकार तय तिथि को मामले की सुनवाई के लिए पुकारे जाने पर कोई भी पक्ष उपस्थित नहीं होता है। पूर्वोक्त दोनों परिस्थितियों में, जब वाद को खारिज किया जाता है या तो वादी द्वारा न्यायालय शुल्क डाक व्यय का भुगतान नहीं करने से या दोनो पक्षों के उपस्थित नहीं होने से जब वाद को सुनवाई के लिए पुकारा जाता है, आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 4 के अधीन उपचार का प्रावधान किया गया है।

8. वाद को खारिज करने की शक्ति का प्रावधान सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश 9 के नियम 8 में भी किया गया है। आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 8 के अनुसार, न्यायालय वाद को खारिज कर देगा जब सुनवाई के लिए तय तिथि को वाद को पुकारा जाता है, प्रतिवादी उपस्थिति होता है, परन्तु वादी उपस्थित नहीं होता, जबतक कि प्रतिवादी दावे को स्वीकार न कर ले। अगर वाद नियम 8, आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के अधीन खारिज किया जाता है तो इस प्रकार खारिज होने के उपरांत आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 9 के अधीन उपचार का प्रावधान किया गया है।

9. बेहतर मूल्यांकन के लिए आदेश IX सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 4 एवं 9 को इसमें नीचे उत्कथित किया गया है:–

*4. **वादी नया वाद ला सकता है या न्यायालय दाखिल करने के लिए वाद का प्रत्यावर्तन कर सकता है.**–जहाँ नियम 2 या नियम 3 के अधीन एक वाद खारिज किया जाता है, वादी (परिसीमा की विधि के अधीन रहते) एक नया वाद ला सकता है, या खारिजी अपास्त करने के लिए वह एक आदेश के लिए आवेदन कर सकता है, और अगर वह न्यायालय को समाधान कराता है कि ऐसी विफलता का पर्याप्त कारण था जैसा कि नियम 2 में निर्दिष्ट है या उसकी अनुपस्थिति के लिए पर्याप्त कारण था, जो भी स्थिति हो, न्यायालय खारिज करने के आदेश को अपास्त करते हुए एक आदेश करेगा और वाद में आगे कार्यवाही करने के लिए एक तिथि तय करेगा।*

*9. **व्यतिक्रम द्वारा वादी के विरुद्ध डिक्री नए वाद को वर्जित करती है.**–(1) जहाँ एक वाद को नियम 8 के अधीन आंशिक या पूर्ण रूप से खारिज किया जाता है, वादी कार्रवाई के इसी कारण के संबंध में एक नया वाद लाने से वंचित हो जाएगा। परन्तु वह खारिजी को अपास्त करने हेतु एक आदेश के लिए आवेदन कर सकता है, और अगर वह न्यायालय को समाधान कराता है कि उसकी अनुपस्थिति के लिए पर्याप्त कारण था जब वाद को सुनवाई के लिए पुकारा तो गया था, न्यायालय खारिजी को अपास्त करने वाला एक आदेश करेगा ऐसे निबंधनों पर जो व्ययों या अन्यथा को लेकर हो जो यह उपयुक्त समझे और वाद में आगे कार्यवाही करने के लिए एक तिथि तय करेगा।*

(2) इस नियम के अधीन कोई आदेश नहीं किया जाएगा जबतक कि प्रतिपक्ष पर आवेदन को नोटिस का तामीला न कर दिया जाए।

10. दोनों प्रावधानों, अर्थात् आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 4 और नियम 9 के बीच बुनियादी अन्तर यह है कि जहाँ आदेश 9 के नियम 2 या नियम 3 के अधीन वाद खारिज किया जाता है, तो उपचार का प्रावधान आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 4 के अधीन किया गया है। ऐसी खारिजी की स्थिति में, वादी या तो कार्रवाई के इसी कारण पर एक नया वाद लाता है या खारिजी के आदेश को अपास्त करने के लिए और वाद के प्रत्यावर्तन के लिए वह आवेदन कर सकता है। जबकि अगर आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 8 के अधीन वाद खारिज किया जाता है, तो वादी कार्रवाई के इसी कारण पर एक नया वाद नहीं ला सकता है। वादी को जो एकमात्र उपचार उपलब्ध है वह खारिजी के आदेश को अपास्त करने और वाद के प्रत्यावर्तन के लिए एक आवेदन करने का है।

11. पूर्वोक्त दोनों प्रावधानों, यानि आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 4 और नियम 9 के कोरे पठन से यह प्रकटत: स्पष्ट है कि आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 4 के अधीन विधायिका ने आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 2 या नियम 3 के अधीन वाद के खारिज हो जाने की स्थिति में वादी को कार्रवाई के उसी कारण पर एक नया वाद दाखिल करने से प्रवारित नहीं किया है, जबकि आदेश 9 का नियम 9 वादी को एक नया वाद दाखिल करने से वर्जित करता है उस स्थिति में जब आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 8 के अधीन वाद खारिज कर दिया जाता है। ऐसी खारिजी के लिए जो एकमात्र उपचार का प्रावधान किया गया है वह वाद के प्रत्यावर्तन के लिए आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 9 के अधीन एक आवेदन दाखिल करने का है।

12. गोविंद प्रसाद बनाम हरकिशन (ए॰ आई॰ आर॰ 1929 इलाहाबाद 131) के मामले में, द्वितीय वाद की समर्थनीयता को लेकर इसी प्रकार का प्रश्न विचार के लिए उठा था। उस मामले में वाद को सुनवाई के लिए पुकारे जाने के समय किसी भी पक्ष के उपस्थित न होने के परिणाम के तौर पर आदेश 9, नियम 3 सि॰ प्र॰ सं॰ के अधीन वादी द्वारा दाखिल वाद को खारिज कर दिया गया था। वादी–अपीलार्थी ने वाद का प्रत्यावर्तन इप्सित किया परन्तु प्रत्यावर्तन आवेदन को खारिज कर दिया गया। तब वादी ने कार्रवाई के इसी कारण पर एक नया वाद लाया। विद्वान न्यायाधीश ने वाद को खारिज कर दिया यह अभिनिर्धारित करते हुए कि यह समर्थनीय नहीं है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष दाखिल सिविल पुनरीक्षण में न्यायाधीश न्यायमूर्ति WEIR ने पूर्व के नियमों (39 आई॰ सी॰ 191 एवं 63 आई॰ सी॰ 239) का अनुसरण करते हुए वाद की खारिजी के आदेश को अपास्त कर दिया और अभिनिर्धारित किया कि कार्रवाई के इसी कारण पर एक नया वाद समर्थनीय है।

13. मोस्मात बलकेसिया बनाम महंत भगवान गिर, (ए॰ आई॰ आर॰ 1937 पटना 9) के मामले में, इसी प्रकार का प्रश्न विचारण के लिए पटना उच्च न्यायालय की एक खण्ड पीठ के समक्ष आया। उस मामले में भी इसी प्रकार का मत धारण करते हुए न्यायमूर्ति जेम्स ने सम्परीक्षित किया:–

''दूसरी ओर, श्री खुर्शीद हसनैन तर्क देते हैं कि वर्तमान रिट को आदेश 9, नियम 4 के प्रावधानों के कारण वर्जित माना जाना चाहिए। नियम 4 प्रावधान करता है कि जहाँ एक वाद नियम 2, या नियम 3 के अधीन खारिज किया जाता है, तो वादी एक नया वाद ला सकता है, या खारिजी को अपास्त करने के लिए वह एक आदेश के लिए आवेदन कर सकता है। श्री खुर्शीद हसनैन तर्क देते हैं कि ये दोनों प्रावधान पारस्परिक रूप से अनन्य है, ताकि अगर वादी खारिजी के आदेश को अपास्त करने के लिए आवेदन करने के अपने अधिकार का इस्तेमाल करने का विकल्प चुनता है, तो वह तद्द्वारा एक नया वाद दाखिल करने के अपने अधिकार से निर्बंधित हो जाता है इस बिन्दु पर जो भी निर्णय श्री खुर्शीद हसनैन द्वारा हमारे ध्यान में लाए गए हैं, वे इस तर्क के प्रतिकूल हैं, न्यायमूर्ति स्टुअर्ट का 63 आई० सी० 239, ए० आई० आर० 1926, न्यायमूर्ति डेनियल्स का All 678 और 50) न्यायमूर्ति बेयर का All 837,

ये सभी इलाहाबाद उच्च न्यायालय के हैं। इन सभी मामलों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि नियम 4 के वैकल्पिक प्रावधान पारस्परिक रूप से अनन्य नहीं है और एक वादी, जिसके वाद के प्रत्यावर्तन के लिए आवेदन को खारिज कर दिया गया है, एक नया वाद संस्थित करने से निर्बंधित नहीं होता है। मैं नहीं समझता कि कोई ऐसा आधार रखा गया है, जो उन विद्वान न्यायाधीशों द्वारा अभिव्यक्त मत से हमारे असहमत होने को न्यायसंगत ठहराए जिनका मैंने नाम लिया है। हमे यह प्रतीत होता है कि नियम का एक युक्तिसंगत पठन प्रावधान करता है कि वादी एक नया वाद ला सकता है या वह खारिजी को अपास्त करने के लिए आवेदन कर सकता है। अगर वह न्यायालय को समाधान करा देता है और खारिजी को अपास्त करने वाला आदेश प्राप्त कर लेता है तो वह अपने मूल वाद के साथ आगे की कार्यवाही करता है। अगर खारिजी के आदेश को अपास्त करने के एक आदेश के लिए आवेदन करके वह न्यायालय को समाधान कराने में विफल रहता है और उसका आवेदन खारिज कर दिया जाता है, तो उसके पास उसका वैकल्पिक उपचार रह जाता है जो यह है कि परिसीमा की विधि के अध्यधीन रहते हुए वह एक नया वाद ला सकता है।''

14. इस मत के साथ सहमत होते हुए न्यायमूर्ति रॉलैण्ड ने सम्परीक्षित किया है:–

''रॉलैण्ड न्यायमूर्ति.–मैं सहमत हूँ। इस तर्क के संदर्भ में कि आदेश 9, नियम 3, सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन एक वाद की खारिजी, पुनः सुनवाई के लिए एक आवेदन की खारिजी के साथ युग्मित होकर, कार्रवाई के इसी कारण पर वादी को दोबारा मुकदमा करने से रोकने का कार्य करती है, मैं कुछ शब्द जोड़ना चाहूँगा। मुझे यह प्रतीत होता है कि धारा 9 सिविल प्रक्रिया संहिता, अपीलार्थी के तर्क के लिए घातक है। यह धारा घोषित करती है कि न्यायालयों के सिविल प्रकृति के सभी वादों का विचारण करने की अधिकारिता होगी। सिवाय उन वादो के जिनका संज्ञान लेना अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से वर्जित है। यह ऐसे प्रावधानों के अध्यधीन हैं जैसे कि धारा 11 के प्रावधानों के जो पक्षों के बीच पहले से ही न्यायिक रूप से निर्णीत मुद्दों पर वादों को वर्जित करते हैं या आदेश 9, नियम 9 के प्रावधान, जो कार्रवाई के उसी कारण पर वादी को दुबारा मुकदमा करने से रोकते हैं जहाँ उसके वाद को नियम 8 के अधीन खारिज किया गया है, यानि कि प्रतिवादी की उपस्थिति पर और वादी की अनुपस्थिति में। किसी ऐसे प्रावधान की अनुपस्थिति में जिससे कि आदेश 9, नियम 9 प्रारम्भ होता है, आदेश 9 नियम 3 के अधीन एक खारिजी अभी भी मेरे विचार से वादी को दोबारा मुकदमा करने से नहीं रोकेगी भले ही आदेश 9 नियम 4 अभिव्यक्त रूप से वाद करने के उसके अधिकार को व्यावृत्त न करता हो। नियम 4 प्रभावी रूप से उत्पन्न नहीं करता अपितु एक नया वाद लाने के अधिकार की घोषणा करता है। जबकि इसी समय वैकल्पिक रूप से वादी को उसके मूल वाद के साथ कार्यवाही करने की अनुमति भी देता है। पहला वाला विकल्प वादी के अधिकार के तौर पर है, दूसरा विकल्प उसे केवल तब उपलब्ध है जब वह न्यायालय को यह समाधान करा सके कि उसके पास अनुपस्थिति या अन्य व्यतिक्रम का पर्याप्त कारण या जिसके परिणामतः वाद खारिज हो गया। अन्य बिन्दुओं पर मेरे पास कुछ जोड़ने के लिए कुछ भी नहीं है।''

15. आदेश 9 में अन्तर्विष्ट प्रावधानों और इसमें उपर परिचर्चा की गई विधि के आलोक में, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आदेश 9 नियम 4 सि॰ प्र॰ सं॰ के अधीन वाद के खारिज होने की स्थिति में वादी के पास दोनों उपचार अर्थात् नया वाद दाखिल करने या वाद के प्रत्यावर्तन के लिए आवेदन दाखिल करने के उपलब्ध होते हैं। ये दोनों उपचार सहवर्ती हैं और एक दूसरे को वर्जित नहीं करता।

16. अगला प्रश्न यानि प्रश्न संख्या (II), जो विचारण के लिए सामने आता है, वह इसको लेकर है कि क्या आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 2 एवं नियम 3 के अधीन व्यतिक्रम में वाद की खारिजी के उपरांत एक नया वाद पूर्व न्याय के सिद्धांत से वर्जित हैं।

17. पूर्व न्याय का सिद्धांत इस सामान्य विधि सूत्र *"nemo debet bis vexari pro uno eddem causa"* पर आधृत है, जिसका अर्थ है कि किसी भी व्यक्ति को कार्रवाई के एक ही कारण पर दोबारा परेशान नहीं करना चाहिए। यह एक मुकदमे को अंतिमता प्रदान करने के लिए प्रयुक्त एक

सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार, एक मुद्दा या एक बिन्दु एक बार निर्णीत हो जाने और अन्तिमता प्राप्त कर लेने पर एक पश्चातवर्ती वाद में दोबारा खोला नहीं जाना चाहिए और इसपर दोबारा बहस की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। अन्य शब्दों में, अगर एक वाद में अंतर्ग्रस्त एक मुद्दे का सक्षम अधिकारिता के एक न्यायालय द्वारा अन्तिम रूप से निर्णय कर दिए जाने पर इसी मुद्दे पर एक पश्चातवर्ती वाद में दोबारा जिरह करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। इसलिए, यह स्पष्ट है कि पूर्व-न्याय के सिद्धांत के लागू होने के लिए सक्षम अधिकारिता के एक न्यायालय द्वारा एक वाद में एक मुद्दे का एक अधिनिर्णयन होना अनिवार्य है।

18. पद ''निर्णय'' को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(9) में परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ एक डिक्री या आदेश के आधारों का एक न्यायाधीश द्वारा दिया गया एक कथन है।

19. पद ''डिक्री'' को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(2) के अधीन परिभाषित किया गया है, जो निम्नांकित रूप से पठित है:–

> *"(2) ''डिक्री'' का अर्थ एक अधिनिर्णयन की औपचारिक अभिव्यक्ति होती है, जो जहाँ तक इसे अभिव्यक्त करने वाले न्यायालय का सवाल है वाद में विवादग्रस्त सभी मामलों या उनमें से किसी के संबंध में पक्षों के अधिकारों का निश्चायी रूप से अभिनिर्धारित करती है और यह प्रारम्भिक या अन्तिम हो सकती है। इसके द्वारा एक वाद-पत्र के अस्वीकरण को और धारा 144 के अधीन किसी प्रश्न को अभिनिर्धारण को शामिल करने वाला माना जाएगा, परन्तु यह सम्मिलित नहीं करेगी–*
>
> *(a) किसी ऐसे अधिनिर्णयन को जिससे एक अपील एक आदेश से होने वाली अपील के समान उद्भूत होती है, या*
>
> *(b) व्यतिक्रम के कारण खारिजी के किसी आदेश को।''*

20. पद ''डिक्री'' के एक कोरे पठन से, यह प्रकटत: स्पष्ट है कि एक डिक्री का गठन करने के लिए, एक अधिनिर्णयन की एक औपचारिक अभिव्यक्ति का होना अनिवार्य है, जो वाद में विवादग्रस्त सभी मामलों पर उनमें से कुछ के संबंध में पक्षों के अधिकार को निश्चायी रूप से अभिनिर्धारित करे, परन्तु डिक्री किसी ऐसे अधिनिर्णयन को शामिल नहीं करेगी जिससे एक अपील उद्भूत होने वाली अपील के समान या व्यतिक्रम के कारण खारिजी के किसी आदेश को शामिल नहीं करेगी। इसलिए, यह प्रकटत: स्पष्ट है कि आदेश 9 सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम 2 या नियम 3 के अधीन विशिष्ट-रूप से व्यतिक्रम के कारण एक वाद या आवेदन की खारिजी दावा किए गए किसी अधिकार या एक वाद में वर्णित किसी बचाव पर एक अधिनिर्णयन की औपचारिक अभिव्यक्ति नहीं है। जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43 के अधीन प्रावधान किया गया है, व्यतिक्रम में भी एक वाद या आवेदन की खारिजी एक अपील करने योग्य आदेश नहीं होता। अगर हम आदेश 43 सि॰ प्र॰ सं॰ का पठन करते हैं, तो हम पाते हैं कि आदेश 9, नियम 9 सि॰ प्र॰ सं॰ या आदेश 9 नियम 13 सि॰ प्र॰ सं॰ के अधीन पारित आदेश अपील योग्य बनाए गए है, परन्तु आदेश 9 नियम 4 सि॰ प्र॰ सं॰ के अधीन पठित आदेश अपील योग्य नहीं हैं। इसलिए, यह स्पष्ट है कि आदेश 9 सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम 2 या नियम 3 के अधीन एक वाद की खारिजी का ऐसा आदेश न तो एक अधिनिर्णयन या एक डिक्री है और न ही यह एक अपीलीय आदेश है। अगर ऐसा है, तो आदेश 9 सि॰ प्र॰ सं॰ के नियम 2 या नियम 3 के अधीन एक वाद की खारिजी का ऐसा आदेश 'निर्णय' या 'डिक्री' की आवश्यकता को पूरा नहीं करता क्योंकि यहाँ कोई अधिनिर्णय नहीं है, मेरी सुविचारित राय में, अगर एक नया वाद दाखिल किया जाता है, तो खारिजी का ऐसा एक आदेश एक पूर्व न्याय के तौर पर प्रभावी नहीं हो सकता और नहीं होगा।

21. इससे ऊपर निर्णीत बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए, अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश विधि में पूर्णत: त्रुटिपूर्ण है और इसलिए, अपास्त किया जाता है। इसलिए अपील अनुज्ञात की जाती है और प्रतिकर मामले को गुणावगुणों पर सुनने और निर्णीत करने के एक निर्देश के साथ मामले को अधिकरण के पास प्रतिप्रेषित किया जाता है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

हनीफ अंसारी

बनाम

गुमला नगरपालिका, गुमला एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰(एस॰) सं॰ 6915 वर्ष 2002. 19 अगस्त, 2009 को विनिश्चित।

बिहार नगरपालिका अधिकारी एवं सेवक नियमावली, 1987—नियम 4—इसके अन्तर्गत सेवानिवृत्ति सम्बन्धी लाभ–नियम 4 के अन्तर्गत, अभिदायी भविष्य-निधि के बदले में पेंशन के विकल्प का प्रयोग नियम की विरचना की तिथि से 90 दिनों की अवधि के भीतर एक विहित प्रारूप में करना अनिवार्य है एवं यदि नियत अवधि के भीतर कोई विकल्प प्राप्त नहीं होता है तो यह समझा जायेगा कि कर्मचारी ने विद्यमान अभिदायी भविष्य निधि योजना में प्रतिधारित रहने का विकल्प चुना है–अभिनिर्धारित, याची के ऐसा चयन न करने के कारण, अभिदायी भविष्य निधि योजना में ही बना रहा–अब अपनी सेवानिवृत्ति के उपरांत एवं साथ ही साथ सभी विधिक देयों के प्राप्त कर लेने के उपरांत वह इसका लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है।

(पैरा 5 एवं 7)

अधिवक्तागण.–M/s D.K. Prasad, M.M. Sharma, For the Petitioner; Mr. S.K. Dwivedi, For the Respondents.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. याची, जो दिनांक 3.10.1999 को गुमला नगरपालिका की सेवा से कर संग्राहक के तौर पर सेवानिवृत्त हुआ, ने पेंशन और उपदान जिसे वह बिहार नगरपालिका अधिकारी एवं सेवक नियमावली, 1987 के प्रकाश में पाने का हकदार है, तय करने एवं भुगतान करने का निर्देश प्रत्यर्थियों को दिये जाने की प्रार्थना की है।

3. याची का मामला यह है कि वह बिहार नगरपालिका अधिकारी और सेवक नियमावली 1987 और साथ ही साथ सभी संबंधितों को संप्रेषित नगर विकास विभाग, बिहार सरकार द्वारा दिनांक 11.4.1996 को जारी पत्र, जो परिकल्पित करता है सारी नगरपालिकाओं एवं नोटिफाएड एरिया कमिटीयों की सारे कर्मचारियों को सरकारी सेवक के समान लाभ प्राप्त होंगे, के निबंधनों के अनुसार पेंशन और सेवानिवृत्ति पश्चात प्राप्त लाभों को पाने का हकदार है।

4.याची के अनुसार, दिनांक 11.4.1996 के सरकार के उक्त पत्र के आधार पर, हजारीबाग नगरपालिका अपने सेवानिवृत्त कर्मचारियों को पहले से ही पेंशन लाभ एवं अन्य भत्तों का भुगतान कर रहा है। यह कथन किया गया है कि याची ने दिनांक 30.10.1999 को अपनी सेवा निवृत्ति के पश्चात् उक्त बिहार नगरपालिका अधिकारी एवं सेवक नियमावली, 1987 के मुताबिक पेंशन भुगतान हेतु आवेदन दिया था लेकिन उसे उक्त लाभ नहीं दिये गये हैं।

5. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों का तर्क, जैसा प्रतिशपथ पत्र से प्रकट होता है, यह है कि बिहार नगरपालिका अधिकारी एवं सेवक नियमावली, 1987 के नियम-4 के मुताबिक अभिदायी भविष्य निधि के स्थान पर पेंशन का विकल्प दिये गये विहित प्रारुप में इस नियमावली के विरचित होने की तारीख से 90 दिनों के भीतर लिखित रूप में चुनना आवश्यक है और अगर इस तरह नियत अवधि के भीतर विकल्प नहीं चुना जाता है तो यह समझा जाएगा कि कर्मचारी ने विद्यमान अभिदायी भविष्य निधि योजना प्रतिधारित किये रहने का विकल्प चुना है।

6. यह कथन किया गया है कि याची ने उक्त नियमावली के नियम-4 के निबंधनों के अनुसार अपने विकल्प का प्रयोग कभी नहीं किया और 31.10.1999 को सेवानिवृत्त होने के बाद ही, उक्त

नियम लागू होने के 12 वर्षों बाद आवेदन दिया है यह भी कथन किया गया है कि याची ने नगर पालिका के अभिदायी हिस्से सहित अपनी सारी भविष्य निधि पहले ही प्रत्याहृत कर ली है और प्राप्त कर ली है और इस तरह याची पेंशन सम्बन्धी लाभ पाने का हकदार नहीं है। इसके अतिरिक्त नगरपालिका द्वारा याची को उसकी सारी विधि सम्मत देयों का भुगतान किया जा चुका है।

प्रति शपथ पत्र में कथित इस तथ्य का याची द्वारा प्रति शपथपत्र का प्रत्युत्तर दाखिल करके खंडन या इन्कार नहीं किया गया है।

7. पक्षों के विरोधी तर्कों पर विचार करके और बिहार नगरपालिका अधिकारी एवं सेवक नियमावली, 1987 का परिशीलन करने के पश्चात् मैं पाता हूँ कि याची निम्नलिखित कारणों के चलते इस याचिका में प्रार्थित राहत को पाने का हकदार नहीं है:–

(i) उसने विलम्ब से पेंशन के लिये आवेदन दिया अर्थात् बिहार नगरपालिका अधिकारी एवं सेवक नियमावली, 1987 के लागू होने की तारीख से 12 वर्षों के पश्चात् यद्यपि आवेदन दिये जाने के लिए नियत अवधि नियम लागू होने की तारीख से मात्र 90 दिन के अंदर की थी।

(ii) नगरपालिका अपना हिस्सा, यदि कोई हो तो याची के किसी एक खाते अर्थात् अभिदायी भविष्यनिधि अथवा पेंशन कोष में जमा कर सकता था। नगरपालिका ने अपना हिस्सा पहले ही याची के अभिदायी भविष्य निधि में जमा कर दिया था जिसे उसने आहरित कर लिया है और इस तरह अब वह पेंशन का लाभ पाने का हकदार नहीं है।

(iii) चूँकि याची ने पेंशन योजना का लाभ नहीं उठाया और अभिदायी भविष्य निधि योजना में बना रहा एवं इसलिए, भविष्य निधि सहित अपना सारा विधि सम्मत देय पाने के बाद पेंशन योजना का विकल्प चुनने की उसकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं की जा सकती है।

8. तद्नुसार, इसमें कोई गुणागुण न पाये जाने के कारण यह याचिका खारिज की जाती है। लेकिन व्यय का कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

माननीय डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति

अनीश अंसारी उर्फ छठुद्दीन अंसारी

बनाम

झारखण्ड राज्य

दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 598 वर्ष 2009. 16 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000—धारा 53—सत्र न्यायाधीश द्वारा किशोर को जमानत देने से इस आधार पर इन्कार किया गया कि निर्मुक्ति उसे नैतिक, शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक खतरों के प्रति अरक्षित छोड़ देगा क्योंकि वह वयस्क सह-अभियुक्त की संगति में था–अभिनिर्धारित, अभिकथन की गंभीरता एवं याची (किशोर) द्वारा एक अवयस्क लड़की पर सामूहिक बलात्संग कारित करके प्रदर्शित की गयी निर्ममता का विस्तार एवं उसकी निर्मुक्ति नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक खतरे को सामने ला सकता है–जमानत से इनकार किया गया एवं पुनरीक्षण खारिज किया गया। (पैरा 3 से 6)

निर्णयज विधि.–2006(4) East. Cr. Case 237 (Jhr.).

अधिवक्तागण.–M/s Rishi Pallava, Lukesh Kumar, For the Petitioner; Mr. Ravi Prakash, For the State.

डी॰ के॰ सिन्हा, न्यायमूर्ति.–यह दांडिक पुनरीक्षण दांडिक अपील सं॰ 40 वर्ष 2009 में सत्र न्यायाधीश, गढ़वा द्वारा पारित आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा याची अनीश अंसारी उर्फ छठुद्दीन अंसारी की जमानत प्रार्थना भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन किये गये अभिकथित अपराध के लिए खारिज कर दी गयी थी, के विरुद्ध किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 53 के अधीन दाखिल की गयी है।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि 15 वर्षीय अभियोक्त्रि जुबेदा खातून अपनी भाभी के साथ खेत में घास काटने गयी थी और वे दोनों दो जगहों पर घास काट रहीं थीं जबकि इसी बीच याची अनीश अंसारी उर्फ छठुद्दीन अंसारी एक अन्य अभियुक्त सदाम हुसैन के साथ वहाँ आया और बलात्कार करने की धमकी दी। अभियोक्त्री के प्रतिरोध के बावजूद, उसे जबरदस्ती घास पर लिटा दिया गया और याची ने उसका अंत:वस्त्र उतार कर उसके साथ बलात्कार किया और तत्पश्चात् एक अन्य अभियुक्त सदाम हुसैन ने बलात्कार किया। शोर-गुल मचाने पर उसकी भाभी वहाँ आयी परन्तु दोनों को धमकाया गया कि उनकी हत्या कर दी जाएगी और उनकी लाशें गेहूँ के खेत में फेंक दी जायेगी। अभियोक्त्री अपने घर वापस आयी और मामले की सूचना दी और तत्पश्चात् उसका बयान पुलिस थाना में दर्ज किया गया जिसके द्वारा भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन, इस प्रकार यह दो अभियुक्तों द्वारा किया गया सामूहिक बलात्कार का अभिकथित मामला था, धुरखी पी॰ एस॰ केस सं॰ 9 वर्ष 2009 उद्भूत हुआ।

3. मैं आक्षेपित आदेश से पाता हूँ कि विद्वान सत्र न्यायाधीश, गढ़वा ने किशोर न्याय बोर्ड के अभिवाक् को स्वीकार करते हुए एवं इस आधार पर याची-किशोर को जमानत देने से इन्कार कर दिया कि याची की निर्मुक्ति उसे नैतिक, शारीरिक एवं मानसिक खतरों के प्रति अरक्षित छोड़ देगा और वह वयस्क सह-अभियुक्त का सहयोगी है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि स्वीकृत तौर पर, याची किशोर है और किशोर न्याय अधिनियम की धारा 12 किशोर की जमानत हेतु आज्ञापक प्रावधान अधिकथित करती है लेकिन कतिपय अपवादों में जमानत नामंजूर किया जा सकता है यदि ऐसा विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार सामने आता है कि किशोर अपचारी की निर्मुक्ति उसे किसी ज्ञात अपराधी की संगती में लाएगा अथवा उसे नैतिक, शारीरिक और मानसिक खतरों के प्रति अरक्षित छोड़ देगी अथवा उसकी निर्मुक्ति न्याय के उद्देश्य को विफल कर देगी। लेकिन वर्तमान मामले में, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश में नहीं दर्शाया है कि याची का मामला अपवाद खंड की श्रेणी में पाया गया है ताकि उसे जमानत देने से इन्कार किया जा सके। याची दिनांक 4.3.2009 से अभिरक्षा में है और समान परिस्थिति में, विद्वान अधिवक्ता बताते हैं कि **2006 (4) ईस्ट क्रि॰ केस 237 (झारखंड)** में प्रकाशित **सुबोध कुमार पंडित उर्फ धनेश्वर पंडित बनाम झारखण्ड राज्य** मामले में इस न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है:–

> *''संभवत विद्वान सत्र न्यायाधीश ने कानून विरोधी किशोर के पक्ष में विधान के हितकारी और हितप्रद पहलू की अनदेखी की है। दां० वि० अपील सं० 41 वर्ष 2006 में सत्र न्यायाधीश द्वारा नामंजूरी का आधार धारा 12 के प्रावधानों के विरुद्ध है और इसलिए, यह कानून की दृष्टि में मान्य नहीं है।''*

4. न्यायालय ने इसमें पहले निर्दिष्ट विधि के प्रावधान पर विचार करते हुए किशोर की जमानत मंजूर की थी।

5. दूसरी ओर, विद्वान अपर लोक अभियोजक ने जमानत याचिका जिसे पुनरीक्षण हेतु दाखिल किया गया है, का इस आधार पर विरोध किया है कि याची अन्य अभियुक्त के साथ 15 वर्षीय

अवयस्क बालिका के साथ बलात्कार कर क्रूरता की पराकाष्ठा प्रदर्शित की है जो याची की मानसिक अवस्था परिलक्षित करता है और उसकी निर्मुक्ति उसे नैतिक, शारीरिक अथवा मानसिक खतरों के प्रति अरक्षित छोड़ देगी जिससे उसके भविष्य पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा और इसलिए, उसका मामला किशोर न्याय (बालकों की देख-भाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 12 की अपवाद श्रेणी में आता है।

6. मैं विद्वान अपर लोक अभियोजक की ओर से प्रस्तुत तर्क में सार पाता हूँ। अत: अभिकथन की गंभीरता और एक अवयस्क बालिका का सामूहिक बलात्कार द्वारा प्रदर्शित क्रूरता की पराकाष्ठा की दृष्टि में और यह तथ्य कि जमानत उसे नैतिक और मानसिक खतरों के प्रति अरक्षित छोड़ देगा, मैं उसे जमानत देना नहीं चाहता और इसलिए उसकी जमानत याचिका अस्वीकार की जाती है।

7. यह दांडिक पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

माननीया जया रॉय, न्यायमूर्ति

फागू महतो उर्फ धिरहू महतो (1608 में)

अशोक साव (1597 में)

टुनुआ साव उर्फ उमेश साव (226 में)

बनाम

झारखण्ड राज्य (सभी में)

दांडिक अपील (एस॰ जे॰) सं॰ 1608, 1597 वर्ष 2006; 226 वर्ष 2007.
15 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

एस॰ टी॰ केस सं॰ 192 वर्ष 2005 में प्रथम अपर न्यायिक आयुक्त, राँची द्वारा पारित दिनांक 7.9.2006 एवं 11.9.2006 के दोषसिद्धि के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध।

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 376 (2)(g)–बलात्संग–यह अभिवाक् कि परिस्थितियों को जिन्हें दोषसिद्धि हेतु विचार में लिया गया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्तों के समक्ष नहीं रखा गया है–अभिनिर्धारित, दं॰ प्र॰ सं॰ की 313 का लक्ष्य न्यायालय और अभियुक्त के बीच सीधा संवाद स्थापित करना है–धारा यह अपेक्षा नहीं करती है कि साक्ष्य का प्रत्येक भाग अभियुक्त के सम्मुख रखा जाएगा–आगे अभिनिर्धारित, छोटी मोटी असंगतियाँ विचारण को दूषित नहीं करती है–दोषसिद्धि एवं सजा को मान्य ठहराया गया। (पैरा 10 से 13)

(ख) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 313—इस धारा का लक्ष्य न्यायालय और अभियुक्त के बीच सीधा संवाद स्थापित करना है–यदि साक्ष्य का कोई बिन्दु अभियुक्त के विरुद्ध महत्वपूर्ण है और दोषसिद्धि इसपर आधृत होने का आशयित है, तो यह सही और समुचित होगा कि अभियुक्त का इस मामले पर परीक्षण किया जाए और उसे इसे स्पष्ट करने का अवसर दिया जाए–धारा यह अपेक्षा नहीं करती है कि साक्ष्य के प्रत्येक बिन्दु को अभियुक्त के सम्मुख रखा जाए। (पैरा 13)

अधिवक्तागण.–M/s B.M. Tripathy, Nutan Sharma, Naveen Kumar Jaiswal, For the Appellants; Mr. M.B. Lal, For the Respondent.

निर्णय

ये तीनों अपीलें उपर्युक्त तीनों अपीलार्थियों द्वारा श्री ए॰ के॰ चौधरी, अपर न्यायिक कमिश्नर,

प्रथम, राँची द्वारा एस॰ टी॰ सं॰ 192 वर्ष 2005 में दिनांक 11.9.2006 को पारित आदेश और दिनांक 7.9.2006 को पारित निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है। उक्त तीनों अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 (2) (जी॰) के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और उन्हें 10 वर्ष का सश्रम कारावास और 25000 रुपए जुर्माना भरने और जुर्माने का भुगतान करने के व्यतिक्रम में 6 महीने का सरल कारावास भुगतने की सजा दी गयी है और उन्हें अनुसूचित जातियाँ एवं अनुसूचित जनजातियाँ (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3 (1) (xii) के अधीन लगाए गए आरोप से मुक्त कर दिया गया है।

चूँकि उपरोक्त तीनों अपीलें एक ही निर्णय और आदेश से उद्‌भुत हुई है, इसलिए उसे साथ सुना गया है और एक ही निर्णय द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. संक्षेप में अभियोजन का मामला यह है कि दिनांक 13/14 अक्टूबर, 2004 की रात को लगभग 10 बजे, अभियुक्त अशोक साव, टुनुआ साव और टिडू उर्फ फागू बरगाई गाँव स्थित पीड़ित के घर आए और अभियोक्त्री, एक 13 वर्षीय अवयस्क आदिवासी बालिका, को जबरन उठाकर नजदीक के बगीचे में ले गए और बारी-बारी से अभियोक्त्री के साथ बलात्कार किया। ऐसा किए जाने पर अभियोक्त्री ने हल्ला मचाया जिसे सुनकर उसके माता-पिता एवं अन्य ग्रामीण वहाँ पर आए और उनको देख कर अभियुक्त बगीचे से भाग गए। पुलिस ने दूसरे दिन करीब 3 बजे शाम में अभियोक्त्री का फर्दबयान दर्ज किया और मामले की छानबीन शुरु की। छानबीन पूरी होने के बाद पुलिस ने तीनों अभियुक्तों के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 के अधीन और अनुसूचित जातियाँ एवं अनुसूचित जनजातियाँ (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(1) (xii) के अधीन दण्डनीय अपराध के लिए आरोप पत्र दाखिल किया।

3. अभियुक्त ने अपने बचाव में घटना से पूरी तरह इन्कार किया है और झूठा फँसाने की बात कही है।

4. अभियोजन ने अपना मामला सिद्ध करने के लिए नौ गवाहों का परीक्षण किया है जबकि बचाव पक्ष ने दो गवाहों का परीक्षण किया है। उनमें से एक अ॰ सा॰ 1, पीड़िता का पिता है, अ॰ सा॰ 2, पीड़िता की माता है, अ॰ सा॰ 3, अभियोक्त्री (पीड़ित बालिका) है, अ॰ सा॰ 4, 5 और 6 को पक्षद्रोही घोषित किया गया था। अ॰ सा॰ 7 डॉक्टर है जिसने पीड़ित बालिका का परीक्षण दिनांक 14.10.2004 को किया था, अ॰ सा॰ 8 अन्वेषण अधिकारी है और अ॰ सा॰ 9 न्यायिक मजिस्ट्रेट हैं जिन्होंने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन पीड़ित बालिका का बयान दर्ज किया था।

5. तीनों अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री बी॰ एम॰ त्रिपाठी ने निवेदन किया है कि डॉक्टर ने बलात्कार का कोई निश्चित निशान नहीं पाया है और सिर्फ इसी आधार पर अपीलार्थियों को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए और उन्हें इस मामले से बरी कर देना चाहिए।

लेकिन अ॰ सा॰ 7 डॉक्टर के साक्ष्य से मैं पाती हूँ कि डाक्टर ने पीड़ित बालिका के परीक्षण में उसके शरीर के गुप्तांगों में सुकुमारता और लालिमा पायी है। उसने अपने साक्ष्य में कहा है:-

"(i) श्रोणीय परीक्षण पर मैं सुकुमारता एवं लालिमा की उपस्थिति पाती हूँ, योनि स्राव लेकर वीर्य की उपस्थिति पाने हेतु माईक्रोस्कोपिक परीक्षण के लिए पैथोलोजी को भेजा गया।

(ii) पैथोलोजिस्ट की रिपोर्ट के मुताबिक तैयार किए गए स्लाइड के माइक्रोस्कोपिक क्षेत्र में मृत वीर्य पाया गया।

(iii) मेरे विचार में परीक्षण के समय लैंगिक संबंध का साक्ष्य है।

डॉक्टर (अ॰ सा॰ 7) ने विनिर्दिष्ट रूप से कथन किया है कि उसने मरीज पर आंतरिक उपहति पायी। इस प्रकार डॉक्टर का साक्ष्य अभियोक्त्री के बयान की पूर्णत: संपुष्टि करता है। चिकित्सीय रिपोर्ट पीड़िता की आयु 12-15 वर्ष बताता है।

6. विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री बी॰ एम॰ त्रिपाठी ने निवेदन किया है कि अभियोक्त्री और उसके माता-पिता के साक्ष्यों में भिन्नता है। आगे यह निवेदन किया गया है कि प्रकाश का कोई स्रोत नहीं था और दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि अंधकारमय थी। अत: अभियोक्त्री के लिए अपीलार्थीगण-अभियुक्तों को पहचानना मुश्किल था।

7. अभियोक्त्री अ॰ सा॰ 3 के साक्ष्य की संवीक्षा करने पर मैं पाती हूँ कि उसने कथन किया है कि घटना रात में घटी जब वह अपने गाँव वाले घर में अपने माता-पिता के साथ रुकी हुई थी। रात करीब 10 बजे उपर्युक्त तीनों अपील के तीनों अभियुक्त अपीलार्थीगण अर्थात् फागू महतो उर्फ टुडू, अशोक साव और टुनुआ साव उसके घर के पास आए और पथराव किया। तत्पश्चात् अभियुक्तों ने अभियोक्त्री के घर के दरवाजे को धक्का दिया और चूँकि दरवाजा लकड़ी की चौखट से जुड़ा टिन का बना था, वह खुल गया। उक्त अभियुक्त जबरन घर में घुसे और पीड़ित बालिका को खींच कर घर से बाहर लाए और उसे नजदीक के बगीचे में ले गए। टुडू और फागू ने उसे बगीचे में रस्सी से बांध दिया और सबसे पहले अशोक साव ने बलात्कार किया और तत्पश्चात् टुनुआ और टुडु ने बारी-बारी से उसके साथ बलात्कार किया। उसने हल्ला मचाया। टोले का एक मुस्लिम पुरुष उसे बचाने आया। बलात्कार करने के बाद अभियुक्त भाग गए और अभियोक्त्री अपने घर वापस आयी और अपनी माता को सारी घटना बतायी। वह उस रात अपने घर में रही और अगली सुबह अपने पिता के साथ पुलिस थाने गयी और पुलिस को सारी घटना बतायी। फर्दबयान दर्ज करने के बाद, पुलिस ने उसे डाक्टर (अ॰ सा॰ 7) के पास भेजा जिन्होंने उसी दिन उसका परीक्षण किया। डॉक्टर द्वारा सिद्ध किए जाने के बाद उसकी चिकित्सीय रिपोर्ट प्रदर्श-1 के तौर पर चिन्हित की गयी है।

8. अ॰ सा॰ 1, जो पीड़िता का पिता है, ने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि उपर्युक्त तीनों अपीलार्थीगण उसके घर आए और पथराव किया और उसे अपने घर से बाहर आने को कहा और जान से मारने की धमकी दी। डर के मारे वह अपने घर से बाहर आया और ये तीनों अभियुक्त उसकी पुत्री को घर से ले गए। उसकी पुत्री मध्यरात्रि में लौटी और दूसरे दिन वह अपनी बेटी को पुलिस थाना ले गया और तत्काल मामला दर्ज किया। उसने अभियोजन के मामले का पूरा समर्थन किया है और उसके साक्ष्य पर विश्वास नहीं करने का कोई कारण नहीं है। अ॰ सा॰ 2, पीड़ित की माता ने भी अभियोजन के मामले को संपुष्ट किया है। अ॰ सा॰ 8, अन्वेषण अधिकारी, जिसने दिनांक 14.10.2004 को मामले का अन्वेषण अपने हाथ में लिया, ने भी अभियोजन के मामले का समर्थन किया है। अपने प्रति-परीक्षण में उसने आगे कथन किया है कि उसने पीड़ित बालिका का बयान दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन अ॰ सा॰ 9 न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज करवाया था। अ॰ सा॰ 9 ने भी कथन किया है कि उसने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन पीड़ित बालिका का बयान दर्ज किया था और उसके द्वारा प्रमाणित किये जाने के बाद उक्त बयान को प्रदर्श-4 के तौर पर चिन्हित किया गया है। अ॰ सा॰ 9 ने आगे कथन किया है कि उसने पीड़ित बालिका की उम्र 14 वर्ष निर्धारित की।

9. अंधेरी रात में पहचान करने से संबंधित श्री त्रिपाठी के निवेदन से मैं सहमत नहीं हूँ क्योंकि अ॰ सा॰ 3, पीड़ित बालिका ने अपने साक्ष्य के पैरा 7 में विनिर्दिष्ट रूप से कथन की है कि वह अभियुक्तों को उनके नाम से जानती थी क्योंकि उन्होंने मंटू साव की ईंट की भट्ठी में दो साल काम किया था। अत: अंधेरी रात में भी किसी व्यक्ति को पहचानना मुश्किल नहीं है यदि वह पूर्व परिचित हो।

10. नि:संदेह, गवाहों के साक्ष्य में भिन्नताएँ है लेकिन मेरे विचार में वे महत्वपूर्ण नहीं है। यह सामान्य है कि घटना के लगभग दो वर्ष बाद कोई भी घटना का बारीकी से वर्णन नहीं कर सकता है। सिर्फ इसलिए कि कुछ या सारे गवाहों के साक्ष्य में भिन्नताएँ और विरोधाभास है, अभियोजन के समस्त साक्ष्य को दरकिनार नहीं किया जा सकता है। सत्य को असत्य, अतिशयोक्ति, अलंकरण और अभिवृद्धि से अलग करने के लिए सर्तकता और सावधानी बरतने और साक्ष्य का सूक्षम परीक्षण करने के पश्चात् ही न्यायालय को विचार करना चाहिए कि अभियुक्त के विरुद्ध क्या स्वीकार किया जा सकता है और उसी आधार पर न्यायालय को आदेश पारित करना चाहिए। अभियोजन के गवाहों के साक्ष्य की संवीक्षा करने के पश्चात् मैं पाती हूँ कि अ॰ सा॰ 1, 2, 3 और 7 ने अभियोजन के मामले को पूरी तरह संपुष्ट और समर्थित किया है।

11. बचाव पक्ष ने दो गवाहों का परीक्षण किया है। ब॰ सा॰ 1 शत्रुघ्न ओराँव है और ब॰ सा॰ 2 सैय्यद अन्सारी है। ब॰ सा॰ 1 ने कथन किया है कि अभियोक्त्री गाँव के रिश्ते में उसकी भतीजी है। उसने उससे कहा कि दिनांक 13.10.2004 को उसके साथ कोई घटना नहीं घटी थी। उसने उससे आगे कहा कि वह मंटू साव के ईंट की भट्ठी में काम करती है। तीनों अभियुक्तों की मंटू साव के पिता के साथ दुश्मनी है और इसलिए मंटू साहू ने उस पर दबाव डाल कर इन अपीलार्थियों के विरुद्ध मामला दर्ज करवाया है। लेकिन अपने प्रति-परीक्षण में उसने कथन किया है कि वह नहीं जानता है कि अभियुक्तों की मंटू साहू के साथ किस तरह की दुश्मनी है और वह कभी भी मंटू साहू के ईंट की भट्ठी पर नहीं गया है। ब॰ सा॰ 1 ने आगे कथन किया है कि उसे नहीं मालूम है कि दिनांक 13.10.2004 को अभियोक्त्री के साथ कौन सी घटना घटी थी और पीड़ित बालिका घटना के 5-6 दिन बाद अपने घर गयी थी। तत्पश्चात्, उसने कथन किया है कि वह अभियुक्तों की ओर से बुलाए जाने पर अपने परीक्षण के दिन न्यायालय आया था। अगला बचाव गवाह ब॰ सा॰ 2 सयूब अंसारी है जिसने कथन किया है कि वह अभियोक्त्री को जानता है और घटना के 5-6 दिन बाद अभियोक्त्री गाँव गयी और कहा कि कोई घटना नहीं हुई है और उसका बलात्कार नहीं हुआ था। अभियोक्त्री ने उससे आगे कहा कि वह रात में ईंट की भट्ठी में काम करती है और उसके साथ हंगामा हुआ था लेकिन उसने उसे यह नहीं बताया कि यह हंगामा कैसा था। प्रति-परीक्षण में ब॰ सा॰ 2 ने कथन किया है कि अभियोक्त्री दिनांक 13.10.2004 को अपने गाँव नहीं गयी थी और उसने नहीं बताया कि दिनांक 13.10.2004 को कौन सी घटना घटी थी। उसने आगे कथन किया है वह अपीलार्थीगण को जानता तक नहीं है।

12. मैं ब॰ सा॰ 1 और ब॰ सा॰ 2 के साक्ष्य में कोई सामग्री नहीं पाती हूँ जो अभियुक्तों की निर्दोषिता सिद्ध कर सके अथवा अभियोजन के मामले को झूठला सके। व्यवहारत: बचाव साक्षी का परिसाक्ष्य विश्वसनीय नहीं होता है। संक्षेप में, मैं पाती हूँ कि अभियोक्त्री, उसके माता-पिता, अ॰ सा॰ 1 और 2 और साथ ही साथ डाक्टर अ॰ सा॰ 7 के साक्ष्य और अभियोजन द्वारा सिद्ध दस्तावेज भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376 (2)(g) के अधीन उपर्युक्त आरोप को सारे युक्तियुक्त संदेह से परे स्थापित करता है। अत: मैं विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णित दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाती हूँ।

13. श्री त्रिपाठी आगे निवेदन करते है कि अपीलार्थियों पर गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है क्योंकि उन परिस्थितियों, जिन्हें उनकी दोषसिद्धि करने हेतु विचार में लिया गया है, को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन उनके सम्मुख नहीं रखा गया है और इस आधार पर इस मामले में बरी होने के हकदार है।

दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 का उद्देश्य न्यायालय और अभियुक्त के बीच सीधा संवाद स्थापित करना है। यदि साक्ष्य का कोई बिन्दु अभियुक्त के विरुद्ध महत्वपूर्ण है और दोषसिद्धि इस पर आधृत होना आशयित है, तो यह सही और समुचित होगा कि अभियुक्त से मामले के बारे में पूछताछ की जाए

और उसे इसका स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया जाए। धारा की अपेक्षा यह नहीं है कि साक्ष्य के सारे बिन्दु अभियुक्त के सम्मुख रखे जाए। प्रश्न और अभियुक्त-अपीलार्थियों द्वारा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 313 के अधीन दिए गए उत्तर का परिशीलन करने पर मैं इसमें कोई अवैधता अथवा अनियमितता नहीं पाती हूँ और विचारण न्यायालय ने विधि के अनुसार प्रावधान का अनुपालन किया है।

14. अंत में, श्री त्रिपाठी ने सजा के प्रश्न पर तर्क किया है। लेकिन अपराध की गंभीरता और तीनों अपीलार्थियों के दु:साहसिक कृत्य कि वे रात में पीड़ित बालिका के घर गए और उसके पिता को धमकाने के बाद पीड़ित बालिका (अवयस्क) को घर से ले गए और सुनसान स्थान में खींच कर ले गए, रस्सी से उसे बांधा और बारी-बारी से बलात्कार किया इस पर विचार करने के बाद मैं पाती हूँ कि न्यायालय द्वारा दी गयी सजा का अनुचित करने वालों पर दण्डात्मक प्रभाव पड़ेगा और यह कहना आवश्यक नहीं है कि अनुचित करने वालों को समुचित सजा दिया जाना दांडिक न्याय प्रणाली में जनता का विश्वास पैदा करने हेतु आवश्यक है। अत: मेरे विचार में अवर न्यायालय द्वारा अपीलार्थियों को दी गयी सजा में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

शारीरिक दाग तो मिट जाते है पर मानसिक दाग बना रहता है। जब एक महिला का बलात्कार होता है तब सिर्फ शारीरिक उपहति नहीं पहुँचायी जाती है बल्कि मृत्युहीन लज्जा का गहरा अहसास बना रहता है खास कर जब पीड़िता एक अवयस्क बालिका हो।

15. राज्य की ओर से श्री एम॰ बी॰ लाल ने निवेदन किया है कि अभियोजन के साक्ष्य में कोई अशक्तता नहीं है और अवर न्यायालय ने तीनों अपीलार्थियों की दोषसिद्धि हेतु अभियोजन के मामले को सही पाया है।

16. मामले के सभी दृष्टिकोणों पर विचार करने और दोनों पक्षों को सुनने के बाद मैं पाती हूँ कि अभियोजन ने तीनों अपीलार्थियों के विरुद्ध अपने मामले को संदेह से परे सिद्ध किया है और अवर न्यायालय ने उन्हें सही तौर पर दोषी पाया है। मैं तीनों अपीलार्थियों की दोषसिद्धि और सजा से संबंधित अवर न्यायालय के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाती हूँ।

परिणामस्वरूप उक्त तीनों अपीलें खारिज की जाती है। अवर न्यायालय द्वारा तीनों अपीलार्थियों की दोषसिद्धि और सजा के उपर्युक्त निर्णय एवं आदेश को मान्य ठहराया जाता है।

माननीय आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्ति

अशोक कुमार सिंह

बनाम

सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से झारखण्ड राज्य

दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 105 वर्ष 2007. 5 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973–धारा 218–पृथक आरोप–न्यायालय के लिए संयुक्त विचारण करना अनिवार्य नहीं है यदि अपराध भिन्न-भिन्न हैं–एक ही सम्व्यवहार समरूप सम्व्यवहार से भिन्न है–यदि एकत्रित सामग्रियों के आधार पर यह पाया जाता है कि अभिकथित अपराध भिन्न-भिन्न सम्व्यवहार में कारित किए गए हैं तब दोनों ही अपराधों के लिए एक ही विचारण कराने का प्रश्न ही उद्‌भूत नहीं होता है। (पैरा 7 एवं 8)

निर्णयज विधि.—AIR 1965 MYS 128; AIR 1963 SC 1850; AIR 1965 SC 87—Relied on.

अधिवक्तागण.—M/s Suendra Singh, Pandey Neeraj Rai, For the Petitioner; Mr. Rajesh Kumar, For the CBI.

आदेश

झारखण्ड राज्य विद्युत बोर्ड ('जे॰ एस॰ ई॰ बी॰') ने 300 करोड़ रुपये की राशि के लिए 4923 ग्रामों से मिल कर बने ग्रामीण क्षेत्र के विद्युतीकरण हेतु मेसर्स रेलवे इंडिया टेक्निकल सर्विसेज लिमिटेड (मेसर्स RITES) केन्द्रीय सरकार का एक उपक्रम, के साथ एक करार किया। इसका अनुसरण करते हुए, वर्ष 2003 में मेसर्स RITES को भिन्न-भिन्न संकर्म आदेश जारी किये गये। करार के निबंधनों के अनुसार, बैंक गारंटी की समतुल्य राशि के विरूद्ध प्रोजेक्ट लागत का 10 प्रतिशत, अर्थात् 29.19 करोड़ रुपये की समतुल्य राशि को मेसर्स RITES को मोबाईलाईजेशन अग्रिम के तौर पर निर्गत किया जाना था। लेकिन मेसर्स RITES ने कार्य निष्पादन मेसर्स रामजी पावर कन्सट्रक्शन लिमिटेड (मेसर्स RPCL) को 277.5 करोड़ रुपये के लिए समनुदेशित कर दिया और उनके बीच के करार के मुताबिक मेसर्स RPCL को संविदात्मक राशि का 5 प्रतिशत अर्थात् 13.875 करोड़ रुपये बैंक गारंटी के माध्यम से प्रतिभूति के तौर पर जमा करना था और फिर बैंक गारंटी के माध्यम से मोबाईलाईजेशन अग्रिम के तौर पर भी 13.875 करोड़ रुपये जमा करना था। ऐसा करार करने के पश्चात् मेसर्स RITES ने बोर्ड से अनुरोध किया कि मेसर्स RPCL को अपने (मेसर्स RITES) माध्यम से मोबाईलाईजेशन अग्रिम के 92.5 प्रतिशत की समतुल्य राशि बैंक गारंटी के जरिये जमा करने की अनुमति दी जाए और इसे (मेसर्स आर॰ आइ॰ टी॰ इ॰ एस॰) संग्रहण अग्रिम 7.5 प्रतिशत की समतुल्य राशि बैंक गारंटी के जरिये जमा करने की अनुमति दी जाये जिस प्रार्थना को बोर्ड ने स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् 29.19 करोड़ रुपये के मोबाईलाईजेशन अग्रिम में से मेसर्स RITES को मेसर्स RPCL के नाम 10,97,15,020/- रुपये की राशि निर्गत की गयी थी। लेकिन इसके पूर्व मेसर्स RITES ने मेसर्स RPCL से 25,43,79,465/- रुपये की राशि 18 बैंक गारंटी के तौर पर प्राप्त कर जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को जमा कर दिया। मेसर्स RITES के अपर प्रधान प्रबंधक ने बोर्ड को सूचित किया कि मेसर्स RPCL द्वारा प्राप्त की गयी बैंक गारंटी जिसे बोर्ड के पास जमा कर दिया गया था, कूटरचित थी। जब बोर्ड द्वारा बैंक ऑफ इंडिया, क्लब साइड शाखा, मेन रोड, राँची से पूछताछ किया गया, तब बैंक के मुख्य प्रबंधक ने सूचित किया कि 18 बैंक गारंटी में से 19,64,85,959/- रुपये की राशि वाले 14 बैंक गारंटी को मेसर्स RITES एवं जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के पत्र के आधार पर और मेसर्स RPCL द्वारा मूल बैंक गारंटी प्रस्तुत किये जाने पर रद्द कर दिया गया था। यद्यपि जे॰ एस॰ इ॰ बी॰ ने मेसर्स RITES अथवा बैंक प्रबंधक को बैंक गारंटी के उन्मोचन के लिए कभी नहीं लिखा था और इसके अतिरिक्त बैंक गारंटी को उनमें अनुबद्ध खंड के मुताबिक बिना जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ की सम्मति के बिना रद्द नहीं किया जा सकता था। इस परिस्थिति के अंतर्गत दिनांक 11.8.2005 को याची मेसर्स RPCL के अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक और मुख्य प्रबंधक, बैंक ऑफ इंडिया, राँची के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गयी जिसमें अभिकथन किया गया कि अभियुक्तों ने मिलकर साजिश करके मोबाईलाईलेशन अग्रिम की राशि कूटरचित बैंक गारंटी के आधार पर निर्गत करवा लिया जिसे मेसर्स RPCL ने बैंक अधिकारियों से साँठगाँठ करके रद्द करवा दिया था। इस पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 467, 471, 409, 420 और 120(B) के अधीन धुर्वा पी॰ एस॰ केस सं॰ 153 वर्ष 2005 दर्ज किया गया था। तत्पश्चात् डेढ़ महीने बाद, मेसर्स RITES के संयुक्त प्रधान प्रबंधक, सतर्कता ने सी॰ बी॰ आई॰ के पास मामला दर्ज किया जिसमें अभिकथन किया गया कि मेसर्स RPCL और मेसर्स RITES के बीच हुए करार का अनुसरण करते हुए मेसर्स RPCL के अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, ए॰ के॰ सिंह द्वारा प्रतिभूति जमा के तौर पर 15,91,02,019/- रुपये की राशि की 15 बैंक गारंटी और मोबाईलाईजेशन अग्रिम के तौर पर 16,80,48,772/- रुपये की राशि की 12 बैंक गारंटी जमा की गयी थी। बैंक द्वारा बैंक गारंटी जारी किये जाने की पुष्टि होने पर मेसर्स

RPCL को 16.8 करोड़ रुपये की राशि का भुगतान किया गया था लेकिन जब संदेह उत्पन्न हुआ तब 27 बैंक गारंटी की असलियत के बारे में पूछताछ की गयी जिसके बाद इसे बैंक द्वारा सूचित किया गया कि 27 बैंक गारंटी में से 22 बैंक गारंटी कूटरचित है और सिर्फ यही नहीं उन बैंक गारंटी को भी मेसर्स RPCL द्वारा बिना मेसर्स RITES की सलाह जाने रद्द कर दिया गया और इस तरह मेसर्स RPCL के अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक और अन्य कर्मचारियों ने बैंक ऑफ इंडिया, राँची के अधिकारियों से सांठगांठ करके मेसर्स RITES को 32.7 करोड़ रुपये की क्षति कारित की। लिखित कथन के आधार पर सी॰ बी॰ आई॰ ने अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420, 467, 468, 471 सह-पठित धारा 120 (B) के अधीन और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13 (1)(d) सह-पठित धारा 13 (2) के अधीन भी मामला दर्ज किया।

2. दूसरी प्राथमिकी दर्ज किये जाने पर, यह रिट याचिका दूसरी प्राथमिकी का अभिखंडन इस आधार पर करवाने के लिए दाखिल किया गया था कि चूंकि समान प्रकार के अभिकथनों पर पहली प्राथमिकी धुर्वा पी॰ एस॰ केस नं॰ 153 वर्ष 2005 के रूप में दर्ज की गयी है और इस तरह इसके बाद किया गया कोई भी कथन/अभिकथन दंण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन किया गया कथन माना जाना चाहिए और इस तरह सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा दूसरी प्राथमिकी दर्ज किया जाना बिल्कुल अवांछित है और अपास्त करने योग्य है।

3. लेकिन, इस याचिका के लम्बित रहने के दौरान पुलिस ने दिनांक 30.6.2007 को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 467, 471, 409, 420 और 120(B) के अधीन याची अशोक कुमार सिंह, अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, मेसर्स RPCL, सुधीर जेड, संबंधित बैंक का मुख्य प्रबंधक, विजय वर्मन, कुन्दन खन्ना और प्रीति सिन्हा, सभी स्टांप विक्रेता के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया था और पाँचों अभियुक्तों के विरुद्ध उक्त अपराधों का संज्ञान भी लिया गया था। तत्पश्चात् सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा आर॰ सी॰ 1 वर्ष 2005 के रूप में दर्ज दूसरे मामले में भी भारतीय दंड संहिता की धाराओं 120 (B), 420, 467, 468 और 471 के अधीन याची अशोक कुमार सिंह, अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, मेसर्स RPCL, राजीव कुमार सिंह, निदेशक, मेसर्स RPCL, के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल किया गया था और उनके विरुद्ध उक्त अपराधों का संज्ञान भी लिया गया था।

4. ऐसी परिस्थितियों में याची की ओर से निवेदन किया गया है याची ने अभिकथित तौर पर बोर्ड से और मेसर्स RITES से भी मोबाईलाइजेशन अग्रिम पाने के लिए जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ और मेसर्स RITES को कूटरचित बैंक गारंटी दी थी लेकिन वस्तुतः यह मेसर्स RITES है जिसे अभिकथित तौर पर दोनों मामलों में छला गया माना जा सकता है क्योंकि जे॰ एस॰ इ॰ बी॰ और मेसर्स RITES के बीच हुए करार के मुताबिक बैंक गारंटी जमा करने पर मोबाईलाजेशन अग्रिम पाने की जिम्मेदारी मेसर्स RITES की बनती है और इस तरह याची का दोनों मामलों में विचारण करना आवश्यक नहीं है क्योंकि कूटरचित बैंक गारंटी देने का अभिकथित कृत्य उसी संव्यवहार का हिस्सा है और इसलिए दोनों मामलों को समामेलित करने का ताकि अभियुक्तों का विचारण हो सके, आवश्यक आदेश पारित किया जाए।

5. अपने निवेदन के समर्थन में याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम चीमालापति गनेश्वर राव (AIR 1963 SC 1850)** और **मणिपुर प्रशासन, मणिपुर बनाम थोक चोम बीरा सिंह (AIR 1965 SC 87).** मामलों में लिये गये निर्णयों में विश्वास प्रकट किया है।

लेकिन सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि दोनों मामलों में लगाए गये आरोप कभी नहीं इंगित करते है कि दोनों अपराध एक ही संव्यवहार में किये

गये हैं बल्कि याची और अन्य अभियुक्तों ने धोखाधड़ी करके अभिकथित रूप से जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ का 10.97 करोड़ रुपया छला है जबकि मेसर्स RITES का 32.7 करोड़ रुपया अभिकथित रूप से छला गया है यद्यपि संव्यवहार का ढंग एक ही है जिसके द्वारा कूटरचित बैंक गारंटी जमा की गयी और फिर रद्द करवा दी गयी और इसलिये याची की ओर से किया गया निवेदन अस्वीकार करने योग्य है।

6. यह कहा जाय कि संहिता में मामलों के समामेलन का प्रावधान नहीं है। दांडिक मामले सिविल मामलों की तरह, दंड प्रक्रिया संहिता में अधिकथित आरोपों के संयोजन की सीमा को छोड़ कर एक ही साक्ष्य पर समेकित और विचारित नहीं किये जा सकते है। दंण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 218 के निबंधनों के अनुसार विचारण का सामान्य नियम यह है कि प्रत्येक अपराध और प्रत्येक अभियुक्त का पृथक विचारण किया जाना चाहिए। संहिता की धाराओं 219, 220, 221 और 223 में निहित समर्थकारी प्रावधानों के कारण ही प्रत्येक अपराध के लिये आरोपों का संयोजन संभव है यदि वह इन चारों धाराओं के प्रावधानों के अंदर आता है जो सामान्य नियम के अपवाद है जैसा कि धारा 218 में प्रतिस्थापित किया गया है। यह एक न्यायालय के लिये आवश्यक नहीं है कि वह संयुक्त विचारण कराएं यदि अपराध भिन्न-भिन्न है। लेकिन विद्वान अधिवक्ता ने शायद दंण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 223 (a) में निहित प्रावधानों की मदद से यह अभिवाक् किया किया है कि दोनों मामलों को साथ-साथ विचारित किए जाने की जरूरत है क्योंकि याची के विरुद्ध अभिकथित अपराध एक ही संव्यवहार में किया गया प्रतीत होता है।

7. स्पष्टत: प्रश्न उठता है कि एक ही संव्यवहार का अर्थ क्या है। कुछ मामलों में यह अवधारित किया गया है कि यदि कृत्यों की एक श्रृंखला, समय सामीप्य, अपराधिक आशय की समरुपता, कृत्य की निरंतरता और प्रयोजन के कारण एक साथ ऐसे जुड़े है कि एक ही संव्यवहार की राय बनाई जा सकती है, लेकिन यह देखने से नहीं चूकना चाहिए कि सिर्फ एक ही कृत्य अथवा समरुप कृत्य निरंतर और बार-बार किया जाना एक ही संव्यवहार नहीं माना जा सकता है क्योंकि एक ही संव्यवहार और एक समरुप संव्यवहार में स्पष्ट भिन्नता है। **सी॰ एन॰ कृष्णमूर्ति बनाम अब्दुल सुब्बान (AIR 1965 MYS 128)** के मामले में यह अवधारित किया गया है कि मुख्य परीक्षा कार्रवाई की निरंतरता है जिसका अर्थ है किसी प्रारंभिक कृत्य का उसके सारे परिणामों और घटनाओं से गुजरते हुए तब तक अनुसरण करते रहना जब तक कि कृत्यों की श्रृंखला अथवा जुड़े हुए कृत्यों का समूह उद्देश्य की प्राप्ति अथवा समाप्त कर दिये जाने अथवा परित्याग के कारण समाप्ति न प्राप्त कर ले। अगर इनमें से कोई भी एक घटना घटती है और पूरी प्रक्रिया फिर से शुरू होती है, तो यह एक ही संव्यवहार नहीं है बल्कि इस तथ्य के बावजूद कि एक ही सामान्य प्रयोजन जारी रहे, एक नया संव्यवहार है।

8. इस परिस्थिति के अंतर्गत यह मूल्यांकन करने के लिये कि क्या अभिकथित अपराध एक ही संव्यवहार में किया गया है अथवा समरुप अपराध अन्य संव्यवहार में किया गया है, मामले के अन्वेषण के दौरान संग्रहित सामग्रियों का परीक्षण किया जाना चाहिये और इसका उपयुक्त चरण आरोप के विरचन का समय होगा। मुझे मामले की सुनवाई के दौरान बताया गया है कि दोनों मामले, जिनमें संज्ञान पहले ही लिया जा चुका है, एक ही न्यायालय में लंबित है और इसलिए, याची को विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष विवाद्यक उठाने की स्वतंत्रता है ताकि न्यायालय अभिलेख पर लायी गयी सामग्रियों का परिशीलन करके इस निष्कर्ष पर आ सके कि अभिकथित अपराध एक ही संव्यवहार अथवा भिन्न-भिन्न संव्यवहारों में किया गया है और अगर एकत्रित सामग्रियों के आधार पर पाया जाता है कि अभिकथित अपराध भिन्न-भिन्न संव्यवहारों में किये गये हैं, तब दोनों अपराधों के लिए एक विचारण करने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

उक्त संप्रेक्षण/निर्देश के साथ यह याचिका निपटायी जाती है।

माननीय प्रशान्त कुमार, न्यायमूर्ति

कमल कुमार गोयनका एवं अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं एक अन्य

दां॰ वि॰ या॰ सं॰ 204 वर्ष 2005. 9 सितंबर, 2009 को विनिश्चित।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 427, 501 एवं 502 के अधीन संज्ञान लेने वाली सम्पूर्ण कार्यवाही के अभिखंडन की प्रार्थना—यह अभिकथन कि समाचार पत्र में भ्रामक समाचार छापकर परिवादी की प्रतिष्ठा इत्यादि को क्षति कारित कराया गया था—अभिनिर्धारित, न तो धाराएँ 501 एवं 502 के अधीन ही कोई अपराध निर्मित हुआ है और न ही यह दर्शाने के लिए कुछ है कि परिवादी के किसी संपत्ति को अभियुक्त व्यक्ति द्वारा क्षति कारित की गयी थी ताकि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 427 को आकर्षित किया जा सके—लिया गया संज्ञान न्यायालय की प्रक्रिया का दुरूपयोग है—सम्पूर्ण कार्यवाही अभिखंडित। (पैरा 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.—M/s Prakash Chandra, Manoj Kr. Sinha, For the Petitioner; Mr. Mahesh Kumar Sinha, For the O.P. No. 2.

आदेश

यह याचिका दिनांक 9.3.2004 के श्री वी॰ के॰ तिवारी विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट, राँची द्वारा पारित आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अंतर्गत उन्होंने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 427, 501 और 502 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया था, सहित परिवाद केस सं॰ 781 वर्ष 2003 से संबंधित समस्त दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन हेतु दायर की गयी है।

2. ऐसा प्रतीत होता है कि परिवादी, विरोधी पक्षकार सं॰ 2 ने अवर न्यायालय में परिवाद याचिका दाखिल की है जिसमें अभिकथन किया गया है कि याचियों ने दैनिक प्रभात खबर में एक खबर छापी कि एम॰ सी॰ सी॰ ने पूरे झारखण्ड में बंद का आह्वान किया है। यह कथन किया गया है कि बंद का आह्वान सिर्फ पलामू और चतरा जिलों के लिए किया गया था। यह अभिकथन किया गया है कि परिवादी ने दिनांक 9.2.2003 को राँची में एक वृहत सेमिनार का आयोजन किया था। यह अभिकथन किया गया है कि मात्र उक्त सेमिनार को विफल करने हेतु दैनिक प्रभात खबर द्वारा उक्त खबर छापी गयी थी जिससे परिवादी को बहुत नुकसान हुआ। आगे यह अभिकथन किया गया है कि दिनांक 10.2.2003 को अभियुक्तों ने एक और खबर छापी कि न्यायालय के आदेश के विरुद्ध परिवादी द्वारा पूरे शहर में स्वागत द्वार, विज्ञापन पट्ट, आदि खड़ा किया था जिससे यातायात व्यवस्था में विघ्न पड़ा। यह अभिकथन किया गया है कि उपर्युक्त खबर परिवादी की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाती है। तद्नुसार, यह अभिकथन किया गया है कि भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 501, 502 और 427 के अधीन अपराध निर्मित होता है।

3. याचियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि समस्त परिवाद याचिका के परिशीलन से भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 427, 501 और 502 के अधीन कोई अपराध निर्मित नहीं होता है। यह निवेदन किया गया है कि परिशिष्ट-11 के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि दैनिक प्रभात खबर में एक आम खबर छपी थी कि माननीय उच्च न्यायालय के आदेश का उल्लंघन करते हुए राजनीतिक दलों और परिवादी सहित अन्यों ने सड़क पर स्वागत द्वार, विज्ञापन पट्ट, प्रतिकृति आदि खड़ा किया है जो शहर की यातायात व्यवस्था को बाधित करती है। यह निवेदन किया गया है कि खबर में ऐसा कुछ भी नहीं है जो परिवादी की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाता हो, अत: कल्पना के किसी विस्तार में इसे मानहानिकारक नहीं माना जा सकता है। यह निवेदन किया गया है कि परिवाद याचिका में ऐसा कुछ भी नहीं है जो दर्शाये कि याचियों ने कुछ अनिष्ट किया है। तद्नुसार, यह निवेदन किया गया है कि भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 427, 501 और 502 के अधीन अपराध नहीं हुआ है।

4. दूसरी ओर, विरोधी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि परिशिष्ट–11 के मुताबिक प्रकाशित खबर से परिवादी की प्रतिष्ठा को नुकसान कारित हुआ है, अत: भा॰ दं॰ सं॰ की धाराएँ 501 और 502 के अधीन अपराध बनता है।

5. किसी व्यक्ति को मानहानि के अपराध का दोषी ठहराने के लिए निम्नलिखित तीन आवश्यक अवयवों को सिद्ध करना अपेक्षित है:–

(1) किसी व्यक्ति से संबंधित लांछन लगाना या प्रकाशित करना।

(2) ऐसा लांछन निश्चित रूप से लगाया गया है,

(i) उच्चारित अथवा पठन हेतु आशयित शब्दो द्वारा; या

(ii) इशारों द्वारा; या

(iii) द्रष्टव्य प्रतिनिधित्व द्वारा।

(3) हानि के उद्देश्य से अथवा इस जानकारी के साथ अथवा इस विश्वास के साथ कि व्यक्ति, जिस पर लांछन लगाया गया है, की प्रतिष्ठा को हानि पहुँचेगी, ऐसा लांछन लगाया जाना जरुरी है।

6. परिवाद याचिका के परिशीलन से मैं पाता हूँ कि इस बात का सुझाव देने के लिए कुछ भी नहीं है कि कैसे दैनिक प्रभात खबर में छपी खबर (परिशिष्ट–11) ने परिवादी की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाया है। परिशिष्ट–11 प्रकट करता है कि परिवादी और अन्य राजनीतिक दलों द्वारा खड़े किए गए स्वागत द्वार, विज्ञापन पट्ट, आदि उच्च न्यायालय द्वारा पारित न्यायिक आदेश के विरुद्ध है। इस प्रकार, उक्त खबर में परिवादी के विरुद्ध कोई व्यक्तिगत लांछन नहीं लगाया गया है। अत: उक्त खबर किसी भी तरह परिवादी की प्रतिष्ठा को नुकसान नहीं पहुँचाती है। इसके अतिरिक्त, उक्त खबर भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 499 के तीसरे अपवाद के परिधि में आती है।

7. अत: मेरा सुविचारित राय है कि धारा 501, 502 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है। जहाँ तक भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 427 के अधीन अपराध का संबंध है, परिवाद याचिका में ऐसा कुछ भी नहीं है जो दर्शाता है कि अभियुक्त याचियों ने परिवादी के किसी संपत्ति को नुकसान पहुँचाया है। अत: उनके विरुद्ध रिष्टि का अपराध नहीं बनता है।

8. उक्त चर्चा के आलोक में, मैं पाता हूँ कि आदेश जिसके द्वारा संज्ञान लिया गया था, न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

9. परिणामस्वरूप, यह याचिका अनुज्ञात की जाती है। एतद्द्वारा परिवाद केस सं॰ 781 वर्ष 2003 से संबंधित समस्त दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

बिहार, झारखण्ड कर्मकार कल्याण संघ

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एल॰) सं॰ 5412 वर्ष 2007. 16 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947—धारा 33(C)(1)—प्रबन्धन टिस्को लि॰ एवं इसके कर्मकार संघ के बीच ट्राइपरटाईट करार किया गया–अधिशेषों के भुगतान के लिए संघ के सदस्यों द्वारा दावे किए गए–अभिनिर्धारित, उपदान, भविष्य निधि, अवकाश भुनाई, बोनस इत्यादि के प्रति धन के भुगतान हेतु दावें की भुगतान के निबंधनों में अभिस्वीकृति नहीं दी गयी

है–स्वयं दावा ही विवादित हे एवं इसे न्यायनिर्णित करने की जरूरत है–यह स्थिति स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 33 (C)(1) के प्रावधानों के अन्तर्गत श्रम आयुक्त की अधिकारिता की प्रयोज्यता को स्पष्टतः खारिज करता है–औ॰ वि॰ अधिनियम की धारा 33(C)(1) के अन्तर्गत दावों के आवेदन ग्रहण करने के श्रम आयुक्त के अस्वीकृति आदेश को बरकरार रखा गया। (पैरा 2 से 12)

अधिवक्तागण.–M/s Kalyan Roy, G.P. Roy, For the Petitioner; Mr. G.M. Mishra, For the Respondents.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री कल्याण रॉय और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री जी॰ एम॰ मिश्रा को सुना।

2. संयुक्त श्रम आयुक्त, झारखण्ड सरकार द्वारा पारित दिनांक 10.7.2007 के आदेश (परिशिष्ट-8)को इस रिट आवेदन में चुनौती दी गई है जिसके द्वारा, औद्योगिक विवाद अधिनियम (इसमें इसके पश्चात् अधिनियम के तौर पर निर्दिष्ट) की धारा 33(C)(1) के अधीन याची द्वारा दाखिल एक आवेदन को अभिनिर्धारित करते समय उन्होंने विवाद का निर्णय करने के लिए याचीगण को अधिनियम की धारा 33(C)(2) के अधीन श्रम न्यायालय के पास जाने का याचीगण को निर्देश दिया था। आक्षेपित आदेश को निरस्त करने और अधिनियम की धारा 33(C)(2) के अधीन आवेदन का निर्णय करने के लिए प्रत्यर्थीगण को एक निर्देश निर्गत करने के लिए याचीगण ने एक यथोचित रिट निर्गत करने की प्रार्थना की है।

3. प्रत्यर्थी टिस्को के प्रबंधन (प्रत्यर्थी सं॰ 6) की ओर से और प्रत्यर्थी उप-आयुक्त (प्रत्यर्थी सं॰ 5) की ओर से भी एक प्रति शपथपत्र दाखिल किया गया है।

4. याचीगण के मामले के तथ्य संक्षेप में निम्नांकित है:-

याची अपने सदस्यों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक संघ है और 1.1.1997 से 31.12.2001 की अवधि के बीच टाटा स्टील लिमिटेड से ई॰ एस॰ एस॰ योजना (पूर्व के पृथ्ककरण योजना) के अधीन सेवानिवृत्त हुए हैं।

त्रिपक्षीय समझौता के नाम से ज्ञात एक समझौता 29.9.2003 को टिस्को लिमिटेड के प्रबंध और टिस्को कर्मकार संघ के बीच हुआ था। समझौते के निबंधनों को वैसे कर्मचारीगण पर प्रयोज्य बनाया गया था जो ई॰ एस॰ एस॰ योजना के अधीन सेवानिवृत्त हुए थे और यह निर्णय किया गया था कि कर्मचारीगण को पहले से भुगतान किए गए अग्रिम का समायोजन करने के उपरांत 1.1.1997 से 31.12.2000 की अवधि के लिए उन्हें शेष राशि का भुगतान कर दिया जाएगा।

समझौते के आधार पर, याची संघ के सदस्यों ने इसके सदस्यों में से दो, अर्थात् ए॰ के॰ पाण्डेय एवं वी॰ सी॰ भण्डारी के लिए 1,85,075/- रुपए और 1,01,870/- रुपए के बकायों के भुगतान का दावा किया है। याची संघ के अन्य सदस्यों के संबंध में भी इसी प्रकार के दावे सामने रखे गए हैं।

जब बार-बार अभ्यावेदन करने के बावजूद, टिस्को लिमिटेड का प्रबंधन भुगतान करने में विफल रहा तो त्रिपक्षीय समझौते के क्रियान्वयन के लिए याची संघ ने उप-श्रम-आयुक्त, जमशेदपुर के समक्ष एक अभ्यावेदन दाखिल किया।

यद्यपि कार्यवाही में दोनों पक्ष उप-श्रम-आयुक्त, जमशेदपुर के समक्ष उपस्थित हुए थे परन्तु मामले का समाधान नहीं किया जा सका। तत्पश्चात्, अधिनियम की धारा 33(C)(1) के प्रावधानों के अधीन एक कार्यवाही को प्रारम्भ करने के लिए याची संघ ने प्रत्यर्थी सं॰ 2 के समक्ष एक आवेदन दाखिल किया।

जब अभ्यावेदन का तत्परता से निस्तारण नहीं किया गया, याची-संघ ने डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 4390 वर्ष 2006 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष रिट आवेदन दाखिल किया। दिनांक 1.9.2006 के आदेश से रिट आवेदन का निस्तारण करते हुए इस न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं॰ 2 को आवेदन का यथासंभव यथाशीघ्र निस्तारण करने का निर्देश दिया था।

इस न्यायालय के निर्देशों के अनुसरण में, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने दिनांक 10.7.2007 के आक्षेपित आदेश से याची-संघ द्वारा दाखिल आवेदन का निस्तारण कर दिया उन्हें यह निर्देश देते हुए कि वे उन्हें देय राशि का परिकलन के लिए श्रम न्यायालय के पास जायें।

5. आक्षेपित आदेश की आलोचना करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आक्षेपित आदेश यांत्रिक रूप से पारित कर दिया गया है, दिमाग के इस्तेमाल के बगैर और इस तथ्य का मूल्यांकन किए बगैर कि राशि के परिकलन का कोई प्रश्न ही नहीं था जो त्रिपक्षीय समझौते के निबंधनों के अधीन देय थी और उस राशि के संबंध में कोई विवाद नहीं है जो याची-संघ के सदस्यों को देय थी। विद्वान अधिवक्ता आगे स्पष्ट करते हैं कि दावा, जैसे कि याची द्वारा रखा गया था, त्रिपक्षीय समझौते के आधार पर था जो पक्षों के ऊपर बाध्यकारी था और चूँकि याची संघ के सदस्यों की ओर से इसके द्वारा दावा की गई राशियां त्रिपक्षीय समझौते के आधार पर थी, अत: नियोक्ता द्वारा देय राशि की वसूली के लिए यथोचित आदेश पारित करना पूर्णत: प्रत्यर्थी संख्या 2 के अधिकार क्षेत्र के भीतर था। अपना उत्तरदायित्व स्थानांतरित करके, प्रत्यर्थी सं॰ 2 ने अधिनियम की धारा 33(C)(1) के प्रावधानों के अधीन निहित अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करने की बजाय प्रकटत: अपने उत्तरदायित्व को त्याग कर दिया है।

6. इसके प्रतिकूल, प्रत्यर्थी नियोक्ता द्वारा लिया गया पक्ष यह है कि अधिनियम की धारा 33(C)(1) के प्रावधान के अधीन प्रत्यर्थी सं॰ 2 के समक्ष याची-संघ द्वारा यथा दाखिल आवेदन पूर्णत: भ्रामक है। यह स्पष्ट करना इप्सित किया गया है कि जैसा कि श्रम आयुक्त के समक्ष याची-संघ द्वारा दाखिल अभ्यावेदन से प्रतीत होगा, उनका दावा 1.1.1997 से 31.12.2000 के लिए उपदान, भविष्य निधि, लीव इन्कैशमेन्ट एवं बोनस के बकायों के भुगतान के लिए है।

त्रिपक्षीय समझौते के प्रावधानों को निर्दिष्ट करते हुए, प्रत्यर्थी प्रबंधन के अधिवक्ता ने यह सूचित करना चाहा कि समझौते की प्रावधान जो उपदान भविष्य निधि, लीव इन्कैशमेन्ट एवं बोनस इत्यादि के प्रयोजन के लिए परिकलन की घोषणा करते हैं, विनिर्दिष्ट रूप से अधिकथित करते हैं कि समझौते के पैरा 2.1 में दी गई तालिका में यथा इंगित भुगतान को मूल वेतन या महंगाई भत्ता के तौर पर नहीं माना जाएगा और इसलिए किसी अन्य प्रयोजन, जैसे कि वार्षिक बोनस, भविष्य निधि, टिस्को कर्मचारीगण के पेंशन योजना, भत्ते, उपदान, लीव इन्कैशमेन्ट एवं भत्तों, समयपूर्व पृथक्करण योजना के कारण अनुग्रहपूर्वक मासिक पेंशन भुगतान, चिकित्सीय पृथक्करण योजना, कर्मचारी पारिवारिक लाभ योजना इत्यादि के लिए इसकी गणना नहीं की जाएगी।

विद्वान अधिवक्ता तर्क देते हैं कि त्रिपक्षीय समझौते के उपरोक्त विनिर्दिष्ट घोषणा की दृष्टि में, उपदान, भविष्य निधि, लीव इन्कैशमेन्ट, बोनस इत्यादि के बकायों के भुगतान की याची-संघ की मांग ही इसको लेकर एक विवाद का विषय है कि समझौते के निबंधनों के अधीन ऐसे दावे के अधिकारी थे भी नहीं। विद्वान अधिवक्ता तर्क देते हैं कि जबतक कि इसको लेकर विवाद का समाधान नहीं होता कि याची-संघ के सदस्य उनके द्वारा रखे गए मौद्रिक दावे के अधिकारी है या नहीं, अधिनियम की धारा 33(C)(1) के प्रावधानों को आकर्षित नहीं किया जा सकता।

7. वर्तमान रिट आवेदन की समर्थनीयता को ही विवादित करते हुए और आक्षेपित आदेश को न्यायसंगत ठहराते हुए इसी प्रकार का एक पक्ष प्रत्यर्थी उप-श्रम-आयुक्त (प्रत्यर्थी सं॰ 5) द्वारा लिया गया है।

यह भी स्पष्टीकृत करना इप्सित किया गया है कि 17.12.2001 को तय किया गया त्रिपक्षीय समझौता पारिश्रमिक पुनरीक्षण से संबंधित था, जो 1.1.1997 से प्रभावी बनाया गया था परन्तु 1.1.1997 से 31.12.2000 की अवधि को वैचारिक तौर पर माना गया है और टाटा स्टील लिमिटेड के प्रबंधन एवं टाटा कर्मकार संघ के बीच तय पाए एक पश्चातवर्ती समझौते द्वारा इसपर सहमति बनी थी कि वैसे कर्मचारीगण, जो 1.1.1997 से 31.12.2001 तक कम्पनी की स्थायी पंजी पर रह गए थे, खण्ड 2.1 के माध्यम से समझौते में उल्लिखित तालिका के अनुसार 31.12.1996 को नियत उनके मूल वेतन और नियत महंगाई भत्ते के तत्सम अधिकतम तदर्थ राशि के लिए योग्य थे। तथापि, जो कर्मचारी 1.1.1997 को कम्पनी के स्थायी रॉल पर थे और ई॰ एस॰ एस॰ योजना के अधीन सेवानिवृत्त हुए थे और पृथक कर दिए गए थे और जिन्हें 1.1.1997 से 31.12.2000 की अवधि के बीच किसी भी कारण से सेवा से उन्मोचित कर दिया गया था, तालिका के अनुसार मूल वेतन और नियत महंगाई भत्ता के प्रयोज्य विस्तार के तत्सम भुगतान की राशि 1.1.1997 से कम्पनी के रॉल में उनके पार्थक्य की अवधि के दौरान ड्यूटी पर उनकी वास्तविक उपस्थिति से आनुपातिक रूप से सम्बद्ध किया गया था और उन्हें पहले ही भुगतान कर दिए गए तदर्थ भत्ते का समायोजन करके शेष राशि का भुगतान कर दिया गया था। भुगतान की गई ऐसी राशि को मूल वेतन या महंगाई भत्ते के तौर पर नहीं माना जाना था और इसलिए, कि इसकी किसी अन्य प्रयोजन, जैसे कि वार्षिक बोनस, भविष्य निधि, टिस्को कर्मचारीगण पेंशन योजना, उपदान, लीव इन्कैशमेन्ट, भत्तों, पेंशन/अनुग्रह राशि/पूर्विक पृथक्करण योजना के कारण मासिक भुगतान/चिकित्सीय पृथक्करण योजना/कर्मचारी परिवार कल्याण योजना इत्यादि के लिए गणना नहीं की जानी थी।

8. प्रतिद्वंदी निवेदन से जो तथ्य उद्भूत होते हैं वे निम्नांकित रूप से है:-

श्रम आयुक्त के समक्ष यथा की गई याची-संघ की मांग नियोक्ता से उनके द्वारा परिकलित विनिर्दिष्ट राशियों की वसूली के लिए थी जिनका उन्होंने दावा किया था। ऐसा दावा दिनांक 29.9.2003 के त्रिपक्षीय समझौते के निबंधनों पर आधृत था और उपदान, भविष्य निधि, अवकाश के नकद-भुगतान और बोनस इत्यादि के संबंध में भुगतानों के बकायों के दावों से संबंधित था।

तथापि, समझौते के खण्ड 2.4 में यथा इंगित निबंधन इंगित करते हैं कि समझौते के पैरा-2.1 में दी गई तालिका के अनुसार किए गए भुगतान को मूल वेतन या महंगाई भते के तौर पर नहीं माना जाएगा और इसलिए किसी अन्य प्रयोजन, जैसे कि वार्षिक बोनस, भविष्य निधि, टिस्को कर्मचारीगण पेंशन योजना, उपदान, लीव इन्कैशमेन्ट, पेंशन/अनुग्रह राशि पूर्व के पार्थक्य के कारण मासिक भुगतान/चिकित्सीय पृथक्करण योजना/कर्मचारी परिवार कल्याण योजना इत्यादि के लिए इसकी गणना नहीं की जाएगी।

9. समझौते के निबंधनों में उपरोक्त खण्ड के आलोक में उपदान, भविष्य निधि, लीव इन्कैशमेन्ट, बोनस इत्यादि को लेकर धन के भुगतान का दावा, जिसे प्रकटत: समझौते के निबंधनों में नहीं माना गया है, एक विवाद उत्पन्न करता है जिसको सक्षम प्राधिकार द्वारा अधिनिर्णीत करने की आवश्यकता है। यह नहीं कहा जा सकता कि त्रिपक्षीय समझौता पूर्वोल्लिखित शीर्षों के अधीन बकायों के भुगतान के याचीगण के दावे को मान्यता देता है इसलिए, याचीगण यह दावा नहीं कर सकते कि उनके द्वारा मांग की गई राशि का दावा करने और प्राप्त करने के उनके अधिकार का पहले ही त्रिपक्षीय समझौते के अधीन समाधान और निपटान किया जा चुका है।

10. अधिनियम की धारा 33 (C)(1) के प्रावधान निम्नांकित रूप से पठित है:–

''जहाँ एक समझौते या एक अधिनिर्णय के अधीन या अध्याय V-A या अध्याय V-B के प्रावधानों के अधीन एक नियोक्ता के एक कर्मकार को कोई धन देय है, तो स्वयं कर्मकारण या उसकी ओर से लिखित में उसके द्वारा प्राधिकृत कोई अन्य व्यक्ति या कर्मकार की मृत्यु की स्थिति में उसके समनुदेशिती उसके उत्तराधिकारी वसूली के किसी अन्य विधि को हानि किये बगैर उसे देय राशि की वसूली के लिए यथोचित सरकार के समक्ष एक आवेदन कर सकता है और अगर यथोचित सरकार को यह समाधान हो कि अगर कोई राशि इस प्रकार बकाया है, तो यह राशि के लिए समाहर्त्ता को एक प्रमाण-पत्र निर्गत करेगी जो उसी प्रकार इसे वसूल करने के लिए कार्यवाही करेगा जैसे कि वह भू-राजस्व के एक क्षेत्र में वह करेगाः

परन्तु यह कि ऐसा प्रत्येक आवेदन उस तिथि से एक वर्ष के भीतर किया जाएगा जिस तिथि को धन नियोक्ता से कर्मकार को देय हो गयाः

परन्तु यह भी कि ऐसा कोई आवेदन एक वर्ष की उक्त अवधि के बीत जाने के उपरांत भी ग्रहण किया जा सकता है अगर उपयुक्त सरकार को यह समाधान हो कि आवेदक के पास उक्त अवधि के भीतर आवेदन करने के लिए पर्याप्त कारण है।''

धारा 33 (C) की उप-धारा 1 के प्रावधान के एक कोरे पठन पर यह प्रयोजन होगी:-

(a) जहाँ एक समझौते के अधीन एक अधिनिर्णय के अधीन या अध्याय V-A के प्रावधानों के अधीन कोई धन बकाया हो।

(b) धारा 33(C)(1) के अधीन देय धन एक विनिर्दिष्ट राशि हो या गणितीय परिकलन या साधारण सत्यापन द्वारा इसको तय करना हो।

11. धारा 33(C)(2) के प्रावधान एक अधिक व्यापक परिधि प्रस्तुत करते हैं और केवल समझौते या अधिनिर्णय मामलों या अधिनियम के अध्याय V-A के अधीन मामलो में ही नहीं अपितु अन्य मामलो में भी लागू होते हैं। जहाँ बकाया राशि विनिर्दिष्ट न हो या धन के निबंधनों में परिकलन योग्य लाभ का अभिनिर्धारण नहीं किया गया हो, धारा 33C(2) के प्रावधान आकर्षित होंगे क्योंकि श्रम न्यायालय को इसके द्वारा पता लगाए जाने वाली और लागू की जाने वाली परिकलन की एक प्रक्रिया द्वारा बकाया धन का अभिनिर्धारित करना होगा।

धारा 33(C)(2) एक श्रम न्यायालय को परिकलित की जाने वाली राशि को प्राप्त करने के अधिकार की वे जाँच करने और निर्णीत करने में सक्षम बनाती है। बशर्ते यह कि उस अधिकार का अभिनिर्धारण परिकलन के प्रासंगिक या आनुषंगिक हो।

12. जैसा कि वर्तमान मामले के तथ्यों से प्रतीत होता है, त्रिपक्षीय समझौते के निबंधन नियोक्ता से याचीगण द्वारा वसूल किए जाने के लिए इप्सित राशि पर उनके अधिकार की विनिर्दिष्टत: घोषणा नहीं करते है। वस्तुत: दावा ही विवादित है और इसे अधिनिर्णीत किए जाने की आवश्यकता है। यह स्थिति स्वाभाविक रूप से अधिनियम की धारा 33(C)(1) के प्रावधानों के अधीन श्रम आयुक्त की अधिकारिता के इस्तेमाल को लागू करने की गुंजाईश को बाहर कर देनी है।

13. आक्षेपित आदेश द्वारा, श्रम आयुक्त ने उचित ही याचीगण को अधिनियम की धारा 33(C)(2) के प्रावधानों के अधीन या अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन यथा उठाए गए उनके धन के दावे से संबंधित विवाद के अधिनिर्णयन के लिए सक्षम प्राधिकार से एक यथोचित आदेश से प्राप्त करने का निर्देश दिया है। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश में कोई अवैधानिकता या अनौचित्य नहीं है।

14. उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों के आलोक में, मैं इस आवेदन में कोई गुण नहीं पाता हूँ, तद्नुसार यह खारिज किया जाता है।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

त्रिबेणी पाण्डेय एवं एक अन्य

बनाम

बिशुन देव (सुदामा) पाण्डेय

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5515 वर्ष 2008. 10 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश VI, नियम 17 सह-पठित धारा 151—मूल प्रतिवादी द्वारा संशोधन आवेदन—ऐसी याचिका पर आदेश से व्यथित होकर याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के माध्यम से अभिखंडन की ईप्सा की—अभिनिर्धारित, प्रस्तावित संशोधन लिखित कथन की प्रकृति को परिवर्तित नहीं करता है—संशोधन को अनुज्ञात करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही वाद व्यय अधिनिर्णित कर दिया गया है—आक्षेपित आदेश में कोई अशक्तता नहीं—हस्तक्षेप से इनकार किया गया। (पैरा 2 एवं 3)

अधिवक्तागण.—Mr. A.K. Rashidi, For the Petitioners.

आदेश

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश VI, नियम 17 के अधीन मूल प्रतिवादी द्वारा दाखिल एक आवेदन पर अभिधान वाद सं॰ 40 वर्ष 1999 (याचिका के ज्ञापन में परिशिष्ट-5) में अपर मुंसिफ द्वारा पारित दिनांक 15 सितम्बर, 2008 के आदेश के विरुद्ध भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका दाखिल की गई है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता को सुनकर और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए, मैं मुख्यत: निम्नांकित तथ्यों एवं कारणों से इस रिट याचिका को ग्रहण करने का कोई कारण नहीं पाता हूँ:-

(i) वर्तमान याची एक मूल वादी है जिसने अभिधान वाद सं॰ 40 वर्ष 1999 संस्थित किया है और उसके पक्ष में निष्पादित विक्रय-विलेख, जो एक निबंधित दस्तावेज है, के आधार पर वाद-सम्पत्ति के उपर एक अभिधान का दावा कर रहा है। उक्त तथाकथित निबंधित विलेख जिसपर मूल वादी काफी अधिक भरोसा कर रहा है, दिनांक 9.9.1994 का है;

(ii) यह प्रतीत होता है कि मूल प्रतिवादी द्वारा एक लिखित कथन दाखिल किया गया था जिसमें कई तथ्यों को इन्कार किया गया है जो वाद-पत्र में कथित किए गए हैं और मूल प्रतिवादी द्वारा दाखिल लिखित कथन के पैरा सं॰ 7 में वाद-पत्र के पैरा सं॰ 3 एवं 4 में किए गए प्रकथनों एवं अभिकथनों से इन्कार किया गया है। मूल प्रतिवादी द्वारा 20 दिसम्बर, 2000 को लिखित कथन दाखिल किया गया था।

(iii) यह प्रतीत होता है कि तत्पश्चात मूल प्रतिवादी ने लिखित कथन में संशोधन के लिए आदेश VI, नियम 17 के अधीन एक आवेदन आगे बढ़ाया गया था। यह आवेदन 11 जून, 2008 को दाखिल किया गया था और लिखित कथन के पैरा सं॰ 7 में मूल प्रतिवादी कतिपय प्रकथनों को जोड़ना चाहता है। उक्त संशोधन वर्तमान संकलन के पृष्ठ 44 पर है। प्रस्तावित संशोधन में यह कहा गया है कि तथाकथित दिनांक 9.9.1994 (वस्तुतः सही तिथि 9.9.1974 है) का विक्रय-विलेख अवैधानिक,

अप्रभावी और अप्रवर्तनीय हैं। मूल प्रतिवादी यह भी अभिलेख पर रखना चाहता है कि अभिधान वाद सं० 165 वर्ष 1955 में एक सक्षम न्यायालय द्वारा पहले भी एक निर्णय दिया गया है। यह वाद मोस्मात पानो कुंवारी के विरुद्ध मोती पाण्डेय एवं बनवारी पाण्डेय के द्वारा संस्थित किया गया था। मूल प्रतिवादी द्वारा यह भी अभिकथित किया गया है कि उक्त पानो कुँवारी जो एक विभाजन वाद सं० 165 वर्ष 1955 में एक प्रतिवादी था, कोई और नहीं, अपितु दिनांक 9.9.1974 के अभिकथित विक्रय-विलेख की निष्पादिका है। इस प्रकार, उक्त विक्रय-विलेख, जिसके आधार पर समूचा अभिधान वाद संस्थित किया गया है किसी भी गुण से रहित है और अनुपयुक्त एवं अवैधानिक है और प्रवर्तनीय नहीं है। विचारण न्यायालय द्वारा यह संशोधन अनुज्ञात किया गया है। इस तथ्य को देखते हुए कि इस संशोधन को अनुज्ञात करके यह नहीं कहा जा सकता कि समुचे लिखित कथन में एक पूर्ण-विचलन हो जाएगा। संशोधन आवेदन को अनुज्ञात किए जाने पर भी कोई नया मामला नहीं बनता है।

(iv) संशोधन की पूर्वोक्त प्रकृति को देखते हुए, मूल प्रतिवादी द्वारा दाखिल आवेदन को अनुज्ञात करके विचारण न्यायालय द्वारा कोई त्रुटि कारित नहीं की गई है। प्रस्तावित संशोधन लिखित कथन की समूची प्रकृति को चुनौती नहीं दे रहा है, इसके विपरित प्रस्तावित संशोधन पक्षों के बीच विवाद पर एक उचित निष्कर्ष पर पहुँचने में विचारण न्यायालय का कार्य सुगम बनाएगा। प्रस्तावित संशोधन लिखित कथन के पैरा 7 में प्रतिवादी द्वारा पहले ही लगाए गए बुनियादी अभिकथन का स्पष्टीकरण कर रहा है कि विक्रय-विलेख, जिसपर मूल वादी द्वारा भरोसा किया गया है, प्रवर्तनीय नहीं है। मामले के इस पहलु का विचारण न्यायालय द्वारा सही रूप से मूल्यांकन किया गया है। संशोधन अनुज्ञात करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा व्यय भी अधिनिर्णीत किया गया है। मूल प्रतिवादी द्वारा दाखिल लिखित कथन के पैरा सं० 7 को देखते हुए, सिविल प्रक्रिया संहिता के अध्याय VI, नियम 17 के अधीन संशोधन आवेदन को देखते हुए और लिखित कथन से संशोधन को अनुज्ञात करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को देखते हुए, इस रिट याचिका को ग्रहण करने का कोई कारण नहीं पाता। अभिलेख के मुख पर प्रकट त्रुटि की बात तो दूर रही, विचारण न्यायालय द्वारा कोई त्रुटि ही कारित नहीं की गई है।

3. पूर्वोक्त तथ्यों एवं कारणों के एक सम्मिलित प्रभाव के तौर पर, मैं एतद्द्वारा याचिका को खारिज करता हूँ और विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखता है जिसके आधार पर मूल-प्रतिवादी द्वारा संशोधन आवेदन दाखिल किया गया था।

4. तद्नुसार, इस रिट याचिका का एतद्द्वारा, निस्तारण इसके खारिजी के तौर पर किया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

कुलसुम बानो एवं एक अन्य

बनाम

सेण्ट्रल कोल फील्डस लिमिटेड, राँची एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 6626 वर्ष 2004. 14 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

सेवा विधि–अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति–अभिनिर्धारित, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की प्रार्थना मृतक-कर्मचारी की मृत्यु से चार महीनों के भीतर की गयी थी, यद्यपि, ऐसे आवेदन की तिथि पर मृतक-कर्मचारी का पुत्र अवयस्क था–NCWA करार के निबंधनों के अंतर्गत प्रत्यर्थी CCL अवयस्क को लाइव रोस्टर में रखने एवं उसके वयस्क हो जाने के उपरांत

अनुकंपा के आधार पर उसकी नियुक्ति पर विचार करने को बाध्य था–प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों ने याची के दावे पर विचार करने से जानबूझकर बचा–प्रत्यर्थीगण को दो महीनों की अवधि के भीतर नियुक्ति के लिए याची के दावे पर नये सिरे से निर्णय लेने का निर्देश दिया गया। (पैरा 8 एवं 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Rahul Gupta, For the Petitioners; Mr. Ananda Sen, For the Respondent-C.C.L.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री राहुल गुप्ता और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री नागमणि तिवारी को सुना।

2. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए प्रतिद्वंदी निवेदनों से इस मामले के स्वीकृत तथ्य ये हैं:–

यह कि याची संख्या 1 का पति प्रत्यर्थी सी० सी० एल० के अधीन एक कर्मचारी था। उसकी मृत्यु सेवा में रहते हुये 7.4.2000 को हुई। मृतक कर्मचारी की मृत्यु तिथि से चार महीने के उपरांत एन० सी० डब्ल्यू० ए० समझौते के निबंधनों एवं शर्तों के अधीन याची संख्या 1 ने विधवा होने के नाते अपने पुत्र (याची सं० 2) को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करते हुए प्रत्यर्थी सी० सी० एल० के सम्बद्ध प्राधिकारों के समक्ष एक आवेदन दाखिल किया।

जवाब में, प्रत्यर्थी-सी० सी० एल० ने दिनांक 3.9.2000 को एक पत्र निर्गत किया था, यह कहते हुए कि चूँकि याची का पुत्र जिसके लिए दावा किया गया है, एक अवयस्क है, इसलिए, अनुकंपा के आधार पर उसके पुत्र (याची सं० 2) को नियुक्ति प्रदान करने के लिए याची सं० 1 की प्रार्थना को अस्वीकृत किया जाता है।

तत्पश्चात्, याची सं० 1 ने 12.7.2002 को दुसरा आवेदन दाखिल किया, अपने पुत्र को अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने की अपनी पूर्व के प्रार्थना को दुहराते हुए, इस आधार पर कि उस तिथि तक उसका पुत्र वयस्कता की आयु प्राप्त कर चुका था।

कोई तत्पर निर्णय लेने के स्थान पर प्रत्यर्थीगण ने मामले को लम्बित रखा और अन्ततः दिनांक 6.8.2004 के आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-8) द्वारा याची के पुत्र को अनुकंपा पर आधृत नियुक्ति की उसकी प्रार्थना को अस्वीकार करते हुये उनके निर्णय को संसूचित कर दिया। प्रार्थना के अस्वीकरण के लिए, उसमें कथित एकमात्र आधार यह था कि उसके पुत्र, अर्थात् याची सं० 2 का नाम मृतक कर्मचारी के सेवा अभिलेखों में उपस्थित नहीं था।

3. याची ने अन्य के साथ-साथ निम्नांकित आधारों पर आक्षेपित आदेश को चुनौती दी है:-

(i) जिस आधार पर अनुकंपा आधृत नियुक्ति की प्रार्थना को अस्वीकार किया गया है, वह पूर्णतः मिथ्या, दिग्भ्रमित करने वाला और भ्रामक है। मृतक-कर्मचारी के सेवा अभिलेख वास्तव में याची सं० 2 के नाम को प्रतिबिम्बित करते हैं।

श्री गुप्ता ने इस आधार का विशदीकरण करते हुए स्पष्ट किया कि याची ने रिट आवेदन में विनिर्दिष्ट रूप से कथित किया है कि सेवा अभिलेखों में, स्वयं मृतक कर्मचारी द्वारा यथा घोषित याची सं० 2 के नाम का उल्लेख है। परिशिष्ट-1, जो तात्पर्यित रूप से मृतक कर्मचारी के सेवा अभिलेख का अंग है, को निर्दिष्ट करते हुए

विद्वान अधिवक्ता स्पष्ट करते हैं कि इसके काफी पहले 25.4.1997 को मृतक कर्मचारी द्वारा दी गई घोषणा अन्तर्विष्ट है, जब कर्मचारीगण के परिवार के सदस्यों के नामो से संबंधित स्तम्भों समेत सुसंगत स्तम्भों को भरने के लिए सभी कर्मचारीगण को निर्गत एक सामान्य परिपत्र के माध्यम से नियोक्ता द्वारा ऐसा करने को कहा गया था। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार परिशिष्ट-1 याची सं० 2, अर्थात् सरफराज अख्तर के नाम को निहित करता है, जो घोषणा की तिथि यानि अप्रैल, 1997 को लगभग चार वर्ष का था। विद्वान अधिवक्ता जोड़ते हैं कि पूर्वोक्त घोषणा न केवल इस तथ्य को संपुष्ट करती है कि याची सं॰ 2 मृतक कर्मचारी का पुत्र है अपितु इस तथ्य को भी कि अप्रैल, 1992 से वह चार वर्ष की आयु का था और 2001 में उसने अपनी वयस्कता की आयु प्राप्त कर ली थी।

(ii) यह कि अन्यथा भी, पूर्व के किसी भी पत्राचार में, प्रत्यर्थी-सी० सी० एल० ने ऐसा कोई आधार लिया था और इसके विपरीत दिनांक 29.9.2000 की पूर्व के संसूचना के अनुसार याची की प्रार्थना के अस्वीकारने का आधार यह था कि याची सं० 2 आवेदन की तिथि को एक अवयस्क था।

विद्वान अधिवक्ता यह भी जोड़ते हैं कि पूर्व के अवसर पर उठाए गए विवाद का इन पहलुओं पर विचार करके, इस न्यायालय ने दिनांक 25.1.2006 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी-सी० सी० एल० को उनके प्रति-शपथपत्र में मृतक कर्मचारी की सेवा पुस्तिका की मूल प्रति के साथ उसकी प्रतिलिपि को भी संलग्न करने का निर्देश दिया था। विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यद्यपि प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया है परन्तु प्रत्यर्थीगण द्वारा मृतक कर्मचारी की सेवा पुस्तिका के न तो मूल और न ही इसकी प्रति को पेश किया गया है।

4. दूसरी ओर, सी॰ सी॰ एल॰ के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थीगण ने उचित ही अनुकंपा आधृत नियुक्ति के लिए याची के दावे को अस्वीकृत किया है, आधारत:, इस तथ्य की दृष्टि में कि मृतक कर्मचारी के सेवा-अभिलेख याची सं॰ 2 के नाम का मृतक कर्मचारी के पुत्र के तौर पर उल्लेख नहीं करते। विद्वान अधिवक्ता यह भी स्पष्ट करते हैं कि मृतक कर्मचारी द्वारा अपने जीवन काल में उपदान नाम निर्देशन फार्म एल॰ टी॰ सी॰/एल॰ एल॰ टी॰ सी॰ विकल्प फार्म और सी॰ एम॰ पी॰ एफ॰ में की गई घोषणा याची सं॰ 2 के नाम को प्रतिबिम्बित नहीं करती और ऐसी परिस्थितियों के अधीन प्रत्यर्थीगण-प्राधिकारीगण इस निष्कर्ष पर उचित ही पहुंचे हैं कि याची सं॰ 2 के इस दावे को सिद्ध करने के लिए कुछ नहीं है कि वह मृतक कर्मचारी का पुत्र है।

5. प्रति-शपथपत्र से, यह प्रतीत होता है कि रिट आवेदन में अन्तर्विष्ट कथनों के जवाब में, जिसमें परिशिष्ट-1 का एक संदर्भ दिया गया है, जो तात्पर्यित रूप से मृतक कर्मचारी की सेवा पुस्तिका के अंश है, प्रत्यर्थीगण ने विनिर्दिष्टत: इनसे इन्कार नहीं किया है और मात्र यह अधिकथित किया है कि रिट आवेदन के सम्बद्ध पैरा में अन्तर्विष्ट कथन जिन्हें परिशिष्ट-1 में निर्दिष्ट किया गया है अभिलेख की सामग्री है।

6. दस्तावेज (परिशिष्ट-1)की विशुद्धता के बारे में प्रत्यर्थीगण के किसी इन्कार की अनुपस्थिति में, प्रत्यर्थीगण का मात्र नाम-निर्देशन फार्मों में याची सं॰ 2 के नाम की अनुपस्थिति के आधार पर यह आख्यापित नहीं कर सकते कि याची सं॰ 2 मृतक कर्मचारी का पुत्र नहीं है या यह कि मृतक कर्मचारी के सेवा अभिलेख मृतक कर्मचारी के पुत्र के तौर पर याची सं॰ 2 के नाम को धारण या घोषित नहीं करते।

7. उपरोक्त तथ्य मात्र यह इंगित करते हैं कि मृतक कर्मचारी की मृत्यु की तिथि से चार महीने के भीतर अनुकंपा नियुक्ति की प्रार्थना कर दी गई थी और यद्यपि ऐसे आवेदन की तिथि को मृतक-कर्मचारी का पुत्र एक अवयस्क था, फिर भी एन॰ सी॰ डब्ल्यू॰ ए॰ समझौते के निबंधनों के अधीन प्रत्यर्थी सी॰ सी॰ एल॰ अवयस्क का नाम सक्रिय रोस्टर में रखने और उसके द्वारा वयस्कता की

आयु प्राप्त कर लेने के उपरांत अनुकंपा के आधारों पर उसे नियुक्ति प्रदान करने पर विचार करने के लिए बाध्य था। प्रक्रिया का अनुपालन करने की बजाय प्रत्यर्थीगण प्राधिकारियों ने सत्यता एवं सत्यनिष्ठा से अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए याची द्वारा किए गए दावे पर विचार करने से आशयित रूप से बचना चाहा है। प्रकटत: प्रत्यर्थीगण की ओर से की गई भूलों एवं कार्यवाही न करने के कारण अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए याची की प्रार्थना पर यथोचित निर्णय लेने में काफी विलम्ब हो चुका है।

8. उपरोक्त निवेदनों के आलोक में, मैं इस रिट आवेदन में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार, यह रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है। याची सं॰ 1 के पुत्र (याची सं॰ 2) को अनुकंपा आधृत नियुक्ति प्रदान करने के उसके दावे को अस्वीकार करने वाला दिनांक 6.8.2004 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है। इस आदेश की एक प्रति को प्राप्ति/पेश करने की तिथि से दो महीने की एक अवधि के भीतर याची सं॰ 2 को अनुकंपा आधृत नियुक्ति प्रदान करने के याची के आवेदन पर फिर से एक निर्णय लेने का प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है इस तथ्य की दृष्टि में कि यह प्रत्यर्थीगण-प्राधिकारियों की गलती थी जिसके कारण एक निर्णय लेने में काफी विलम्ब हुआ है। प्रत्यर्थीगण प्रभावी रूप से अपना निर्णय याची को संसूचित करेंगे।

9. प्रत्यर्थी-सी॰ सी॰ एल॰ के विद्वान अधिवक्ता को इस आदेश की एक प्रति प्रदान कर दी जाय।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल एवं आर॰ आर॰ प्रसाद, न्यायमूर्तिगण

नागेश्वर मंडल एवं एक अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य

दांडिक अपील (डी॰ बी॰) सं॰ 301 वर्ष 2009. 11 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 389—दण्डादेश का निलम्बन–अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दण्डित किया गया–अपील लम्बित–अभिनिर्धारित, अपीलार्थीगण के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला निर्मित हुआ है, प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य सम्पोषित किया जाता है–अपील के लम्बित रहने के दौरान साक्ष्यों के सूक्ष्म विश्लेषण को अस्वीकार किया गया–दण्डादेश के निलम्बन से इन्कार किया गया।

(पैरा 6 एवं 12)

निर्णयज विधि.–(2002)9 SCC 366; (2004)6 SCC 175; A.I.R. 2008 SC 1882.

अधिवक्तागण.–Mr. Mahesh Tiwari, For the Appellants; Mr. Awani Kant Prasad, For the State.

Oral Order per D.N. Patel, J.–दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और साक्ष्य एवं विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय तथा दोषसिद्धि के आदेश एवं दण्डादेश को देखने के बाद इस अपील को अंतिम सुनवाई के लिए स्वीकार किया जाता है।

2. जामा पी॰ एस॰ केस सं॰ 76 वर्ष 2005 से उद्भूत सत्र केस सं॰ 51 वर्ष 2006/46 वर्ष 2006 के अभिलेखों और कार्यवाहियों को विद्वान चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰, दुमका के न्यायालय से भेजने को कहा गया है।

3. झारखण्ड उच्च न्यायालय नियमावली, 2001 के नियम 191 के अधीन यथा अपेक्षित अभिलेख पुस्तिका का स्वच्छ टंकण करके तैयार करने एवं अभिलेख पर रखने का निर्देश रजिस्ट्री को दिया जाता है।

4. हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को इस अपील के लंबित रहने के दौरान भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन मुख्यत: सजायोग्य अपराध के लिए विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण-अभियुक्तों को दंण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 389 के अधीन दी गयी सजा के निलंबन हेतु सुना है।

5. अपीलार्थीगण-अभियुक्तों के विद्वान अधिवक्ता ने मामले पर विस्तारपूर्वक अपना तर्क दिया है और अभियोजन गवाहों एवं अभिसाक्ष्यों की बारीकियों को इंगित किया है और निवेदन किया है कि विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण-अभियुक्तों को दी गयी सजा को इस अपील के लंबित रहने के दौरान निर्लंबित किया जाना चाहिए।

6. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने एवं अभियोजन गवाहों के साक्ष्यों को देखने के बाद यह प्रतीत होता है कि वर्तमान अपीलार्थीगण अभियुक्तों के विरुद्ध एक प्रथम दृष्टया मामला बनता है। चूँकि दांडिक अपील लंबित है, अत: हम अभिलेख पर लाए गए साक्ष्यों का ज्यादा विश्लेषण नहीं कर रहे है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि अभियोजन का सारा मामला चश्मदीद गवाह अर्थात् अ॰ सा॰ 6 जो मृतक की माता है सहित अनेक अभियोजन गवाहों के अभिसाक्ष्यों पर आधारित है। उसके अभिसाक्ष्य को देखते हुए प्रथम दृष्टया यह प्रतीत होता है कि दोनों अपीलार्थीगण-अभियुक्तों के विरुद्ध मामला बनता है। द्वितीयत: उसका कथन अन्य अभियोजन गवाहों के अभिसाक्ष्यों से संपुष्ट होता है, विशेषत: अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 2 द्वारा जो चश्मदीद गवाह (अ॰ सा॰ 6) द्वारा किए गए शोर-गुल को सुनकर तुरत आए थे। इस प्रकार, अ॰ सा॰ 1 और अ॰ सा॰ 2 मृतक पर हुए हमले के तुरंत बाद आए थे। उनके अभिसाक्ष्यों को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि यह चश्मदीद गवाह के अभिसाक्ष्य की संपुष्टि करता है। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 5, जो डॉ॰ चंद्रेश्वर प्रसाद सिन्हा है, के अभिसाक्ष्य को देखने पर यह प्रतीत होता है कि चश्मदीद गवाह (अ॰ सा॰ 6) के अभिसाक्ष्य का पर्याप्त सम्पोषण होता है। इस प्रकार अभियोजन गवाहों के साक्ष्यों को देखते हुए प्रतीत होता है कि दोनों अपीलार्थीगण-अभियुक्तों के विरुद्ध दृष्टया मामला बनता है।

7. अपीलार्थीगण-अभियुक्तों के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया है कि चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यदर्शी साक्ष्य में विरोधाभास है।

8. हमने अ॰ सा॰ 6, अ॰ सा॰ 1, अ॰ सा॰ 2 और अ॰ सा॰ 5 जो डॉ॰ चन्द्रेश्वर प्रसाद सिन्हा है के साक्ष्यों का परिशीलन किया है। अभिसाक्ष्यों और अपराध की गंभीरता, सजा की मात्रा और अभियोजन द्वारा अभिकथित घटना घटने के तरीके को देखते हुए और दंण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के अधीन वर्तमान चरण को देखते हुए भी, हम इस चरण पर इन बारीकियों, जैसे क्या उपहति मृतक के मस्तक अथवा गर्दन पर कारित हुई थी, पर निर्णय करके सजा के निलंबन का लाभ प्रदान करने के इच्छुक नहीं है। चिकित्सीय साक्ष्य को देखते हुए यद्यपि यह प्रतीत होता है कि मृतक के मस्तक पर भी उपहति हुई है लेकिन अभियोजन गवाहों में से एक ने 'गर्दन' शब्द का भी प्रयोग किया है। चिकित्सीय साक्ष्य के मुताबिक मृतक को मस्तक पर हुई उपहति को देखते हुए सिर्फ 'गर्दन' अथवा 'मस्तक' शब्द के प्रयोग के कारण हम सजा को निलंबित करना नहीं चाहते है।

9. (2002)9 एस॰ सी॰ सी॰ 366 में प्रकाशित रामजी प्रसाद बनाम रतन कुमार जायसवाल और एक अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पैराग्राफ 3 में यह अभिनिर्धारित किया गया है जो निम्नलिखित है:-

> *"3. एक ऐसे मामले में, जहाँ एक अभियुक्त भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा दोषी पाया गया है, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा ऐसा असाधारण रुख अख्तियार करने का कारण नहीं दर्शाया गया है। ऐसे मामलों*

में सामान्य परिपाटी सजा निलंबित नहीं करने की है और सिर्फ असाधारण मामलों में ही सजा के निलंबन का लाभ प्रदान किया जा सकता है।'' (जोर दिया हुआ)

10. (2004)6 एस॰ सी॰ सी॰ 175 में प्रकाशित **हरियाणा राज्य बनाम हसमत** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 6 से 9 पर निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"6. संहिता की धारा 389 अपील के लम्बित रहने के दौरान सजा के निष्पादन के निलंबन और अपीलार्थी को जमानत पर निर्मुक्ति से संबंध रखती है। जमानत और सजा के निलंबन के बीच एक भिन्नता है। सजा के निष्पादन अथवा आदेश जिसके विरूद्ध अपील की गई है, के निलंबन का आदेश देते समय अपीलीय न्यायालय से लिखित रूप से कारण दर्ज किए जाने की अपेक्षा धारा 389 के आवश्यक अवयवों में से एक है। यदि वह परिरोध में है, तो उक्त न्यायालय उसे जमानत पर अथवा स्वयं उसके बंधपत्र पर निर्मुक्त करने का निर्देश दे सकता है। लिखित रूप से कारण दर्ज किए जाने की अपेक्षा स्पष्ट दर्शाती है कि प्रासंगिक पहलुओं पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिए और सजा के निलंबन अथवा जमानत मंजूर करने का निर्देश देने वाला आदेश भी दिनचर्या के तौर पर पारित नहीं किया जाना चाहिए।

7. अपीलीय न्यायालय कर्तव्य बद्ध है कि वह मामले की वस्तुपरक समीक्षा करें और इस निष्कर्ष कि मामले में सजा के निष्पादन के निलंबन और जमानत देने की आवश्यकता है, हेतु कारण दर्ज करें। वर्तमान मामले में, सजा के निलंबन एवं जमानत का निर्देश देने हेतु एकमात्र कारक, जिसने उच्च न्यायालय को प्रभावित किया है, अभियुक्त-प्रत्यर्थी को पेरोल दिए जाने की अवधि के दौरान उसके द्वारा स्वतंत्रता के गलत उपयोग संबंधी अभिकथन की अनुपस्थिति है।

8. विद्वान सत्र न्यायाधीश गुड़गाँव ने दिनांक 24.10.2001 के निर्णय द्वारा अभियुक्त-प्रत्यर्थी को दोषी पाया था। दांडिक अपील सं० 100-डी० बी० वर्ष 2002 प्रत्यर्थी द्वारा दाखिल किया गया था। यह तथ्य कि अपील के लम्बित रहने के दौरान अभियुक्त-प्रत्यर्थी पेरोल पर था दर्शाता है कि आरंभ में अभियुक्त-प्रत्यर्थी को सजा के निष्पादन के निलंबन का लाभ नहीं दिया गया था। मात्र यह तथ्य कि पेरोल की अवधि के दौरान अभियुक्त ने स्वतंत्रता का गलत उपयोग नहीं किया है, सजा के निष्पादन के निलंबन और जमानत देना अनिवार्य नहीं बनाता है। वास्तव में उच्च न्यायालय द्वारा इस पर विचार किया जाना जरुरी था कि क्या सजा के निष्पादन के निलंबन और तत्पश्चात् जमानत देने का कारण है। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने सही सिद्धान्त दृष्टि में नहीं रखा है।

9. विजय कुमार बनाम नरेन्द्र और रामजी प्रसाद बनाम रत्तन कुमार जायसवाल मामलों में इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है भा० दं० सं० की धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि अंतर्ग्रस्त करने वाले मामलों में सिर्फ असाधारण मामलों में ही सजा के निलंबन का लाभ दिया जा सकता है। उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश इस अपेक्षा को पूरा नहीं करता है। विजय कुमार मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भा० दं० सं० की धारा 302 के अधीन सजायोग्य हत्या जैसे गंभीर अपराध वाले मामले में जमानत की प्रार्थना पर विचार करते हुए न्यायालय को प्रासंगिक कारकों, जैसे अभियुक्त के विरुद्ध लगाये गये आरोप की प्रकृति, अपराध करने के तरीके का अभिकथन, अपराध की गंभीरता और जब अभियुक्तों को हत्या जैसे गंभीर अपराध करने के लिए दोषसिद्ध किया जा चुका है तो जमानत पर निर्मुक्ति की वांछनीयता पर विचार करना चाहिए। उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय इन पहलूओं पर विचार नहीं किया है।'' (जोर दिया हुआ)

11. ए॰ आई॰ आर॰ 2008 एस॰ सी॰ 1882 में प्रकाशित **खिलारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं एक अन्य** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पैराग्राफ 10 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:-

"10. अनवरी बेगम बनाम शेर मोहम्मद एवं एक अन्य [2005 (7) एस० सी० सी० 326] के मामले में, अन्य बातों के साथ, निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया थाः-

"7. उच्च न्यायालय के आदेश को सरसरी तौर पर देखने से ही पता चलता है कि विवेक का उपयोग बिल्कुल नहीं किया गया है। यद्यपि जमानत याचिका पर आदेश पारित करते समय न्यायालय को साक्ष्यों के विस्तृत परीक्षण और मामले के गुणागुणों के विस्तृत दस्तावेजीकरण से बचना चाहिए, फिर भी जमानत याचिकाओं पर विचार करते समय न्यायालय को संतुष्ट होना चाहिए कि क्या प्रथम दृष्टया मामला बनता है लेकिन मामले के गुणागुणों का विस्तृत अन्वेषण आवश्यक नहीं है। जमानत याचिकाओं पर विचार करते समय न्यायालय से न्यायोचित तरीके से, न कि दिनचर्या के विषय के तौर पर, स्वविवेक का प्रयोग अपेक्षित है।

8. आदेश में प्रथम दृष्टया निष्कर्ष निकालने के पीछे उन कारणों को दर्शाने की आवश्यकता होती है कि जमानत क्यों दिया जा रहा है विशेषतः जब अभियुक्त पर गंभीर अपराध करने का आरोप है। जमानत याचिकाओं पर विचार करने वाले न्यायालयों के लिए आवश्यक है कि अन्य परिस्थितियों के अतिरिक्त, जमानत देने से पहले, निम्नलिखित कारकों पर भी विचार करेः-

1. आरोप की प्रकृति और दोषसिद्धि की स्थिति में सजा की कठोरता और समर्थनकारी साक्ष्यों की प्रकृति;

2. गवाह से छेड़छाड़ करने की युक्तियुक्त आशंका अथवा परिवादी को धमकी की आशंका;

3. आरोप के समर्थन में न्यायालय की प्रथम दृष्टया संतुष्टि।

ऐसे कारणों से असंबद्ध कोई भी आदेश विवेक की अप्रयोज्यता से ग्रस्त है जैसा कि राम गोविन्द उपाध्याय बनाम सुदर्शन सिंह एवं अन्य [2002)3 एस० सी० सी० 598]; पूरन आदि बनाम रामविलास एवं एक अन्य [(2001)6 एस० सी० सी० 338] और कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन उर्फ पप्पू यादव एवं अन्य [जे० टी० 2004 (3) एस० सी० 442] मामलों में इस न्यायालय ने चिन्हित किया है।''

(जोर दिया हुआ)

12. उपर्युक्त मामले में जमानत सिर्फ इस आधार पर दे दिया गया था कि मृत्यु पूर्व उपहतियों में से कुछ लोहे के छड़ से कारित नहीं हो सकती थी और यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ऐसा आदेश दंण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के अधीन सजा के निलंबन के चरण पर पोषणीय नहीं है। वर्तमान मामले के तथ्यों में भी चिकित्सीय साक्ष्य और आँखों देखी साक्ष्य के बीच भिन्नता पर काफी तर्क किया गया है। जैसा कि इसमें ऊपर में बताया गया है हम इस चरण पर साक्ष्य की बारीकियों का विश्लेषण करके, विचारण न्यायालय द्वारा दोनों अपीलार्थीगण-अभियुक्तों को दी गयी सजा के निलंबन के पक्ष में नहीं है। सजा के निलंबन हेतु की गयी प्रार्थना में कोई सार नहीं है और इसलिए इसे एतद्द्वारा अस्वीकार किया जाता है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

शर्मिष्ठा सिन्हा (6768 में)

मीरा प्रसाद (6729 में)

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6768, 6729 वर्ष 2002. 17 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

(क) छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908—धारा 71A—प्रत्यावर्तन–''छपरबंदी'' जमीन के प्रत्यावर्तन के लिए सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71 के अधीन कोई कार्यवाही प्रारम्भ नहीं की जा सकती। (पैरा 13 एवं 14)

(ख) छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908–सह-पठित परिसीमा अधिनियम, 1963—अधिकारिता–एक युक्तिसंगत समय के भीतर उपायुक्त के द्वारा सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के अधीन शक्ति का इस्तेमाल किया जा सकता है–''छपरबंदी'' जमीन के हस्तांतरण को चुनौती देने के लिए 38 वर्षों या 50 वर्षों का अन्तराल परिसीमा द्वारा वर्जित है। (पैरा 16 से 18)

(ग) शब्द एवं मुहावरे–पूर्व-न्याय–अगर पूर्व के अवसर पर प्रत्यावर्तन का आवेदन खारिज किया गया है और यह अन्तिम रूप ले चुका है तब जमीन के प्रत्यावर्तन के लिए पश्चातवर्ती आवेदन पूर्व-न्याय के सिद्धान्तों द्वारा बाधित होगा। (पैरा 18)

निर्णयज विधि.–2004(4) JLJR 109; 2008(2) JCR 1(SC); (2000)5 SCC 141; 1987 BLT 332 (Pat.) (RB); 2003(3) JLJR 626; 2004(2) JLJR 253; 1989 BLT (Reports) 407; 2004(1) JCR 237 (Jhr.); 2004(1) JLJR 515 : 2004(2) JCR 107 (Jhr.); 1990(1) PLJR 604; 1996(2) PLJR 719; 2001(1) JLJR 165; (2007)1 JCR 137 (Jhr.); 2006(3) JCR 204 (Jhr.); 2004(4) JCR 535 (Jhr.); 2003(4) JCR 233 (Jhr.); AIR 1992 SC 195; 1980 PLJR 139; 1988 PLJR 211—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Amar Kumar Sinha, Ayush Aditya, For the Petitioners; M/s Subha Jha, Arbind Kumar Jha, For Respondent No. 5.

आदेश

राँची एस॰ ए॰ आर॰ पुनरीक्षण सं॰ 46/1997 में आयुक्त, दक्षिणी छोटानागपुर डिवीजन, राँची द्वारा पारित दिनांक 25.11.2002 के सम्मिलित आदेश के विरुद्ध इन दो रिट याचिकाओं को दाखिल किया गया है। आयुक्त का यह आदेश डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 6768/2002 में परिशिष्ट-7, डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 6729/2002 में परिशिष्ट-5 के तौर पर संलग्न किया गया है, जिसके द्वारा पुनरीक्षण शक्ति के इस्तेमाल में विद्वान आयुक्त ने एस॰ ए॰ आर॰ अपील सं॰ 18R, 15/94-95 में उप-आयुक्त, राँची द्वारा पारित दिनांक 30.10.1996 के आदेश को अपास्त किया है और प्रत्यर्थी सं॰ 5 बंधन उरांव द्वारा दाखिल पुनरीक्षण आवेदन को अनुज्ञात कर दिया है।

2. सुसंगत तथ्य, संक्षेप में, ये हैं कि छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन एक कार्यवाही, एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 26/89-90 खाता सं॰ 121 के भीतर 52 डिसमिल क्षेत्रफल वाली प्लॉट सं॰ 1589 से सम्बद्ध जमीन के प्रत्यावर्तन के लिए श्रीमती प्रतिमा बख्शी (प्रत्यर्थी सं॰ 6) के विरुद्ध बन्धन उरांव, पिता–सनिचरवा उरांव (इसमें प्रत्यर्थी सं॰ 5) द्वारा किए गए आवेदन पर प्रारम्भ की गई थी। इस आधार पर इसका दावा किया गया था कि आवेदक बंधन उरांव को अवैधानिक रूप से उक्त भूमि से कब्जा-विहीन किया गया था यद्यपि वह अभिलिखित अभिधारी का वंशज है, और अनुसूचित जनजाति का एक सदस्य है। एस॰ ए॰ आर॰ पदाधिकारी के समक्ष पूर्वोक्त कार्यवाही में रिट याचीगण शर्मिष्ठा सिन्हा और मीरा प्रसाद को पक्षकार प्रत्यर्थीगण के तौर पर जोड़ा गया था क्योंकि उन्होंने निर्बंधित विक्रय विलेखों के माध्यम से विवादित भूमि का भाग खरीदा था।

3. विशेष पदाधिकारी एस॰ ए॰ आर॰ ने रिट याचिका के परिशिष्ट-3 में अन्तर्विष्ट दिनांक 30 नवम्बर, 1994 के अपने आदेश द्वारा प्रत्यावर्तन के आवेदन को खारिज कर दिया, मुख्यत: इस आधार पर कि 22.11.1957 को एक निर्बंधित कबूलियत द्वारा विवादित भूमि की प्रकृति परिवर्तित कर दी गई थी और भू-स्वामी की अनुमति से इसको 'छपरबंद' बना दिया गया था और इसलिए, छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A की 'छपरबंदी' जमीनों के एक मामले में कोई प्रयोज्यता नहीं है।

4. विशेष पदाधिकारी, एस॰ ए॰ आर॰ द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर बंधन उरांव (प्रत्यर्थी सं॰ 5) ने उपायुक्त, राँची के समक्ष एक अपील दाखिल की जिसे एस॰ ए॰ आर॰ अपील सं॰ 18R, 15/94-95 के तौर पर पंजीकृत किया गया था। उपायुक्त ने परिशिष्ट-4 में अन्तर्विष्ट दिनांक 30.10.1996 के आदेश के निबंधनों के अधीन पक्षों की सुनवाई करने के उपरांत अपील को खारिज कर दिया और विशेष पदाधिकारी, एस॰ ए॰ आर॰ द्वारा पारित आदेश को संपुष्ट किया यह अभिनिर्धारित करते हुए कि छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A छपरबंदी जमीनों के मामले में लागू नहीं होती और यह कि जमीन के प्रत्यावर्तन के लिए आवेदक द्वारा दाखिल आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित था क्योंकि इसे 40 वर्षों के अन्तराल के उपरांत दाखिल किया गया था।

5. तत्पश्चात, विशेष पदाधिकारी द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध और उपायुक्त द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध एक पुनरीक्षण आवेदन दाखिल करके प्रत्यर्थी सं॰ 5, आयुक्त, दक्षिणी छोटानागपुर डिवीजन राँची के, समक्ष गया जिसे राँची एस॰ ए॰ आर॰ पुनरीक्षण सं॰ 14/1997 के तौर पर दर्ज किया गया। विद्वान आयुक्त ने परिशिष्ट-7 में अन्तर्विष्ट दिनांक 25.11.2002 के आक्षेपित आदेश द्वारा पुनरीक्षण आवेदन को अनुज्ञात कर दिया है और विशेष पदाधिकारी द्वारा पारित आदेश और साथ-साथ उपायुक्त, राँची द्वारा पारित आदेश को अपास्त कर दिया है और प्रत्यर्थी सं॰ 5 बंधन उरांव के पक्ष में प्रश्नाधीन जमीन का प्रत्यावर्तन करने का निर्देश दिया है। यही वह आदेश है, जिसे इन दोनों रिट याचिकाओं में इन दोनों रिट याचीगण द्वारा चुनौती दी गई है।

6. दोनों रिट याचिकाओं के याचीगण अर्थात्, शर्मिष्ठा सिन्हा एवं मीरा प्रसाद प्रश्नाधीन जमीनों के एक भाग के क्रेता हैं। याची शर्मिष्ठा सिन्हा ने 24.8.1990 को एक निर्बंधित विक्रय-विलेख द्वारा श्रीमती प्रतिमा बख्शी से 6.25 कट्ठा जमीन खरीदने का दावा किया है, जबकि डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 6729/2002 की याची मीरा प्रसाद ने दिनांक 31.4.1984 को एक निर्बंधित विक्रय-विलेख द्वारा श्रीमती शिबानी मुखर्जी से प्रश्नाधीन जमीन के 8 कट्ठे खरीदने का दावा किया है और उक्त शिबानी मुखर्जी, अर्थात उसकी विक्रेता ने दिनांक 8.4.1976 को एक निर्बंधित विक्रय-विलेख द्वारा श्रीमती प्रतिमा बख्शी से उक्त जमीन को खरीदा था।

7. याचीगण का मामला यह है कि प्रश्नाधीन जमीन, अर्थात खाता सं॰ 121 के अधीन 152 एकड़ क्षेत्रफल माप वाला प्लॉट सं॰ 1589 मूल रूप के सनिचरवा उरांव और सोमरा उरांव के पक्ष में अभिलिखित किया गया था, ये दोनों सोमरा उरांव के पुत्र थे। दिनांक 22.11.1951 के बन्दोबस्ती के एक निर्बंधित विलेख (परिशिष्ट-1) द्वारा प्लॉट संख्या 1589 की प्रकृति परिवर्तित कर दी गई थी और भूस्वामी नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह की अनुमति से अभिलिखित अभिधारी द्वारा इसे एक 'छपरबंदी' में सम्परिवर्तित कर दिया गया था। प्रश्नाधीन जमीनों के 'छपरबंदी' बन जाने के उपरांत अभिलिखित अभिधारी सोमरा उरांव ने दिनांक 6.12.1951 के एक निर्बंधित विक्रय-विलेख द्वारा कुल 152 एकड़ क्षेत्रफल जमीन में से अपनी 'छपरबंदी' जमीन के 21 कट्ठा 12 छटाक माप वाली जमीन को श्रीमती प्रतिमा बख्शी (प्रत्यर्थी संख्या 6) को बेच दिया था और अंतरित कर दिया था। याचीगण का आगे मामला यह है कि श्रीमती प्रतिमा बख्शी ने अपने द्वारा खरीदी गई जमीन पर एक घर एवं अन्य संरचना का निर्माण कर लिया और उसने राँची नगर निगम के कार्यालय में नाम का भी नामांतरण करा लिया और अपने नाम से होल्डिंग कर का भुगतान किया। उसने शहरी भूमि हदबंदी अधिनियम के प्रावधान के अधीन रिटर्न भी दाखिल किया और दावा किया कि जमीनें छपरबंदी थी और उसके पास अतिरेक भूमि नहीं थी। तद्नुसार, शहरी भूमि हदबंदी अधिनियम के अधीन उसके विरुद्ध प्रारम्भ की गई कार्यवाही हटा ली गई। तत्पश्चात्, श्रीमती प्रतिमा बख्शी ने दिनांक 24.8.1990 को एक निर्बंधित विक्रय-विलेख द्वारा रिट याची शर्मिष्ठा सिन्हा को प्लॉट सं॰ 1589 की उक्त 'छपरबंदी' जमीन का 6.25 कट्ठा हिस्सा हस्तांतरित कर दिया। इमारत के साथ-साथ जमीन को खरीदने के उपरांत, याची

शर्मिष्ठा सिन्हा ने पुराने घर का जीर्णोद्धार किया और होल्डिंग सं॰ 2026(A)/II का रांची नगर निगम में अपने नाम पर भी नामांतरण कर लिया।

8. याची मीरा प्रसाद ने डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 6729/2002 में, कथन किया है कि श्रीमती प्रतिमा बख्शी ने 8.4.1976 को एक निर्बंधित विक्रय-विलेख द्वारा अतुल नन्द मुखर्जी की पत्नी श्रीमती शिबानी मुखर्जी को पूर्वोक्त प्लॉट सं॰ 1589 की 'छपरबंदी' जमीन के 8 कट्ठा भाग बेचा था। श्रीमती शिबानी मुखर्जी ने अंचल कार्यालय में और रांची नगर निगम के अभिलेख में भी अपने नाम का नामांतरण कर लिया। तत्पश्चात्, उक्त शिबानी मुखर्जी ने दिनांक 3.8.1984 के एक निर्बंधित विक्रय-विलेख द्वारा याची के पक्ष में 'छपरबंदी' जमीन का उक्त 8 कट्ठा भाग बेच दिया।

9. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्तागण श्री अमर कुमार सिन्हा और साथ-साथ श्री आयुष आदित्य ने निवेदन किया कि यह एक सुस्थापित विधि है कि जमीन के एक मामले में, जिसकी प्रकृति 'छपरबंदी' है और जो नगर निगम क्षेत्र के भीतर है, छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन एक आवेदन समर्थनीय नहीं है क्योंकि जहाँ तक 'छपरबंदी' जमीन का सवाल है, उक्त अधिनियम की धारा 71A की कोई प्रयोज्यता नहीं है। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 द्वारा प्रत्यावर्तन के लिए दाखिल आवेदन बिल्कुल निराशापूर्वक परिसीमा द्वारा वर्जित था, क्योंकि यह 38 वर्षों के एक अन्तराल के उपरांत दाखिल किया गया था।

डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ संख्या 6729/2002 में याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री आयुष आदित्य ने निवेदन किया कि पहले भी प्रत्यर्थी सं॰ 5 ने रिट याची मीरा प्रसाद के विरुद्ध प्रत्यावर्तन के लिए छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन एक आवेदन एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 26/89-90 दाखिल किया था, जिसे 30.11.1994 को खारिज कर दिया गया था और खारिजी के उक्त आदेश के विरुद्ध अपील को भी अपीलीय न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और, इसलिए, कार्रवाई के इसी कारण के लिए मीरा प्रसाद के विरुद्ध प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा प्रत्यावर्तन के लिए दाखिल दूसरा आवेदन पूर्व न्याय द्वारा वर्जित है।

अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने 2004(4) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 109 में रिपोर्ट किए गए **सीटु साहू एवं अन्य बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य; 2008 (2) जे॰ सी॰ आर॰ 1 (एस॰ सी॰)** में रिपोर्ट किए गए **फूलचंद मुण्डा बनाम बिहार राज्य एवं अन्य; (2000)5 एस॰ सी॰ सी॰ 141** में रिपोर्ट किए गए **जय मंगल उरांव बनाम मीरा नायक (श्रीमती) एवं अन्य एवं** सदृश मामलों, **1987 बी॰ एल॰ टी॰ पृष्ठ 332 (पटना) (आर॰ बी॰)** में रिपोर्ट किए गए **अश्विनी कुमार रॉय बनाम बिहार राज्य** 2003(3) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 626 में रिपोर्ट किए गए **अनुपमा रॉय बनाम बिहार राज्य एवं अन्य;** और **जैतू उरांव एवं एक अन्य बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य,** जो 2004 (2) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 253 में रिपोर्ट किया गया; और **1989 बी॰ एल॰ टी॰ (रिपोर्ट) 407** में रिपोर्ट किया गया **मुन्नी देवी एवं अन्य बनाम विशेष पदाधिकारी, विशेष क्षेत्र विनियमन** के मामलों पर भरोसा किया है।

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से दाखिल प्रति-शपथपत्र में किए गए प्रकथनों को निर्दिष्ट करके प्रत्यर्थी सं॰ 5 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, सुश्री शुभा झा ने निवेदन किया कि प्रश्नाधीन जमीन को कभी भी छपरबंदी जमीन में सम्परिवर्तित नहीं किया गया था और सनिचरवा उरांव, अर्थात प्रत्यर्थी सं॰ 5 के पिता ने कभी भी अपनी रैयत भूमि का समर्पण भू-स्वामी के पक्ष में नहीं किया था। याचीगण या उनके विक्रेताओं के पक्ष में प्रश्नाधीन जमीन का हस्तांतरण छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए किया गया था और, इसलिए, विद्वान आयुक्त ने उचित रूप से विशेष पदाधिकारी द्वारा पारित आदेश और अपील से उपायुक्त द्वारा पारित आदेश को भी अपास्त कर दिया है।

11. डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 6729/2002 में परिशिष्ट-6 के समतुल्य डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 6768/2002 में परिशिष्ट-7 में अंतर्विष्ट विद्वान आयुक्त द्वारा पारित आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि

विद्वान आयुक्त ने अपने आदेश को इन आधारों पर आधृत किया है कि सनिचरवा उरांव अकेले कबूलियत निष्पादित नहीं कर सकता था क्योंकि जमीनों पर संयुक्त रूप से सनिचरवा उरांव एवं उसके भाई का स्वामित्व था।

12. इस तथ्य को लेकर कोई विवाद नहीं है कि प्लॉट संख्या 1589 का कुल क्षेत्र 1.52 एकड़ था और अगर यह स्वीकार भी किया जाता है कि समूचे क्षेत्र पर सनिचरवा उरांव और उसके भाई का स्वामित्व और कब्जा था तो भी सनिचरवा उरांव निश्चित रूप से समूचे प्लॉट संख्या 1589 के आधे क्षेत्र को बेचने का अधिकारी था, जबकि दिनांक 22.11.1951 के पंजीकृत विलेख द्वारा जमीन के सम्परिवर्तन के उपरांत सनिचरवा उरांव ने श्रीमती प्रतिमा बख्शी को केवल 36 डिसमिल जमीन बेची थी। अतएव, विद्वान आयुक्त का यह निष्कर्ष कि सनिचरवा उरांव को जमीन का हस्तांतरण करने का कोई प्राधिकार नहीं था, कायम नहीं रखा जा सकता।

13. वर्तमान मामले में, मैं पाता हूँ कि प्रश्नाधीन जमीन को वर्ष 1951 में पंजीकृत विलेख द्वारा 'छपरबंदी' में सम्परिवर्तित करने की अनुमति दी गई थी और जमीन के ''छपरबंदी'' से सम्परिवर्तन के उपरांत दिनांक 22.11.1951 को एक विक्रय-विलेख द्वारा इसे प्रत्यर्थी सं॰ 5 के पिता द्वारा श्रीमती प्रतिमा बख्शी को बेचा गया था और उसने होल्डिंग कर और 'छपरबंदी' भाटक इत्यादि का भी भुगतान किया था, इसलिए यह प्रतीत होता है कि एक निबंधित विलेख द्वारा भू-स्वामी की अनुमति से अभिलिखित अभिधारी द्वारा प्रश्नाधीन जमीन को वैध रूप से 'छपरबंदी' जमीन में सम्परिवर्तित किया गया था और तत्पश्चात् एक निबंधित दस्तावेज द्वारा 22.11.1951 को श्रीमती प्रतिमा बख्शी के पक्ष में निबंधित विक्रय-विलेख के माध्यम से उक्त जमीन को बेचा गया था।

14. 1987 बी॰ एल॰ टी॰ पृष्ठ 332 (पटना) (आर॰ बी॰) में रिपोर्ट किया गया **अश्विनी कुमार राय बनाम बिहार राज्य** के मामले में, पटना उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि 'छपरबंदी' जमीन के प्रत्यावर्तन के लिए छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन कोई कार्यवाही प्रारम्भ नहीं की जा सकती। अगर जमीन 'छपरबंदी' है तब यह सम्पत्ति का अंतरण अधिनियम द्वारा संचालित होगा एवं न की छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम द्वारा।

2003(3) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 626 में रिपोर्ट किए गए **अनुपमा राय बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** के मामले में, इस न्यायालय की एकल पीठ ने भी अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित प्रत्यावर्तन के आदेश को इस आधार पर निरस्त कर दिया कि प्रश्नाधीन जमीन एक 'छपरबंदी' भूमि थी।

15. मामले की इस दृष्टि में, **1987 बी॰ एल॰ टी॰ पृष्ठ 332 (पटना) (आर॰ बी॰)** में रिपोर्ट किए गए **अश्विनी कुमार राय बनाम बिहार राज्य** के मामले और 2003(3) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 626 में रिपोर्ट किए गए **अनुपमा राय बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** के मामले में खण्ड पीठ के निवेदन के अनुसार, मैं अभिनिर्धारित करता हूँ कि इसके ऊपर कथित कारणों से प्रश्नाधीन जमीनों के प्रत्यावर्तन के लिए प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन दाखिल आवेदन समर्थनीय नहीं था।

16. अब परिसीमा के प्रश्न पर आते हुए, मैं पाता हूँ कि **(2000)5 एस॰ सी॰ सी॰ 141** में रिपोर्ट किए गए **जय मंगल उरांव बनाम मीरा नायक (श्रीमती) एवं अन्य** और सदृश मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नांकित रूप से अभिनिर्धारित किया है:-

> *''मात्र इस कारण कि धारा 71A किसी भी समय .....'' शब्द से प्रारम्भ होती है इसका यह अर्थ नहीं लिया जा सकता कि उन शक्तियों की इस्तेमाल समय सीमा के किसी बिन्दु के बगैर किया जा सकता है जैसा कि इस मामले में लगभग 40 वर्षों के उपरांत इस बीच सामान्य विधि और परिसीमा की विधि के अधीन पक्षों द्वारा अधिकार अर्जित कर लिए गए थे।''*

2004(4) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 109 में रिपोर्ट किए गए **सीटु साहू एवं अन्य बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि परीक्षण यह नहीं है कि

1963 के अधिनियम में विहित परिसीमा की अवधि गुजर गई है या नहीं अपितु यह है कि छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन शक्ति का इस्तेमाल अयुक्तिसंगत विलम्ब के उपरांत इप्सित किया गया था और निश्चित रूप से 40 वर्षों का अन्तराल शक्ति के इस्तेमाल के लिए एक युक्तिसंगत समय नहीं है।

2008 (2) जे॰ सी॰ आर॰ 1 (एस॰ सी॰) में रिपोर्ट किए गए **फुलचंद मुंडा बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन शक्ति का इस्तेमाल एक युक्तिसंगत समयावधि के भीतर ही किया जा सकता है। हस्तांतरण को चुनौती देने के लिए 50 वर्षों से अधिक का अन्तराल युक्तिसंगत समय नहीं कहा जा सकता।

17. वर्तमान मामले में, स्वीकार्यत:, प्रश्नाधीन जमीन को वर्ष 1951 में हस्तांतरित किया गया था जबकि, प्रत्यावर्तन के लिए आवेदन वर्ष 1990 में दाखिल किया गया था और 25.11.2002 को आयुक्त द्वारा प्रत्यावर्तन का आदेश पारित किया गया है। इसलिए, यह प्रकट है कि प्रत्यावर्तन का आवेदन लगभग 38 वर्षों के उपरांत दाखिल किया गया था जबकि, धारा 71A के अधीन शक्ति का इस्तेमाल 51 वर्षों के अन्तराल के उपरांत किया गया है। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि प्रत्यावर्तन की शक्ति का इस्तेमाल काफी वक्त गुजरने के उपरांत किया गया था जो युक्तिसंगत नहीं था इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 द्वारा प्रत्यावर्तन के लिए दाखिल आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित था।

18. याची मीरा प्रसाद के प्राख्यान से यह प्रतीत होता है कि पहले भी छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन एक आवेदन उसके विरुद्ध प्रत्यर्थी सं॰ 5 बंधन उराँव द्वारा दाखिल किया गया था, जो एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 26/89-90 था और इसे विशेष पदाधिकारी और साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी खारिज कर दिया गया था। इस बिन्दु का इस न्यायालय के निर्णयों द्वारा पहले ही समाधान किया जा चुका है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अगर पूर्व के अवसरों पर प्रत्यावर्तन के आवेदन को खारिज किया गया है और यह अन्तिम रूप ले चुका है तब इसका प्रत्यावर्तन के लिए पश्चात्वर्ती-आवेदन पूर्व न्याय के सिद्धांतों से बाधित होगा। इस संबंध में **"2004(1) जे॰ सी॰ आर॰ 237 (झा॰)** में रिपोर्ट किए गए **गोडिया उरांव एवं अन्य बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य** एवं 2004(1) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 515 : **2004(2) जे॰ सी॰ आर॰ 107 (झारखंड)** में रिपोर्ट किए गए **''बीबी माखो बनाम बिहार राज्य** के मामले'' और "1990(1) पी॰ एल॰ जे॰ आर॰ 604 में रिपोर्ट किए गए **राम चन्द्र साहू बनाम बिहार राज्य**'' और "1996(2) पी॰ एल॰ जे॰ आर॰ 719 में रिपोर्ट किए गए **''श्रीमती सत्यवती देवी बनाम बिहार राज्य**'' के मामले के निर्णयों को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

19. यह उल्लिखित करना असंगत नहीं होगा कि यद्यपि विद्वान अधिवक्ता, श्रीमती शुभा झा ने प्रत्यर्थी सं॰ 5 की ओर से जोरदार रूप से तर्क दिया है और कई निर्णयों, अर्थात् **ए॰ आई॰ आर॰ 1992 एस॰ सी॰ 195** में रिपोर्ट किए गए **पाण्डेय ओर्सन बनाम राम चन्द्र साहू एवं अन्य;** 1970 पी॰ एल॰ जे॰ आर॰ 139 में रिपोर्ट किए गए **जागेश्वर सिखर एवं अन्य बनाम यूब्राजीन श्रीमती बैदेही कुँवर एवं एक अन्य;** 1988 पी॰ एल॰ जे॰ आर॰ 211 में रिपोर्ट किए गए **देवातू ओहदार बनाम बिहार राज्य;** 2**004 (4) जे॰ सी॰ आर॰ 535 (झा॰)** में रिपोर्ट किए गए **झारखण्ड राज्य एवं अन्य बनाम अर्जुन दास; 2006 (3) जे॰ सी॰ आर॰ 204 (झा॰)** में रिपोर्ट किए गए **सखिया कुमारी बनाम बिहार राज्य; 2003 (4) जे॰ सी॰ आर॰ 233 (झा॰)** में रिपोर्ट किया गया **सितलाल बैठा @ राम एवं अन्य बनाम रुड़ी चमार एवं अन्य : 2007 (1) जे॰ सी॰ आर॰ के 137 (झारखण्ड)** में रिपोर्ट किए गए **जयनाथ साही बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** और 2001 (1) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ 165 में रिपोर्ट किए गए **अजय मेटाकेम लि॰ बनाम आयुक्त, दक्षिणी छोटानागपुर प्रमण्डल एवं अन्य** के मामलों के निर्णयों को उद्धृत किया है परन्तु उनके द्वारा उद्धृत एक भी मामला इस मामले के विचाराधीन मुद्दों के लिए सुसंगत नहीं है। इसलिए, मैंने उन निर्णयों पर परिचर्चा नहीं की है।

20. उपरोक्त परिचर्चाओं एवं निष्कर्षों की दृष्टि में, इन दोनों रिट याचिकाओं को अनुज्ञात किया जाता है। रांची एस॰ ए॰ आर॰ पुनरीक्षण सं॰ 46/1997 में आयुक्त, दक्षिणी छोटानागपुर, डिवीजन राँची

द्वारा पारित दिनांक 25.11.2002 के आदेश जो, डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ संख्या 6768/2002 में परिशिष्ट-7 और डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 6729/2002 में परिशिष्ट-6 के तौर पर संलग्न किए गए हैं, एतद्द्वारा अपास्त किए जाते हैं। परिणामत:, एस॰ ए॰ आर॰ अपील सं॰ 18R 15/94-95 में उपायुक्त रांची द्वारा पारित दिनांक 30.10.1996 का आदेश एतद्द्वारा संपुष्ट किया जाता है। तथापि, मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में व्यय को लेकर कोई आदेश नहीं होगा।

माननीय डी॰ एन॰ पटेल, न्यायमूर्ति

हैदर शेख

बनाम

बैंक ऑफ बड़ौदा मुख्य प्रबंधक के माध्यम से एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5519 वर्ष 2008. 16 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण एवं प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002—धारा 13(4) एवं 17–कब्जा खाली करने का नोटिस–रिट अधिकारिता में चुनौती दी गयी–अभिनिर्धारित, ग्रहणीय नहीं क्योंकि अधिनियम की धारा 17 के अधीन एक वैकल्पिक उपचार याची को उपलब्ध है। (पैरा 6)

अधिवक्तागण.–M/s P.C. Tripathy, Manjula Upadhyay, A.K. Pandey, For the Petitioner; Mr. Satya Prakash Sinha, For the Respondents.

आदेश

मुख्य रूप से वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण एवं प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 13(4) के अधीन प्रत्यर्थीगण-बैंक द्वारा निर्गत एक नोटिस के विरुद्ध यह वर्तमान याचिका दाखिल की गई है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता ने जोर देकर निवेदन किया कि अधिनियम, 2002 की धारा 13(3) एवं 13(4) के अधीन प्रत्यर्थीगण-बैंक द्वारा निर्गत नोटिस अवैधानिक, शून्य एवं अकृत है और प्रत्यर्थी-बैंक जानबूझकर याची द्वारा भुगतान की गई किसी राशि का हिसाब-किताब नहीं दे रहा है और जो राशि वास्तविक रूप से याची से वसूली की जाने वाली है, नोटिस के जवाब के पैरा 11 में लिए गए एक स्पष्ट पक्ष के बावजूद, जो वर्तमान संकलन के ज्ञापन के परिशिष्ट-2 पर है। फिर भी, याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निष्पक्षता से निवेदन किया गया है कि उन्हें प्रभावकारी वैकल्पिक उपचार की जानकारी है, परन्तु, प्रत्यर्थी-बैंक की नोटिस को देखते हुए याची को प्रश्नाधीन परिसर से बलपूर्वक कब्जा विहीन नहीं किया जाए क्योंकि याची एक कार्यरत संस्था है और वह 60,00,000/- रुपए की मूलधन राशि के प्रधान ऋण पर पहले ही 45,13,702/- रुपए का भुगतान कर चुका है और याची प्रत्यर्थी-बैंक को वैधानिक रूप से देय राशि का भुगतान करने को इच्छुक और तत्पर है और, इसलिए, अधिनियम, 2002 की धारा 17 को देखते हुए इस न्यायालय द्वारा पहले ही प्रदान किए गए स्थगन को कुछ और अवधि के लिए प्रभावी बना रहने दिया जाए ताकि एक स्थगन आवेदन के साथ अधिनियम, 2002 की धारा 17 के अधीन एक अपील दाखिल की जा सके और अधिनियम, 2002 के अधीन उचित ध्यान रखा जा सके।

3. मैंने प्रत्यर्थीगण-बैंक के विद्वान अधिवक्ता को सुना है जिन्होंने जोरदार रूप से निवेदन किया है कि याचिका टिकने योग्य नहीं है क्योंकि विधि में अधिनियम, 2002 की धारा 17 के अधीन याची का पास एक प्रभावकारी वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है। अधिनियम, 2002 की धारा 13(2) के अधीन नोटिस 9 अगस्त, 2008 को निर्गत की गई थी, तत्पश्चात अधिनियम, 2002 की धारा 13(3) के

अधीन नोटिस 19 अगस्त, 2008 को निर्गत की गई थी और अन्ततः अधिनियम 2002 की धारा 13(4) के अधीन नोटिस प्रश्नाधीन परिसर का कब्जा लेने के लिए 10 सितम्बर, 2008 को निर्गत की गई थी, जो एक प्रतिभूति के तौर पर प्रत्यर्थीगण-बैंक को गिरवी रखा गया था। जहाँ तक हिसाब-किताब देने के विवाद का संबंध है। जब और जैसे ही याची द्वारा अपील दाखिल की जाती है, यह ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष दिया जा सकता है। अन्यथा भी, प्रत्यर्थीगण-बैंक पहले ही ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष मूल आवेदन सं॰ 24 वर्ष 2008 (जैसा कि याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कथन किया गया) संस्थित कर चुका है और इसमें भी खातों के बारे में सभी तथ्यों को विस्तार से कहा गया है। फिर भी, प्रत्यर्थीगण-बैंक याची द्वारा प्रत्यर्थी-बैंक को वैधानिक रूप से देय राशि के बारे में सभी विस्तृत हिसाब-किताब देगा। इस प्रकार, इस न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन निहित शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए इस रिट याचिका को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

4. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनकर और मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थीगण-बैंक अधिनियम, 2002 की धारा 13(2) के अधीन याची को पहले ही नोटिस 9 अगस्त, 2008 को दे चुका था, इस प्रकार अधिनियम, 2002 की धारा 13(3) के अधीन 19 अगस्त, 2008 को नोटिस दी गई थी और अन्ततः अधिनियम, 2002 की धारा 13(4) के अधीन 10 सितम्बर, 2008 को भी नोटिस दी गई थी और अधिनियम, 2002 की धारा 17 के प्रावधानों को देखते हुए ऋण वसूली अधिकरण, राँची के समक्ष प्रत्यर्थी-बैंक की ऐसी एक कार्रवाई के विरुद्ध एक अपील मान्य है। इस प्रकार, याची के पास एक प्रभावकारी वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है।

5. प्रत्यर्थीगण-बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि क्योंकि उन्होंने 10 सितम्बर, 2008 से काफी प्रतीक्षा की है, जो अधिनियम, 2002 की धारा 13(4) के अधीन नोटिस निर्गत करने की तिथि है, अतः वे लोग आज से पन्द्रह दिनों तक वर्तमान याची को बलपूर्वक कब्जाविहीन नहीं करेंगे परन्तु आज से 16वें दिन से यह रियायत स्वतः रूप से प्रभावी नहीं रह जाएगी।

6. इस उचित निवेदन और प्रत्यर्थीगण-बैंक द्वारा लिए गए युक्तिसंगत पक्ष की दृष्टि में, मैं एतद्द्वारा अधिनियम, 2002 की धारा 17 के अधीन एक प्रभावकारी वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता के आधार पर रिट याचिका का निस्तारण करता हूँ। जब और जैसे ही याची द्वारा एक अपील दाखिल की जाती है, इस न्यायालय के आदेश से प्रभावित हुए बगैर इसका निस्तारण इसके स्वयं के गुणावगुणों पर किया जाएगा। यह न्यायालय वर्तमान याची के मामले के गुणावगुणों या अवगुणों में नहीं गया है।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

निर्मला कुँवर (276 में)

दुर्गावती देवी (412 में)

प्रकाश चन्द्र द्वेदी (11951 में)

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य (सभी में)

सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ संख्या 275, 412 वर्ष 1999 (पी); 11951 वर्ष 1998 (P). 16 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

(क) सेवा विधि–बर्खास्तगी–नियुक्ति की विधिवत् प्रक्रिया के अनुपालन करने के उपरांत याची की नियुक्ति की गई–विज्ञापन के उत्तर में उन्होंने आवेदन किया और रोजगार

निदेशालय से भी उनका नाम भेजे गए–अभिनिर्धारित, वर्खास्तगी आदेश नास्ति एवं दूषित। (पैरा 11 एवं 12)

(ख) सेवा विधि–प्रतिस्थापन–रिट आवेदन के लम्बित रहने के दौरान दो याचीगण की मृत्यु हो गई और उनकी विधवाओं को पक्षकार बनाया गया–अभिनिर्धारित, अपने पति के स्थान पर पुनर्बहाली को छोड़कर विधवायें पारिणामिक लाभों की अधिकारी। (पैरा 12)

निर्णयज विधि.–(2009)5 SCC 65; (2009)7 SCC 205; (2006)4 SCC 1; CWJC No. 4206 of 1999 CWJC No. 521 of 1999—Relied upon; W.P. (S) No. 7071 of 2005; LPA No. 395 of 2006—Not applied.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajiv Ranjan, For the Petitioners; Mr. Manoj Tandon, For the State.

अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति.–पक्षों को सुना।

2. खण्ड पीठ द्वारा मामला प्रतिप्रेषित कर दिए जाने के उपरांत, इन तीनों रिट याचिकाओं को फिर से विचारण हेतु ग्रहण करने के लिए रखा गया है। सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 82 वर्ष 1999 (आर॰) में पारित आदेशों के निबंधनों में तीनों रिट याचिकाओं का निस्तारण करने वाला दिनांक 14.10.1999 का पूर्वतर आदेश खण्ड पीठ द्वारा अपास्त कर दिया गया है।

3. सुसंगत तथ्य ये हैं कि दिनांक 14.11.1998 के आदेश (परिशिष्ट-1) द्वारा निदेशक, माध्यमिक शिक्षा, बिहार, पटना ने सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 275 वर्ष 1999(C) में तीनों रिट याचीगण अर्थात अनिल कुमार तिवारी, उग्रह नारायण राम एवं प्रकाश चन्द्र द्वेदी समेत 30 (तीस) विद्यालय शिक्षकों की सेवा समाप्त कर दिया गया था।

4. निदेशक, माध्यमिक शिक्षा द्वारा पारित दिनांक 14.11.1998 के इसी आदेश को चुनौती देते हुए विभिन्न रिट याचीगण द्वारा कई रिट याचिकाएँ दाखिल की गई थी। जैसा कि प्रतीत होता है कि पहली रिट याचिका कृष्ण कुमार तिवारी द्वारा पटना उच्च न्यायालय की राँची पीठ में दाखिल की गई थी, जो सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 82 वर्ष 1999(R) थी। उक्त रिट याचिका को दिनांक 23.8.1999 के आदेश द्वारा अनुज्ञात किया गया था यह अभिनिर्धारित करते हुए कि जनवरी, 1990 में निकाले गए विज्ञापन के अनुसरण में याची का नाम का साक्षात्कार के लिए चयन किए जाने के उपरांत नियोजनालय द्वारा उसके नाम को अग्रसारित किया गया था और अपर निदेशक शिक्षा, राँची नियुक्ति करने में सक्षम था और इसलिए, दिनांक 14.11.1998 के आदेश में यथा उल्लिखित याची की सेवा की बर्खास्तगी का आधार नास्ति था। तद्नुसार, इसे अपास्त कर दिया गया और रिट याची कृष्ण कुमार तिवारी को पिछले पारिश्रमिक के साथ लिपिक के पद पर पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया गया। लेटर्स पेटेण्ट अपील सं॰ 469 वर्ष 1999(R) दाखिल करके राज्य द्वारा सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 82 वर्ष 1999(R) में पारित इस आदेश को चुनौती दी गई परन्तु इसे दिनांक 2.3.2000 के आदेश से खण्ड पीठ द्वारा खारिज कर दिया गया। तत्पश्चात्, राज्य ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका दाखिल किया और इसे भी दिनांक 19.1.2000 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। इसलिए, यह प्रतीत होता है कि सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 82 वर्ष 1999(R) में पारित एकल पीठ के आदेश को एल॰ पी॰ ए॰ में खण्ड पीठ द्वारा और साथ-साथ विशेष अनुमति याचिका में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संपुष्ट किया गया।

5. तत्पश्चात्, जैसा कि प्रतीत होता है कि किसी अभय कुमार सिन्हा, जिसकी सेवा भी दिनांक 14.11.1998 के पूर्वोक्त आदेश से समाप्त कर दी गई थी, ने सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2284 वर्ष 1998 दाखिल किया था और उक्त रिट याचिका को भी दिनांक 20.9.1999 के आदेश द्वारा अनुज्ञात कर दिया गया था और याची को पिछले पारिश्रमिक के साथ पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया गया था।

6. इसी प्रकार के आधारों पर, अन्य शिक्षकों, जिनकी सेवाएँ भी दिनांक 14.11.1998 के ही आदेश से समाप्त कर दी गई थी, ने कई रिट याचिकाएं दाखिल करके उच्च न्यायालय का आश्रय लिया

और नीचे उल्लिखित सभी रिट याचिकाओं में उनके बर्खास्तगी आदेश को अपास्त किया गया और उन्हें सेवा में पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया गया:-

(i) सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 521 वर्ष 1999 [श्रीमती रेणु मिश्रा बनाम बिहार राज्य एवं अन्य]—24.1.2001 को अनुज्ञात।

(ii) सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 4206 वर्ष 1999 [शैलेश कुमार बनाम बिहार राज्य एवं अन्य]—8.3.2000 को अनुज्ञात।

7. यह प्रतीत होता है कि वर्तमान रिट याचिकाओं के लम्बित रहने के दौरान, सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 275 वर्ष 1999 के रिट याची अनिल कुमार तिवारी की मृत्यु हो गई और इस कारण उसके नाम का विलोपन करने के उपरांत उसके स्थान पर दिनांक 11.10.2006 के आदेश द्वारा उसकी पत्नी निर्मला कुँवर का नाम प्रतिस्थापित किया गया है।

इसी प्रकार, यह प्रतीत होता है कि सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 412 वर्ष 1999 के रिट याची उग्रह नारायण राम की भी रिट याचिका के लंबित रहते मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर उसकी विधवा दुर्गावती देवी का नाम प्रतिस्थापित किया गया है।

8. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता, श्री राजीव रंजन ने निवेदन किया कि वर्तमान तीनो रिट याचीगण का मामला उन अन्य व्यक्तियों के बिल्कुल समान है जिनकी रिट याचिकाएं अनुज्ञात की गई थी और उनकी बर्खास्तगी के आदेश को अपास्त किया गया है एवं उन्हें पुनर्बहाल करने का आदेश दिया गया है और वे कार्य कर रहे हैं।

जहाँ तक इन रिट याचीगण का सवाल है, इनका मामला यह भी है कि विज्ञापन निर्गत किए जाने के उपरांत उनके नाम नियोजनालय द्वारा भेजे गए थे और साक्षात्कार के उपरांत नियुक्ति के लिए उनके नाम अनुशंसित किए गए थे। नियुक्ति की प्रक्रियाओं का अनुपालन करने के उपरांत ही उनकी नियुक्ति की गई थी और, इसलिए, दिनांक 14.11.1998 के आदेश में अन्तर्विष्ट बर्खास्तगी का आदेश अवैधानिक था।

9. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता-II, श्री मनोज टण्डन ने **(2009)5 एस॰ सी॰ सी॰ 65** में रिपोर्ट किए गए **बिहार राज्य बनाम उपेन्द्र नारायण सिंह** के मामले एवं **(2009)7 एस॰ सी॰ सी॰ 205** में रिपोर्ट किए गए **महाप्रबंधक, उत्तरांचल जल संस्थान बनाम लक्ष्मी देवी एवं अन्य** के मामले और सदृश मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और साथ-साथ **डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 7071 वर्ष 2005** में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 17.7.2006 के आदेश जो दिनांक 12.6.2007 के आदेश द्वारा **एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 395 वर्ष 2006** में संपुष्ट किया गया था, को उद्धृत करके निवेदन किया कि याचीगण किसी अनुतोष के अधिकारी नहीं है।

उन्होंने निवेदन किया कि किसी चन्द्र भूषण सिंह ने भी दिनांक 14.11.1998 के इसी आदेश, जिसे इन रिट याचीगण द्वारा चुनौती दी गई है, को चुनौती देते हुए डब्ल्यू॰ पी॰ (एस) सं॰ 7071 वर्ष 2005 दाखिल किया था। इस न्यायालय की एकल पीठ ने दिनांक 17.7.2006 के आदेश द्वारा उक्त रिट याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि याची के नाम की मांग नियोजनालय से नहीं की गई थी और न ही समाचार पत्र में विज्ञापन प्रकाशित किया गया था और न ही चयन बोर्ड के समक्ष उपस्थित होने के लिए उम्मीदवार को कोई साक्षात्कार-पत्र निर्गत किया गया था एवं इन प्रक्रियाओं का अनुपालन किए बगैर क्षेत्रीय उप-निदेशक, शिक्षा ने उसे नियुक्त किया और इसलिए, नियुक्ति का आदेश प्रारम्भ से ही अवैधानिक और शून्य था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने **(2006)4 एस॰ सी॰ सी॰ 1** में रिपोर्ट किए गए **सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम उमा देवी एवं अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया।

श्री मनोज टण्डन ने **(2009)5 एस॰ सी॰ सी॰ 65** में रिपोर्ट किए गए **बिहार राज्य बनाम उपेन्द्र नारायण सिंह एवं अन्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक हाल के निर्णय पर अत्यधिक भरोसा किया है और निवेदन किया है कि याची की प्रारम्भिक नियुक्ति अवैधानिक थी क्योंकि उसकी नियुक्ति

के पहले नियुक्ति की सम्यक प्रक्रिया का अनुपालन नहीं किया गया था, इसलिए, याचीगण किसी अनुतोष के अधिकारी नहीं हैं। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि मात्र यह कारण कि याचीगण लम्बे समय से सेवा में बने रहे हैं उनकी अवैधानिक नियुक्ति को विधिमान्य नहीं बनायेगा।

10. श्री टण्डन द्वारा उद्धृत **बिहार राज्य बनाम उपेन्द्र नारायण सिंह एवं अन्य** के मामले **(ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि उसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि अगर किसी विज्ञापन के बगैर, उसका नाम नियोजनालय से मांगे बगैर कोई साक्षात्कार लिए बगैर किसी व्यक्ति की प्रारम्भिक नियुक्ति की जाती है, तब यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 16 का उल्लंघन की कोटि का होगा।

11. पक्षों के अधिवक्तागण द्वारा मेरे समक्ष पेश किए गए विभिन्न आदेशों का अवलोकन करके जिन्हें पहले ही ऊपर नोटिस किया गया है, मैं पाता हूँ कि वर्तमान रिट याचीगण का मामला **सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 521 वर्ष 1999** के याचीगण **[श्रीमती रेणु मिश्रा बनाम बिहार राज्य एवं अन्य–** 24.1.2001 को अनुज्ञात] और **सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 4206 वर्ष 1999** के याचीगण **[शैलेश कुमार बनाम बिहार राज्य एवं अन्य–**8.3.2000 को अनुज्ञात] के मामले के ही आधार पर खड़ा है।

वर्तमान मामले में, याचीगण का विनिर्दिष्ट मामला यह है कि एक विज्ञापन आया था और इसके अनुसरण में, याचीगण ने नियुक्ति के लिए आवेदन किया। उनके नाम नियोजनालय द्वारा भेजे भी गए थे और, तत्पश्चात्, नियुक्ति की सम्यक् प्रक्रिया का अनुपालन करने के उपरांत रिक्त पदों के विरुद्ध उन्हें नियुक्ति के लिए चयनित किया गया था। इसलिए, याचीगण का मामला प्रत्यर्थी राज्य की ओर से उद्धृत **चन्द्र भूषण सिंह बनाम झारखण्ड राज्य एवं अन्य** के मामले **(डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 7071 वर्ष 2005)** में पारित आदेश के समान नहीं है क्योंकि सार्वजनिक नियुक्ति की सम्यक् प्रक्रिया का अनुपालन करके याचीगण की नियुक्ति की गई थी। इस प्रकार, **बिहार राज्य बनाम उपेन्द्र नारायण सिंह एवं अन्य** के मामले **(ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में कोई प्रयोज्यता नहीं है। इसलिए, निदेशक, माध्यमिक शिक्षा, बिहार, पटना के दिनांक 14.11.1998 के आदेश में उल्लिखित रिट याची की सेवा की बर्खास्तगी के आधार को नास्ति अभिनिर्धारित किया जाता है जो इस प्रभाव का है कि याची की प्रारम्भिक नियुक्ति दूषित है।

12. तद्नुसार, सभी उपरोक्त तीनों रिट याचिकाओं को अनुज्ञात किया जाता है। याचीगण की सेवाओं को समाप्त करते हुए निदेशक, प्राथमिक शिक्षा द्वारा पारित दिनांक 14.11.1998 का आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। चूँकि याचीगण अनिल कुमार तिवारी एवं उग्रह नारायण राम की पहले ही मृत्यु हो चुकी है, इसलिए उनकी पुनर्बहाली का कोई प्रश्न नहीं है। तथापि, अनिल कुमार तिवारी [सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 275 वर्ष 1999 (P) में] और उग्रह नारायण राम [सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 412 वर्ष 1999(P) में] की विधवाओं को पारिणामिक लाभों का भुगतान करने का प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है।

जहाँ तक प्रकाश चन्द्र द्विवेदी [सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 11961 वर्ष 1998(P) में याची] का संबंध है, उसे सभी पिछले पारिश्रमिक के साथ पुनर्बहाल करने का निर्देश दिया जाता है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

दीप सहकारी गृह निर्माण समिति, सीमित

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य

सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 3045 वर्ष 1996. 16 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

बिहार सरकारी संपदा (खास महाल) मैनुअल, 1953—नियम 9—सलामी–सहकारी गृह-निर्माण समिति को पट्टा का प्रदान किया जाना अनुमोदन के अन्तिम चरण पर अस्वीकृत–याची समिति ने एक सद्भावपूर्ण विश्वास धारण कर रखा था कि जमीनों को पट्टा पर प्रदान करने का प्रस्ताव अन्ततः सरकार द्वारा अनुमोदित कर दिया जाएगा–समिति एवं सदस्यों ने काफी खर्च उठाया है–साम्या के आधार पर पुनर्विचार करने के लिए मामला राज्य सरकार के समक्ष भेजा गया। (पैरा 23)

अधिवक्तागण.–M/s Devi Prasad, S. Srivastava, For the Petitioner(s); M/s M.S. Akhtar, A.K. Mehta, For the Respondents; Mr. D.K. Karmakar, For the Intervenor.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

प्रति-शपथपत्र के परिशिष्ट-A एवं B में यथा अन्तर्विष्ट दिनांक 1.8.1996 और 21.11.1996 के आदेश को इस रिट याचिका में चुनौती दी गई है जिसके द्वारा प्रत्यर्थी राज्य सरकार ने याची के पक्ष में प्रश्नाधीन जमीन का बन्दोबस्त करने से इन्कार किया है। खाता सं॰ 445, प्लॉट सं॰ 1390, 1453, 1457 और 1725 जो किटाडीह ग्राम में हैं, के अधीन कुल 8.62 एकड़ (6.005 एकड़) क्षेत्रफल वाली खास महाल जमीन और जमशेदपुर अंचल, जमशेदपुर में करन्डीह गाँव के खाता सं॰ 299 प्लॉट सं॰ 779 के अधीन 2.615 एकड़ जमीन के संबंध में भी पट्टा-विलेख का निष्पादन करने हेतु प्रत्यर्थीगण को एक निर्देश निर्गत करने के लिए अतिरिक्त रूप से प्रार्थना की गई है।

2. याची बिहार सहकारी समिति अधिनियम, 1935 के अधीन पंजीकृत एक सहकारी समिति है। 400 से अधिक सदस्यों को शामिल करने वाली समिति को इसके सदस्यों को आवासीय गृह उपलब्ध कराने के लिए गठित किया गया था।

समिति ने अपने सदस्यों के मकानों के निर्माण के लिए राज्य सरकार से 28 एकड़ खास महाल जमीन आबंटित करने का आग्रह किया था। ऐसे आग्रह के विरुद्ध प्रत्यर्थी राज्य सरकार ने पत्र सं॰ 2061/LR दिनांक 16.8.1986 (रिट याचिका का परिशिष्ट-1) द्वारा 16.8.1986 को 3 एकड़ खास महाल जमीन का बन्दोबस्त कर दिया था। याची द्वारा 4.50 लाख रुपए सलामी जमा करने के उपरांत बन्दोबस्त किया गया था जिसके उपरांत 18.8.1987 को समिति के पक्ष में राज्य सरकार की ओर से प्राधिकृत पदाधिकारी द्वारा पट्टा-विलेख (रिट याचिका का परिशिष्ट-3) निष्पादित किया गया था।

अतिरिक्त भूमि के आबंटन के लिए उप-आयुक्त, पूर्वी सिंहभूम (प्रत्यर्थी संख्या 4) ने दिनांक 24.2.1987 के अपने पत्र द्वारा बन्दोबस्त सं॰ 10 वर्ष 1984-85 के अधीन 8.62 एकड़ खास महाल जमीन को अतिरिक्त रूप से आबंटित करने के लिए राजस्व सचिव, राजस्व विभाग, बिहार सरकार, पटना (प्रत्यर्थी सं॰ 2) को एक प्रस्ताव अग्रसारित किया।

महाधिवक्ता की विधिक राय के साथ प्रस्ताव को राजस्व विभाग के प्रभारी मंत्री के समक्ष 13.4.1987 को रखा गया।

3. दिनांक 21.4.1987 के अपने पृष्ठांकन द्वारा प्रभारी मंत्री, राजस्व विभाग ने याची के पक्ष में 8.62 एकड़ खास महाल जमीन के बन्दोबस्ती के प्रस्ताव का अनुमोदन किया। जब मामला उनके समक्ष दोबारा रखा गया, तो प्रभारी मंत्री ने 26.12.1987 को कार्यालय टिप्पणियों पर अपने अनुमोदन का पृष्ठांकन किया और जमीन पर घरों के निर्माण के लिए समिति को अनुमति प्रदान करने का भी निर्देश दिया। तद्नुसार, तत्सम निर्देश प्रमण्डलीय आयुक्त (प्रत्यर्थी सं॰ 3) को निर्गत कर दिया गया।

4. जांच करने और एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के अनुदेशों के साथ प्रमण्डलीय आयुक्त (प्रत्यर्थी सं॰ 3) ने पाँच उपायुक्तों से बनी एक संयुक्त समिति का गठन किया। याची के पक्ष में 8.62 एकड़ खास महाल जमीन के प्रस्तावित बन्दोबस्ती की अनुशंसा करते हुए 30.4.1992 को संयुक्त समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

5. संयुक्त समिति की अनुशंसाओं एवं प्रमण्डलीय आयुक्त के अनुदेशों के अनुसरण में, उप-आयुक्त, सिंहभूम ने जमीन की बन्दोबस्ती के लिए और परिशिष्ट-5B और 6A के अनुसार याची समिति को इसका कब्जा सौंपने के लिए अपर समाहर्त्ता को औपचारिकतायें पूरी करने के निर्देश दिया।

6. इस दौरान, प्रशासनिक प्राधिकारी के निर्देश के अनुसरण में, याची समिति ने देय सलामी के 10 प्रतिशत के तौर पर ट्रेजरी चालान (परिशिष्ट-7) के द्वारा 3,67,000/- रुपए 9.4.1992 को जमा कर दिया।

तत्पश्चात्, परिशिष्ट-8 श्रृंखला, परिशिष्ट-9 श्रृंखला और परिशिष्ट-10 श्रृंखला द्वारा विभिन्न अंतरालों पर याची को 8.62 एकड़ जमीन का कब्जा प्रदान किया गया।

7. इसके पूर्व, वर्ष 1988 में प्रत्यर्थी सरकार के विरुद्ध एक जनहित याचिका दाखिल की गई थी, जिसमें प्रत्यर्थी सरकार उपस्थित हुई थी और शपथपत्र (परिशिष्ट-13) पर घोषणा किया था कि प्रश्नाधीन जमीन याची को आबंटित की गई थी। ऐसे कथनों पर 26.4.1988 को जनहित याचिका खारिज कर दी गई थी। बाद में, राज्य सरकार एवं याची समिति के विरुद्ध एक अभिधान वाद भी दाखिल किया गया था जिसमें प्रत्यर्थी राज्य सरकार ने अपने लिखित कथन (परिशिष्ट-15) में माना था और घोषित किया था कि प्रश्नाधीन जमीन का बन्दोबस्त याची समिति के पक्ष में कर दिया गया था।

जमीन का कब्जा दिए जाने और सम्बद्ध प्राधिकारी द्वारा जमीन का बन्दोबस्ती प्रदान किये जाने का अभिप्रायित आश्वासन दिए जाने पर, याची समिति ने जमीन को विकसित किया और 14,87,641/98 रुपए के खर्च पर बाहरी दीवार का निर्माण किया। याची समिति ने फिर अपने सदस्यों के जमीन के प्लॉट आबंटित करने की कार्रवाई की और ऐसे कई सदस्यों ने उन्हें आबंटित की गई जमीन पर अपने घरों का निर्माण भी किया है और उसमें अपने परिवारों के साथ रह रहे हैं।

8. जब सलामी राशि का 10 प्रतिशत जमा कर दिए जाने और जमीन का कब्जा प्राप्त करने के वावजूद प्रत्यर्थी राज्य सरकार ने पट्टा विलेख के निष्पादन में विलम्ब किया तो याची समिति ने याची के पक्ष में जमीन के संबंध में पट्टा-विलेख को निष्पादित करने के लिए प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को एक निर्देश देने की प्रार्थना करते हुए इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दाखिल की।

9. रिट याचिका के लम्बित रहने के दौरान, यह 5.5.1997 को प्रत्यर्थी राज्य सरकार द्वारा दाखिल प्रति-शपथपत्र में था कि याची को सूचित किया गया था कि परिशिष्ट-A एवं B द्वारा राज्य सरकार ने याची के पक्ष में जमीन आबंटित और बन्दोबस्त नहीं करने का निर्णय लिया था।

10. याची की व्यथा यह है कि जमीनों की बन्दोबस्ती करने का एक दृढ़ आश्वासन देकर और 10% सलामी राशि को स्वीकार करने के उपरांत जमीनों का कब्जा प्रदान करने तक की कार्रवाई करके राज्य सरकार के प्रत्यर्थी प्राधिकारियों ने एकपक्षीय रूप से याची समिति को जमीन आबंटित नहीं करने का निर्णय लिया है। याची को कोई पूर्व की नोटिस दिए बगैर और इसको लेकर कोई कारण बताए बगैर ऐसा किया गया है कि जमीन के बन्दोबस्ती के तात्पर्यित आश्वासन को वापस क्यों ले लिया गया है।

11. इस रिट याचिका में याची द्वारा निम्नांकित आधारों पर अनुतोष इप्सित किया गया है:–

(i) अपनी कार्रवाईयों, कृत्यों एवं आचरण द्वारा प्रत्यर्थी राज्य सरकार के सम्बद्ध प्राधिकारी ने निश्चित आश्वासन दिया था कि जमीन का बन्दोबस्त किया जाएगा और पट्टा–विलेख याची के पक्ष में निष्पादित किया जाएगा। यह ऐसी अपेक्षा पर ही किया गया कि जमीन का कब्जा प्रदान किए जाने के उपरांत याची समिति ने जमीन के विकास के लिए और बाहरी दीवार के निर्माण के लिए 14,87,641/98 रुपए से अधिक खर्च किए थे, और इसके सदस्यों में से कई ने, जिन्हें चिन्हित क्षेत्र के भीतर जमीन के प्लॉट आबंटित किए गए थे, अपने आवासीय गृहों का भी निर्माण कर लिया था। प्रत्यर्थीगण ने याची एवं इसके सदस्यों के लिए एक औचित्यपूर्ण अपेक्षा उत्पन्न की है। औचित्यपूर्ण अपेक्षा का सिद्धांत पट्टा–विलेख के निष्पादन द्वारा जमीनों की बन्दोबस्ती की मांग करने के लिए याची के पक्ष में एक विधिक अधिकार का सृजन करता है।

(ii) विबन्ध का सिद्धांत भी प्रत्यर्थीगण को अपनी प्रतिबद्धताओं, वायदे और आश्वासन से पीछे हटने से विवर्जित करेगा;

(iii) 8.62 एकड़ जमीन के आबंटन के लिए स्वीकार्यतः अपनाई गई समूची प्रक्रिया, जो उपायुक्त द्वारा अग्रसारित प्रस्ताव से प्रारम्भ हुई और ऐसा प्रस्ताव प्रमण्डलीय आयुक्त द्वारा जाँचा गया और प्रभारी मंत्री, राजस्व विभाग द्वारा अनुमोदित किया गया और प्रभारी मंत्री द्वारा ऐसे प्रस्ताव को अनुमोदित किए जाने के उपरांत प्रमण्डलीय आयुक्त के स्तर पर गठित संयुक्त समिति द्वारा अन्तिम रूप दिए जाने से पहले दोबारा जाँच किया और संवीक्षा किया गया था जिसके उपरांत सलामी का 10 प्रतिशत स्वीकार किया गया था और जमीन के कब्जे का प्रदाय को प्रभावी बनाया गया था, खास महाल मैनुअल के नियम 171 के प्रावधानों के सुसंगत है। इससे पहले, 3 एकड़ भूमि के आबंटन और बन्दोबस्ती में यही प्रक्रिया अपनाई गई थी। खास महाल मैनुअल के अधीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा बन्दोबस्ती का ऐसा आबंटन किए जाने से प्रत्यर्थी राज्य सरकार अपनी दायिता से इस आधार पर नहीं बच सकती कि सम्बद्ध सरकारी पदाधिकारियों के ऐसे कार्यों एवं आचरण को सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्राधिकृत नहीं किया गया था।

(iv) बन्दोबस्ती को प्रदान करने से इन्कार करने वाले आक्षेपित पत्रों का निर्णय एकपक्षीय निर्णय होने के कारण नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघनकारी है क्योंकि याची पर किसी पूर्व के नोटिस का तामीला नहीं कराया गया था और प्रत्यर्थी की समूची कार्रवाई किसी उपयुक्त कारण के बगैर पारित किए जाने से यह दिमाग का इस्तेमाल नहीं करने का परिणाम है।

12. प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति शपथपत्र में इस तथ्य को माना है कि याची के आग्रह की प्राप्ति पर, प्रारम्भ में 3 एकड़ भूमि का बन्दोबस्ती किया गया था और तत्पश्चात् 8.62 एकड़ खास महाल जमीन के बन्दोबस्ती के लिए उपायुक्त द्वारा प्रस्ताव अग्रसारित किया गया था और राजस्व विभाग के प्रभारी मंत्री का अनुमोदन प्राप्त कर लिया गया था और तत्पश्चात् सलामी तय की गई थी और याची समिति से 10 प्रतिशत सलामी स्वीकार की गई थी और इससे भी बढ़कर, याची समिति को जमीन का कब्जा भी सौंप दिया गया था। इस सीमा तक स्वीकार कर चुकने के उपरांत, प्रत्यर्थीगण ने प्रतिवाद किया कि भूमि का कब्जा सरकारी स्तर पर अनुमोदन की प्रत्याशा में परिदत्त किया गया था। कब्जा का ऐसा प्रदाय सशर्त था और निश्चित रूप से खास महाल जमीन के पट्टे की मंजूरी के आदेश के तौर पर नहीं समझा जाना था जैसा कि प्रकटत: याची समिति द्वारा गलत रूप से अर्थान्वयन किया गया था।

13. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि खास महाल मैनुअल की धारा 171 के प्रावधानों की व्याख्या, जैसा कि याची द्वारा बताई गई है पूर्णत: भ्रामक है क्योंकि खास महल जमीन के संबंध में बन्दोबस्ती को स्वीकृत करने या पट्टा प्रदान करने के लिए प्रमण्डलीय आयुक्त सक्षम प्राधिकारी नहीं हैं। खास महाल एक सरकारी 'जमींदारी' है और खास महाल जमीन को पट्टा प्रदान करना एक सरकारी अनुदान है जो राज्यपाल की ओर से सरकार द्वारा उसकी ओर से प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 299 के निबंधनों में किया जाता है। यह भी स्पष्टीकृत करना इप्सित किया गया है कि याची समिति के खास महाल की बन्दोबस्ती करने संबंधी मामले पर सरकारी स्तर पर विचार किया गया था और सम्यक् विचारण के उपरांत, सरकार ने याची समिति के पक्ष में पट्टा प्रदान करने से इनकार कर दिया था और अस्वीकरण का आदेश, पत्रों (प्रति शपथपत्र के परिशिष्ट A से G) द्वारा याची समिति को संसूचित कर दिया गया था और याची समिति को सरकार को जमीनों का कब्जा लौटाने की नोटिस दी गई थी।

3 एकड़ जमीन के पूर्व के बन्दोबस्ती को निर्दिष्ट करते हुए, यह स्पष्टीकृत करना इप्सित किया गया कि बन्दोबस्ती उस व्यक्ति द्वारा किया गया था जिसे राज्यपाल की ओर से प्राधिकृत किया गया था क्योंकि खास महाल जमीन का बन्दोबस्ती प्रदान करने के लिए राज्यपाल ही एकमात्र सक्षम प्राधिकार होता है। राज्यपाल का अधीनस्थ कोई भी प्राधिकारी सरकारी जमीन के किसी भाग को स्वीकृत करने और अन्य संक्रामण करने के लिए सशक्त नहीं है।

जहाँ तक सलामी को स्वीकार करने का सवाल है, यह स्पष्ट किया गया है कि याची समिति ने अपने पक्ष में पट्टा प्रदान करने की पूर्वापेक्षा में अपेक्षित सलामी का 10% निक्षेपित कर दिया था। ऐसे जमा ने बन्दोबस्ती का दावा करने और याची समिति के पक्ष में पट्टा के निष्पादन के लिए इसके पक्ष में किसी अधिकार का सृजन नहीं कर दिया था।

जहाँ तक बन्दोबस्ती प्रदान करने से इन्कार का सवाल है, यह स्पष्ट किया गया है कि सुसंगत समय पर किसी व्यक्ति या समिति को खास महाल जमीनों का पट्टा प्रदान किये जाने पर एक प्रतिबंध था।

14. जैसा कि सम्परीक्षित किया गया है, याची का दावा खास महाल जमीनों के बन्दोबस्ती के लिए है। दूसरी सरकारी जमीनों के विपरीत, खास महाल जमीनें सरकारी जमीनों की एक भिन्न कोटि का गठन करती है, जिसे सामान्य भाषा में सरकारी परिसम्पदा कहा जाता है। ऐसी जमीनों की बन्दोबस्ती प्रदान किया जाना बिहार (अब झारखण्ड) सरकार, सम्पदा खास महाल मैनुअल के अधीन संचालित होता है।

पूर्वोक्त मैनुअल का अध्याय VII सरकारी जमीनों के अन्य संक्रामण को विनियमित करता है।

मैनुअल का नियम 168 घोषित करता है कि राज्य सरकार के अधीनस्थ कोई भी प्राधिकारी सरकारी जमीनों का अन्य संक्रामण स्वीकृत करने में सशक्त नहीं है।

मैनुअल का नियम 171 स्थानीय निकायों या अन्य सार्वजनिक निकायों या अन्य संगठनों और निजी व्यक्तियों को खास महाल जमीनों की बिक्री करने/पट्टा प्रदान करने की प्रक्रिया को अधिकथित करता है।

अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार, खास महाल जमीनों का पट्टा प्रदान करने/बिक्री करने के प्रस्ताव को प्रमण्डलीय आयुक्त के स्तर पर प्रारम्भ करना होता है। ऐसे प्रस्ताव में अन्तरण के उद्देश्य, अन्तरण के लिए प्रस्तावित जमीन का कुल क्षेत्रफल, बाजार मूल्य, आकलित वार्षिक भाटक से संबंधित विस्तृत सूचनाएं अन्तर्विष्ट होगी और इसके साथ जमीनों की पहचान दर्शाने वाला एक मानचित्र होना चाहिए और इस संबंध में इसे विनिर्दिष्ट करना चाहिए कि राज्य सरकार का कौन सी विभाग जमीन का प्रभारी है। सरकार का सम्बद्ध विभाग, जो जमीन का प्रभारी है, प्रस्ताव पर विचार करेगा और निर्णय

लेगा और तत्पश्चात् प्रस्ताव को राजस्व विभाग को निर्दिष्ट किया जाएगा। राजस्व विभाग, बोर्ड या सरकार के प्रभावित किसी विभाग, जो भी स्थिति हो, के साथ मंत्रणा करेगा और वित्त विभाग के साथ भी मंत्रणा करेगा। अगर यथा उपरोक्त कथित, सभी सरकारी स्तरों पर प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया जाता है, तो राजस्व विभाग तत्पश्चात् मामले को प्रारम्भ करने वाले विभाग को एक ज्ञापन अग्रसारित करेगा, उन निबंधनों एवं शर्तों को अधिकथित करते हुए जिनपर अन्तरण किया जाएगा ओर तत्पश्चात्, इसे सम्बद्ध जिला के आयुक्त को अग्रसारित कर दिया जायगा। नियम यह भी अधिकथित किया है कि सरकार का कोई भी अधिकारी भूमि या समनुदेशित राजस्व का अन्यसंक्रामण करने के लिए कार्रवाई नहीं कर सकता या आदेश नहीं कर सकता जो राजस्व विभाग के ज्ञापन द्वारा, असमर्थित हो, न ही वह ऐसे किसी आदेश पर कार्रवाई कर सकता है, जो राजस्व विभाग द्वारा निर्गत ज्ञापन के निबंधनों के अनुरूप नहीं है।

15. मैनुअल का नियम 172 घोषित करता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 292 के अधीन राज्यपाल द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली शक्तियों के अधीन समाहर्ता और उपायुक्तों को जमीन के आबंटितियों के पक्ष में पट्टा-विलेखों को निष्पादित करने के लिए प्राधिकृत किया गया है, उन शर्तों और निबंधनों पर जो सरकार के राजस्व विभाग द्वारा विहित बन्दोबस्ती के ज्ञापन में अनुबद्ध हैं।

16. इस मामले के स्वीकृत तथ्यों से यह परिलक्षित होता है कि खास महाल जमीनों को पट्टा प्रदान किए जाने के लिए समिति से आवेदन की प्राप्ति पर, उपायुक्त द्वारा प्रस्ताव को प्रमण्डलीय आयुक्त के स्तर तक अग्रसारित करने के साथ मैनुअल के नियम 171 में, यथा अधिकथित प्रारम्भिक उपायों को प्रारम्भ किया गया था और फिर इसे ऊपर राज्य सरकार के राजस्व विभाग के प्रभारी मंत्री को अग्रसारित किया गया था। यद्यपि, राजस्व विभाग के प्रभारी मंत्री ने याची को पट्टा प्रदान करने के प्रस्ताव के अपने अनुमोदन को पृष्ठांकित कर दिया था, परन्तु, तत्पश्चात् आगे की प्रक्रिया, मुख्यत: बोर्ड एवं वित्त विभाग के साथ मंत्रणा करने का कार्य पूरी नहीं की गई थी, और न ही पूर्वोक्त विभागों का अनुमोदन प्राप्त किया गया था। इससे भी बढ़कर, राजस्व विभाग द्वारा कोई ज्ञापन अग्रसारित नहीं किया गया था, उन शर्तों एवं निबंधनों को अधिकथित करते हुए, जिनपर अन्तरण किया जाएगा और न तो प्रमण्डलीय आयुक्त और न ही किसी अधीनस्थ प्राधिकारी ने याची-समिति के पक्ष में पट्टा प्रदान करने के सरकारी निर्णय को संपुष्ट करने वाले किसी अनुदेश को प्राप्त किया।

17. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि याची समिति के पक्ष में 8.2 एकड़ खास महाल जमीन का पट्टा प्रदान करने के लिए सरकारी स्तर पर कोई अन्तिम निर्णय नहीं लिया गया था। जमीनों का कब्जा सौंपने के लिए निचले स्तर पर प्रशासनिक प्राधिकारियों द्वारा तात्पर्यित रूप से प्रदान की गई अनुमति और याची-समिति से 10 प्रतिशत सलामी राशि को स्वीकार करना अनधिकृत थे और सरकार के पदाधिकारियों के ऐसे अनधिकृत कार्य याचीगण के पक्ष में उक्त जमीनों के बन्दोबस्ती के लिए उन्हें सरकार की ओर से किए गए किसी वायदे का गठन नहीं करते। सरकारी अनुमोदन की पूर्वपेक्षा में सरकार के पदाधिकारीगण द्वारा दिया गया तात्पर्यित आश्वासन, अगर कोई हो राज्य सरकार को आबद्ध नहीं करेगा।

18. अन्यथा भी, राज्य सरकार की कार्यकारी शक्ति के इस्तेमाल में याची-समिति के साथ सरकार द्वारा किए गए किसी अभिव्यक्त संविदा की अनुपस्थिति में, याची को राज्य सरकार के विरुद्ध प्रवर्तन हेतु याची को कोई अधिकार प्रोद्भूत नहीं होगा।

19. याची समिति से निश्चित रूप से खास महाल जमीनों के पट्टा प्रदान किए जाने के लिए खास महाल निर्देशिका में यथा अधिकथित प्रक्रिया की नियमावली जानना अपेक्षित था और राज्य सरकार द्वारा अनुमोदन की अनुपस्थिति में, उसे इन जमीनों पर इसके सदस्यो के घरों का निर्माण करने की अनुमति देने की कार्रवाई नहीं करनी चाहिए थी, मात्र पट्टा प्रदान किए जाने के सरकारी अनुमोदन की पूर्वपेक्षा पर। इसलिए, याचीगण औचित्यपूर्ण अपेक्षा के सिद्धांत का आलम्ब नहीं ले सकते और न ही जमीनों के संबंध में पट्टा-विलेख को निष्पादित करने के लिए प्रत्यर्थी-राज्य सरकार को निर्देश देने का कोई अनुतोष ही प्रदान किया जा सकता है।

20. तथापि चूँकि खास महाल मैनुअल के अधीन नियमावली सरकारी सम्पदा का गठन करने वाली जमीनों को व्यक्तियों या संघों को अन्य संक्रामित करने का प्रावधान करते हैं, जमीनों का पट्टा प्रदान किए जाने के लिए आवेदन पर नियमावली के अनुसार सरकार द्वारा विचार करना होगा और इसको लेकर कारण समनुदेशित करने होंगे कि आवेदक के पक्ष में पट्टा प्रदान करने के प्रस्ताव को क्यों अस्वीकार कर दिया गया।

21. जैसा कि प्रतीत होता है, याची के पक्ष में पट्टा प्रदान करने के प्रस्ताव को अस्वीकृत किया गया था, तात्पर्यित रूप से इस आधार पर कि सुसंगत समय पर व्यक्तियों और संघों को खास महाल जमीनों का पट्टा प्रदान करने पर एक प्रतिबंध था।

22. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता इस संबंध में सूचित नहीं कर सके हैं कि किस आदेश द्वारा ऐसा प्रतिबंध आरोपित किया गया था और क्या ऐसा कोई प्रतिबंध अगर कोई हो अभी तक अस्तित्व में है या वापस ले लिया गया है।

23. उपरोक्त तथ्यों पर विचार करते हुए और इस तथ्य पर भी कि सरकारी पदाधिकारीगण की कार्रवाइयों से निर्दिष्ट होकर याची समिति ने एक सद्भावनापूर्ण विश्वास धारण कर लिया था कि जमीनों का पट्टा प्रदान करने का प्रस्ताव अन्तिम रूप से सरकारी स्तर पर अनुमोदित कर लिया जाएगा और ऐसे विश्वास पर समिति और इसके सदस्यों ने बाहरी दीवारों एवं घरों के निर्माण पर काफी खर्च उठा लिया है, यह साम्या की मांग के संगत होगा कि प्रत्यर्थी-राज्य सरकार याची समिति के पक्ष में प्रस्तावित जमीनों का पट्टा प्रदान करने के प्रस्ताव पर पुनर्विचार करें और विद्यमान नियमावली के अनुसार इसपर उपयुक्त निर्णय ले और संलग्न परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कारण बताते हुए एक युक्तिसंगत एवं आख्यापक आदेश पारित करें। ऐसा निर्णय एक युक्तिसंगत समय के भीतर लिया जाना चाहिए, इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुतीकरण की तिथि से तीन महीनों के भीतर ऐसा करना श्रेयस्कर होगा। ऐसा निर्णय लिए जाने और याची को प्रभावी रूप से संसूचित किए जाने तक दिनांक 3.12.1996 का अन्तरिम आदेश बना रहेगा।

इन सम्परीक्षणों के साथ, यह रिट आवेदन निस्तारित किया जाता है।

इस आदेश की एक प्रति प्रत्यर्थी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता को दी जाय।

माननीय अमरेश्वर सहाय, न्यायमूर्ति

गोपाल साहू

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6518 वर्ष 2003. 16 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

बिहार सार्वजनिक भूमि अतिक्रमण अधिनियम, 1956–धाराएँ 2 एवं 4—अतिक्रमण हटाने के निर्देश का याची द्वारा राजस्व न्यायालयों के समक्ष प्रतिवाद किया गया–तथ्य अभिनिश्चित किए गए कि भूमि नोटिफाइड एरिया कमिटी के भीतर आती हैं–अभिनिर्धारित, नोटिफाइड एरिया कमिटी में आने वाली जमीन का कोई भी बन्दोबस्ती किसी विशिष्ट व्यक्ति के पक्ष में विधिमान्य अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता। (पैरा 8 से 10)

अधिवक्तागण.–Mr. V. Shivnath, For the Petitioner; Mr. L.K. Lal, For the State.

आदेश

पक्षों को सुना।

2. याची के विरुद्ध बिहार सार्वजनिक भूमि अतिक्रमण अधिनियम के अधीन प्रारम्भ की गई परिशिष्ट-20 में यथा निहित एक कार्यवाही विविध केस सं॰ 1/R-8/1998-99 में अंचलाधिकारी, सिमडेगा द्वारा पारित दिनांक 27.11.1998 के आदेश को याची ने इस रिट याचिका में चुनौती दी है, जिसके द्वारा सार्वजनिक भूमि, यानि प्लॉट सं॰ 764 (क्षेत्रफल 80 डिसमिल), 734 (क्षेत्रफल 2 डिसमिल), 735 (क्षेत्रफल 12 डिसमिल), 736 (क्षेत्रफल 6 डिसमिल), 724 (क्षेत्रफल 3 डिसमिल) एवं 729 (क्षेत्रफल 20 डिसमिल), अर्थात् कुल 1.23 एकड़ जमीन से याची को अतिक्रमण हटाने का एक निर्देश दिया गया है।

3. याची ने अंचलाधिकारी, सिमडेगा द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध परिशिष्ट-21 में निहित एक अपीलीय प्राधिकारी के तौर पर उपायुक्त, सिमडेगा द्वारा पारित दिनांक 8.12.2003 के आदेश को भी चुनौती दी है जिसके द्वारा उपायुक्त ने अंचलाधिकारी द्वारा पारित आदेश को संपुष्ट किया था और अपील को खारिज कर दिया था।

4. याची का समूचा दावा यह है कि प्रश्नाधीन दोनों प्लॉट यानि प्लॉट सं॰ 724 एवं 729 का बन्दोबस्त याची के साथ किया गया था और परिशिष्ट-5 में यथा निहित दिनांक 16.3.1978 के आदेश से अंचलाधिकारी द्वारा लगान भी तय करा दिए गए थे और याची इन प्लॉटों के लिए लगान का भुगतान कर रहा है। इन दोनों जमीनों के ऐसे बन्दोबस्ती को परिशिष्ट-8 में यथा निहित आदेश से अपर समाहर्ता द्वारा भी संपुष्ट कर दिया गया था।

5. याची का आगे दावा यह है कि प्लॉट संख्या 734 (क्षेत्रफल 2 डिसमिल) प्लॉट सं॰ 735 (क्षेत्रफल 12 डिसमिल) और प्लॉट सं॰ 736 (क्षेत्रफल 20 डिसमिल) का भी बन्दोबस्त किया गया था और तत्पश्चात रिट याचिका के परिशिष्ट-12 द्वारा 12.12.1997 को अपर समाहर्त्ता द्वारा संपुष्ट भी कर दिया गया था। जहाँ तक प्लॉट संख्या 764 का सम्बन्ध है, याची दावा करता है कि न्यायिक दण्डाधिकारी, सिमडेगा द्वारा परिवाद केस सं॰ 6/1992 में पारित दिनांक 14.1.1983 के एक निर्णय में, न केवल याची को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 447 के अधीन आरोपों से मुक्त कर दिया गया था, अपितु, न्यायिक दण्डाधिकारी ने उक्त प्लॉट के ऊपर उसके कब्जे को भी संपुष्ट कर दिया था और इस तरीके से, याची दावा करता है कि वह पूर्वोक्त प्लाटों के अधिकारपूर्ण स्वामी है। याची के अनुसार, इन प्लॉटों के जमीन सार्वजनिक जमीन नहीं है, और, इसलिए, अंचलाधिकारी ने अवैधानिक रूप से बिहार सार्वजनिक भूमि अतिक्रमण अधिनियम के अधीन एक कार्यवाही प्रारम्भ की है और अभिकथित अतिक्रमण हटाने का निर्देश दिया है। अपीलीय प्राधिकारी, यानि उपायुक्त के आदेश को भी चुनौती दी गई है इस आधार पर कि अपने दिमाग का इस्तेमाल किए बगैर, उन्होंने अपील को खारिज कर दिया है।

6. प्रति-शपथपत्र और उसके साथ अनुलग्न दस्तावेजों में भी किए गए प्रकथनों से, यह प्रतीत होता है कि विनियमों के अनुसार, उपर निर्दिष्ट समूचा प्रश्नाधीन प्लॉट सिमडेगा जिले में ग्राम-सलडेगा के थाना सं॰ 117 के भीतर आता है और परिशिष्ट-B में यथा निहित दिनांक 20.12.1971 की अधिसूचना से बिहार सरकार ने ग्राम-सलडेगा के थाना सं॰ 117 के भीतर आने वाली जमीनों के

सिमडेगा नोटिफाइड एरिया कमिटी के भीतर होना घोषित किया। यह कहा गया है कि बिहार खास महाल मैनुअल, 1953 के अधीन नोटिफाइड एरिया कमिटी के भीतर आने वाली जमीन को केवल पट्टे पर दिया जा सकता है और इसका बन्दोबस्त नहीं किया जा सकता है, और चूँकि प्रश्नाधीन प्लॉट नोटिफाइड एरिया कमिटी के अन्तर्गत आते थे इसलिए केस सं॰ 10R-15/89-90 में दिनांक 6.7.1998 के आदेश द्वारा अपर समाहर्त्ता, गुमला ने प्लॉट सं॰ 734, 735 एवं 736 के संबंध में याची के पक्ष में किए गए बन्दोबस्ती को उचित ही रद्द कर दिया, इस आधार पर कि उक्त प्लॉट गैर-मजरूआ मालिक जमीन था और यह सिमडेगा नोटिफाइड एरिया कमिटी के भीतर था और, इस प्रकार उन जमीनों का विधि के अधीन किसी विशिष्ट व्यक्ति के साथ बन्दोबस्त नहीं किया जा सकता था।

7. प्रत्यर्थीगण के अनुसार, नोटिफाइड एरिया कमिटी के भीतर आने वाली जमीन में कोरकार नहीं बनाया जा सकता और छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 64 के अनुसार, कोरकार जमीन का बन्दोबस्त केवल उसी ग्राम या समाश्रित ग्रामों के भूमिहीन मजूदरों या जोतदारों के साथ किया जा सकता है, जबकि याची ग्राम–रवानी का एक अधिभोगी रैयत है और वह व्यवसाय से एक वकील है।

8. आक्षेपित आदेश में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इस तथ्य को छुपा करके कि प्रश्नाधीन जमीन नोटिफाइड एरिया कमिटी के भीतर पड़ती है। याची भूमि का अपने पक्ष में बन्दोबस्त करने में सफल हुए परन्तु ऐसे अवैधानिक बन्दोबस्ती को बाद में इसे रद्द करने में सक्षम प्राधिकारीयों द्वारा रद्द कर दिया गया।

9. अलग-अलग पक्षों के मामलों और उनकी ओर से प्रस्तुत तर्कों पर विचार करते हुए, मैं पाता हूँ कि प्रकटत: प्रति-शपथपत्र के परिशिष्ट-B से प्रतीत होता है कि प्रश्नाधीन प्लॉट सिमडेगा नोटिफाइड एरिया कमिटी के भीतर आते है और इस प्रकार, उन जमीनो को कोई अंचलाधिकारी द्वारा या एल॰ आर॰ डी॰ सी॰ द्वारा याची समेत किसी विशिष्ट व्यक्ति के पक्ष में बन्दोबस्त नहीं किया जा सकता था।

10. मैं आक्षेपित आदेशों में कोई अवैधानिकता या अनियमितता नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, कोई गुण नहीं पाए जाने पर, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

माननीय डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति

लोकमान्य प्रसाद

बनाम

जमीला खातून एवं अन्य

रिट याचिका (C) संख्या 5742 वर्ष 2005. 16 सितम्बर, 2009 को विनिश्चित।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 152 सह-पठित आदेश 20, नियम 6 एवं 9—डिक्री में संयोजन–अगर डिक्री ने वाद-परिसर की सीमा और अन्य विशिष्टियों को निर्दिष्ट करके इसके वर्णन को उल्लिखित करने में अनदेखी किया है यद्यपि यह मूल निर्णय में उल्लिखित है यह एक आकस्मिक विलोप है जिसकी परिशुद्धि निष्पादक न्यायालय द्वारा की जा सकती है। (पैरा 15)

अधिवक्तागण.–M/s Manjul Prasad, Vijay Kr. Sharma, For the Petitioner; Mr. S.K. Sharma, For the Respondents.

डी॰ जी॰ आर॰ पटनायक, न्यायमूर्ति.–विविध केस संख्या 6 वर्ष 2005 में पारित दिनांक 7.9.2005 के आदेश (परिशिष्ट-7) को इस रिट आवेदन में चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा सिविल

प्रक्रिया संहिता की धारा 152 के अधीन प्रत्यर्थीगण/डिक्रीधारक द्वारा दाखिल दिनांक 25.8.2005 के आवेदन, जो निष्कासन वाद सं॰ 20 वर्ष 1998 में पारित डिक्री में वाद भूमि के वर्णन से बाहरी दीवारों को जोड़ने के लिए किया था, को अनुज्ञात कर दिया गया था।

याची ने निर्णीत-ऋणी होने के नाते प्रार्थित निबंधनों में डिक्री के संशोधन के लिए डिक्री-धारक के आग्रह का प्रतिवाद किया था इस आधार पर कि धारा 152 सि॰ प्र॰ सं॰ के अधीन शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए निष्पादक न्यायालय डिक्री में वाद भूमि से बाहरी दीवार में कुछ जोड़ने या समाविष्ट करने का कार्य नहीं कर सकता क्योंकि यह लिपिकीय/गणितीय त्रुटि की परिधि के भीतर नहीं आता।

2. विवाद के बेहतर मूल्यांकन के लिए संक्षेप में मामले की पृष्ठभूमि को निर्दिष्ट करना आवश्यक होगा।

प्रत्यर्थीगण/डिक्रीधारकों ने निष्कासन के लिए निष्कासन वाद संख्या 20 वर्ष 1998 द्वारा वर्तमान याची के विरुद्ध एक वाद दाखिल किया दिनांक 19.2.2003 की डिक्री द्वारा वादीगण/डिक्री धारकों के पक्ष में वाद को विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री किया गया था।

याची/निर्णीत-ऋणी द्वारा अपील में विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को चुनौती दी गई थी जिसे अपीलीय न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था। इस न्यायालय के समक्ष याची द्वारा दाखिल द्वितीय अपील को भी 12.5.2009 को खारिज कर दिया गया था।

द्वितीय अपील के लम्बित रहने के दौरान, प्रत्यर्थीगण/डिक्रीधारकों ने निष्पादन केस सं॰ 1 वर्ष 2005 के माध्यम से वाद परिसर के कब्जे प्रदान करने के लिए और डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन दाखिल किया था।

3. 11.8.2005 को याची/निर्णीत-ऋणी ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन एक अभ्यापति याचिका दाखिल की यह कथन करते हुए कि वाद परिसर के विनिर्दिष्ट वर्णन की अनुपस्थिति के कारण डिक्री निष्पादन योग्य नहीं था। अभ्यापति को विविध केस सं॰ 4 वर्ष 2005 के तौर पर दर्ज किया गया था। डिक्रीधारकों ने इसका प्रत्युत्तर भी दाखिल किया, परन्तु अभ्यापति पर कोई अन्तिम आदेश पारित नहीं किया गया था।

याची की अभ्यापति के अपने प्रत्युत्तर में, डिक्री-धारकों ने तर्क रखा था कि वाद-सम्पत्ति का वर्णन वाद भूमि के वाद-पत्र में पर्याप्त रूप से उल्लिखित किया गया था, परन्तु अनवधानता के कारण वाद-भूमि का वर्णन एक विनिर्दिष्ट अनुसुची के द्वारा डिक्री में सम्मिलित नहीं किया जा सका था और यह विलोप डिक्री के संशोधन द्वारा सुधारा जा सकता था।

4. याची/निर्णीत-ऋणी ने 3.9.2005 को एक अन्य आवेदन दाखिल किया, यह तर्क देते हुए कि चूँकि डिक्रीधारकों ने स्वयं इस तथ्य को माना है कि वाद परिसर के वर्णन को वाद-पत्र में कथित नहीं किया गया था, अत: निष्पादन कार्यवाही को खारिज कर देना चाहिए।

डिक्रीधारकों ने सि॰ प्र॰ सं॰ की धारा 152 के अधीन एक नया आवेदन दाखिल किया, जिसे विविध केस सं॰ 6 वर्ष 2005 के तौर पर दर्ज किया गया था। आक्षेपित आदेश द्वारा, निष्पादक न्यायालय ने डिक्री में वाद परिसर के वर्णन को जोड़ने के लिए डिक्रीधारकों के आग्रह को अनुज्ञात कर दिया था।

5. आक्षेपित आदेश पर प्रहार करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री मंजूल प्रसाद ने इसपर जोर दिया कि सि॰ प्र॰ सं॰ की धारा 152 के प्रावधान एक द्वितीय विचार द्वारा डिक्री में सुधार करने की कोई शक्ति निष्पादक न्यायालय में निहित नहीं करती थी, क्योंकि न्यायालय की शक्ति केवल गणितीय/लिपिकीय त्रुटि या संयोगवश भूल के कारण डिक्री में हुई त्रुटि के सुधार तक ही सीमित है और उन मामलों तक जहाँ डिक्री से ही यह स्पष्ट है कि जो करना न्यायालय का आशय था। वह डिक्री में संयोगवश हुई चूक के कारण अनजाने में विलोपित हो गया था।

विद्वान अधिवक्ता आगे यह भी जोड़ते हैं कि एक डिक्री भी, जैसा कि कई निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है, किसी अनुतोष को घटा-बढ़ा नहीं सकती सिवाय उसके जिसका प्रावधान निर्णय में किया गया है। विद्वान अधिवक्ता आगे यह स्पष्टीकृत करते हैं कि डिक्रीधारकों/प्रत्यर्थीगण ने स्वीकार किया है कि वाद-परिसर के विनिर्दिष्ट वर्णन को एक पृथक अनुसूची के द्वारा वाद-पत्र में उल्लिखित नहीं किया गया है। वर्णन को केवल विवादित परिसर की सटीक बाहरी सीमा को शामिल करना चाहिए था, अपितु इसकी होल्डिंग संख्या और प्लॉट संख्या एवं अन्य आवश्यक विशिष्टियों को निर्दिष्ट करके इसकी विनिर्दिष्ट पहचान को भी सम्मिलित करना चाहिए था। वाद-पत्र में ऐसे विनिर्दिष्ट वर्णन की अनुपस्थिति में, विचारण न्यायालय की डिक्री भी वाद-परिसर के किसी वर्णन को सम्मिलित नहीं कर सकी। इस प्रकार, डिक्री को संभवत: निष्पादित नहीं किया जा सकता। डिक्री की परिशुद्धि, जैसा कि निष्पादक न्यायालय द्वारा किए जाने को प्रस्तावित है याची/निर्णीत ऋणी को गंभीर हानि कारित करेगी।

अपने तर्क पर जोर देने के लिए विद्वान अधिवक्ता ने **जयलक्ष्मी कोल्हो बनाम ओसवाल्ड जोसेफ कोल्हो** के मामले [2001(1) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ (एस॰ सी॰)577 में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय एवं **के॰ राजामौली बनाम ए॰ वी॰ के॰ एन॰ स्वामी** के मामले [2001(2) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ (एस॰ सी॰)156] में एक अन्य निर्णय एवं **मेसर्स सेंचुरी टेक्सटाईल इण्डस्ट्रीज लिमिटेड बनाम दीपक जैन एवं एक अन्य** [2009(3) JLJ 23 (SC)] : [2009(3) जे॰ एल॰ जे॰ आर॰ (एस॰ सी॰)153] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के हाल के निर्णय पर भरोसा किया।

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण/डिक्रीधारक के विद्वान अधिवक्ता ने याची द्वारा रखे गए सभी आधारों को भ्रामक और दिग्भ्रमित करने वाला बताते हुए इनसे इन्कार किया और इनपर प्रश्न उठाया। अधीनस्थ न्यायालय के आक्षेपित आदेश को समर्थन देते हुए, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह वह मामला नहीं है जहाँ वाद-पत्र में वाद-परिसर का कोई विवरण ही नहीं दिया गया था। अपितु, वाद-पत्र के पैरा-1 में इसकी होल्डिंग सं॰ और साथ-साथ इसकी विनिर्दिष्ट बाहरी-दीवार को निर्दिष्ट करके वाद परिसर का विवरण पर्याप्त रूप से दिया गया है। वाद-परिसर का विवरण देते हुए वाद-पत्र के निचले भाग में एक सामान्य अनुसूची को विनिर्दिष्ट रूप से जोड़ने में हुआ एक विलोप, अगर कोई है, निर्णीत-ऋणी को किसी प्रकार की हानि कारित नहीं करता। विचारण न्यायालय की डिक्री वाद-परिसर के विवरण को उल्लिखित करती है, जैसा कि वाद-पत्र के पैरा-1 में दिया गया है, और ऐसे विवरण में कोई ऐसी अस्पष्टता या संदिग्धता नहीं है, जिससे कि डिक्री का निष्पादन असंभव हो जाय। चूँकि निष्पादन कार्यवाही के जारी रहने के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन अपने आवेदन के माध्यम से निर्णीत-ऋणी द्वारा अभ्यापति उठाई गई थी, अत: प्रत्यर्थीगण/डिक्रीधारकों ने सावधानीपूर्वक वाद-पत्र के दिए गए विवरण और निर्णय से अभिलिखित विवरण के अनुसार डिक्री में वाद-परिसर के विनिर्दिष्ट विवरण को जोड़ने के लिए एक याचिका दाखिल की थी, यद्यपि, ऐसी प्रार्थना सटीक रूप से आवश्यक नहीं थी, क्योंकि इसमें कोई योग या परिशुद्धि किए बगैर भी डिक्री निष्पादन योग्य हो सकती थी।

विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि यद्यपि, लिखित कथन में याची/प्रतिवादी/निर्णीत-ऋणी ने वाद-पत्र के पैरा-1 में यथा कथित वाद-परिसर की बाहरी दीवार से इन्कार किया है और इसपर विवाद किया है, परन्तु इसी प्रतिवादी ने विचारण में अपनी प्रति-परीक्षा के पैरा 64 पर, वाद-पत्र में यथा उल्लिखित वाद-परिसर की बाहरी दीवार को स्वीकार किया था। इस प्रकार, याची/प्रतिवादी/निर्णित-ऋणी वाद-परिसर की विवरण में किसी अस्पष्टता या संदिग्धता के आधार पर कोई हानि झेलने का दावा नहीं कर सकता था, क्योंकि वाद-परिसर की पहचान के संबंध में कोई विवाद नहीं था, जो निष्कासन वाद, और साथ-साथ निष्पादन कार्यवाही में डिक्री का विषय-वस्तु था।

विद्वान अधिवक्ता यह भी जोड़ते हैं कि अन्यथा भी विचारण न्यायालय, जिसने निष्पादन वाद में निर्णय एवं डिक्री पारित किया है और निष्पादन न्यायालय एक है और एक ही न्यायालय है और डिक्री को संशोधित करने की शक्ति सि॰ प्र॰ सं॰ की धारा 151 के साथ पठित धारा 153A के प्रावधानों के अधीन न्यायालय में निहित है।

7. यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि यद्यपि याची ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष एक द्वितीय अपील दाखिल की थी, परन्तु निर्णीत-ऋणी/अपीलार्थी द्वारा द्वितीय अपील में कोई विवाद नहीं खड़ा किया गया था उस आक्षेपित आदेश के संबंध में जिसके द्वारा डिक्री की परिशुद्धि के आग्रह को अनुज्ञात किया गया था। द्वितीय अपील को सारतः खारिज कर दिया गया था।

8. प्रतिद्वंदी निवेदनों से, याची/निर्णीत ऋणी द्वारा यथा उठाया गया विवाद मूलतः यह प्रतीत होता है कि डिक्री से वाद-परिसर की बाहरी सीमा को निर्दिष्ट करके इसके विनिर्दिष्ट वर्णन को जोड़कर निष्पादक न्यायालय ने गंभीर त्रुटि कारित की थी और अपनी अधिकारिता से आगे जाकर कार्य किया था, क्योंकि सि॰ प्र॰ सं॰ की धारा 152 के प्रावधानों के अधीन ऐसी शक्तियाँ निष्पादक न्यायालय में निहित नहीं है।

9. जो अविवादित तथ्य उद्भूत होते हैं। निम्नांकित रूप से है:–

(a) वाद-पत्र के पैरा-1 में, वाद-परिसर का वर्णन निम्नांकित रूप में दिया गया है:

''यह कि चतरा शहर में मुख्य चतरा बाजार के निकट मुख्य पी० डब्ल्यू० डी० सड़क के पूर्वी छोर पर वार्ड सं० 10 में, वादीगण की तीन छोटी और एक बड़ी पक्की दुकान पर स्वामित्व और कब्जा है और इसमें तीन काफी छोटी दुकाने एवं एक बड़ी दुकान सम्मिलित है जिनमें विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न दरों पर मासिक किरायों पर लगाया गया है। प्रतिवादी लोकमान्य प्रसाद 700/- रुपए मासिक किराए पर वादीगण के अधीन सबसे बड़ी दुकान में अपनी इच्छा से एक किराएदार है जो उत्तर में वादीगण की तीन छोटी दुकानें दक्षिण में किशोरी प्रसाद अग्रवाल की दुकान, पूर्व में वादीगण के आंगन और बरामदे और पश्चिम में पी० डब्ल्यू० डी० सड़क से आबद्ध है। वाद-पत्र में वाद-परिसर को वर्णित करने वाली कोई पृथक अनुसूची नहीं है।

(b) डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन में डिक्रीधारक द्वारा दिया गया वाद परिसर का वर्णन वहीं है जो वाद-पत्र के पैरा-1 में उल्लिखित है।

(c) यद्यपि, प्रतिवादी/निर्णीत-ऋणी ने अपने लिखित कथन में वाद-पत्र के पैरा-1 में वाद-परिसर के दिए गए विवरण को इन्कार किया है और इसे विवादित किया है और सीमा का एक भिन्न वर्णन देने का विकल्प चुना है, परन्तु विचारण में प्रतिवादी/किराएदार ने अपनी प्रति-परीक्षा के अनुक्रम में वाद-पत्र के पैरा 1 में यह उल्लिखित वाद परिसर के वर्णन को स्वीकार किया है।

(d) यद्यपि, वाद-परिसर से प्रतिवादी/निर्णीत-ऋणी के निष्कासन के लिए वादीगण/प्रत्यर्थीगण के पक्ष में डिक्री पारित की गई थी, परन्तु डिक्री में वाद-परिसर की सीमा उल्लिखित नहीं की गई है।

(e) वादीगण डिक्रीधारकों के डिक्री में सीमा को जोड़ा जाना इप्सित किया है उसी प्रकार से जैसा यह वाद-पत्र के पैरा-1 में कथित की गई है और विचारण न्यायालय के निर्णय में निर्दिष्ट की गई है।

(f) विचारण न्यायालय एवं निष्पादक न्यायालय एक ही न्यायालय है।

10. उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, यह देखा जाना होगा,–

(i) क्या वाद-परिसर की सीमा को डिक्री में उल्लिखित करने की लोप एक लिपिकीय/गणितीय त्रुटि कहा जा सकता है जिसकी परिशुद्धि डिक्री में की जा सकती है?

(ii) क्या, विद्वान अधीनस्थ न्यायालय को डिक्री में ऐसी त्रुटि की परिशुद्धि करने की अधिकारिता है?

(iii) क्या परिशुद्धि ने याची/प्रतिवादी निर्णीत-ऋणी को हानि कारित की है।

11. ऊपर यथा सम्परीक्षित स्वीकृत तथ्यों से, यह प्रतीत होता है कि वाद-परिसर का वर्णन वाद-पत्र में न केवल इसकी अवस्थिति को निर्दिष्ट करता अपितु इसकी विनिर्दिष्ट सीमाओं को भी निर्दिष्ट करके उल्लिखित की गई है। किराएदार/प्रतिवादी/याची ने अपनी प्रति-परीक्षा में वाद-परिसर के उसी वर्णन को माना है और स्वीकार किया है, जैसा कि वाद-पत्र में कहा गया है। यह प्रकट है कि पक्षों के बीच वाद-परिसर की पहचान के संबंध में कोई अस्पष्टता, अनिश्चितता या असंदिग्धता नहीं है और विचारण न्यायालय द्वारा अपने निर्णय में इस तथ्य को ध्यान में रखा गया है।

विचारण न्यायालय के निर्णय में अभिलिखित निष्कर्षों से यह भी प्रतीत होता है कि वाद-परिसरों से प्रतिवादी/निर्णीत-ऋणी की बेदखली के लिए मूलत: डिक्री पारित की गई थी जिससे इसकी सीमाओं के साथ वर्णन मौजूद था, जैसा कि वाद-पत्र में अन्तर्विष्ट है। डिक्री, यद्यपि निर्णय के तत्समय तैयार की गई थी, परन्तु इसने निर्णय में उल्लिखित इसकी सीमाओं को निर्दिष्ट करके वाद-परिसर के वर्णन को उल्लिखित करने में विलोप कर दिया है। चूँकि डिक्री को निष्पादित किया जाना था, अत: वादीगण/डिक्रीधारकों ने वाद-परिसर की सीमाओं को निर्दिष्ट करते हुए वाद परिसर के वर्णन को जोड़ने के लिए डिक्री की परिशुद्धि इप्सित किया था।

12. यह प्रकट है कि डिक्री में वाद-परिसर की सीमाओं को उल्लेख करने में विफलता अनजाने में की गई लिपिकीय भूल के कारण थी। यह वह मामला नहीं है जहाँ डिक्रीधारक ने डिक्री में परिशुद्धि की प्रार्थना करके वाद-परिसर के वर्णन को परिवर्तित करना या प्रतिस्थापित करना उस वर्णन के बदले इप्सित किया था जिसे मूलत: दिया गया था और विचारण के दौरान प्रतिवादी/निर्णीत ऋणी द्वारा सुसंगत रूप से बरकरार रखा गया था और माना भी गया था। जैसा कि यह प्रतीत होता है, वाद-परिसर की सीमाओं को निर्दिष्ट करके डिक्री में इसके वर्णन के अंतस्थापन द्वारा प्रतिवादी/निर्णीत-ऋणी को कोई प्रतिकूलता कारित नहीं की गई है।

13. सि॰ प्र॰ सं॰ की धारा 152 के अधीन प्रावधानों की परिधि को लेकर कोई विवाद नहीं है जो अधिकथित करती है कि न्यायालय की शक्ति केवल गणितीय/लिपिकीय त्रुटि या आकस्मिक चूक के कारण उद्‌भूत त्रुटि की परिशुद्धि करने तक सीमित है। इसी प्रकार, विधि की इस प्रतिपादना को लेकर कोई विवाद नहीं हो सकता कि सि॰ प्र॰ सं॰ की धारा 152 के अधीन शक्तियों के इस्तेमाल में एक डिक्री निष्पादित करने वाला न्यायालय किसी अनुतोष का जोड़ या घटाव नहीं कर सकता सिवाय उनके जिसका निर्णय में प्रावधान किया गया है और इस प्रतिपादना को लेकर भी कोई विवाद नहीं हो सकता कि निष्पादक न्यायालय के लिए यथा की गई डिक्री को निष्पादित करना आवश्क है और यह डिक्री से आगे नहीं जा सकता। तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि निष्पादक न्यायालय का डिक्री वास्तविक प्रभाव का पता लगाने का दायित्व नहीं है।

14. भवन वाजा बनाम सोलंकी मानसंग के मामले **[ए॰ आई॰ आर॰ 1972 एस॰ सी॰ 1371]** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नांकित निबंधनो में निष्पादक न्यायालय की शक्तियों के कार्य-क्षेत्र का स्पष्टीकरण दिया है:–

''यह सही है कि निष्पादक न्यायालय निष्पादन के अधीन डिक्री के आगे नहीं जा सकता। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इसका उस डिक्री के वास्तविक प्रभाव

का पता लगाने का कोई दायित्व नहीं है। एक डिक्री का गठन करने के लिए, यह कर सकता है और यथोचित मामलों में, इसको विचार में रखना चाहिए उन अभिवाकों को और उनके कार्यवाहियों को भी जिनके परिणामतः डिक्री सामने आई है। एक डिक्री में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ का पता लगाने के लिए न्यायालय को प्रायः उन परिस्थितियों से आकलन करना होता है जिनके अधीन उन शब्दों का इस्तेमाल किया गया है। यह निष्पादन न्यायालय का सरल रूप से दायित्व है और अगर न्यायालय इस दायित्व का निर्वहन करने में विफल रहता है तो इसे उसमें निहित अधिकारिता का इस्तेमाल करने में विफल माना जाएगा।''

15. इसे नोट किया जाए की सि॰ प्र॰ सं॰ के आदेश 20 के नियम-6 के प्रावधानों के अधीन, डिक्री को निर्णय के सुसंगत तैयार करना होता है और इसमें सभी आवश्यक विशिष्टियों को अन्तर्विष्ट करना होता है, जैसा कि नियम में आवश्यक है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 20, नियम 9 अधिकथित करता है कि जहाँ डिक्री अचल सम्पत्ति की वसूली के लिए है, इसमें ऐसी सम्पत्ति का विवरण होगा जो इसे पहचानने के लिए पर्याप्त हो और जहाँ ऐसी सम्पत्ति की पहचान सीमाओं द्वारा या बन्दोबस्ती या सर्वेक्षण के अभिलेख में इसके संख्या क्रमांक द्वारा की जा सकती हो, डिक्री ऐसी सीमा या संख्या को विनिर्दिष्ट करेगी। वर्तमान मामले में, जैसा कि प्रतीत होता है, न्यायालय ने वाद-परिसर की सीमाओं या अन्य विशिष्टयों को निर्दिष्ट करके इसका विवरण देने में अनदेखी की है यद्यपि यह निर्णय के एक भाग में उल्लिखित है, इसके प्रकटत: एक आकस्मिक विलोप होने के कारण इसकी सीमा को निर्दिष्ट करके, जैसा कि निर्णय के मूल में उल्लिखित है, वाद-परिसर के वर्णन को जोड़कर डिक्री में ऐसी त्रुटि का सुधार करना निश्चित रूप से सि॰ प्र॰ सं॰ की धारा 152 के प्रावधानों के अधीन निष्पादक न्यायालय की सक्षमता और अधिकारिता के भीतर था। इस प्रकार, निष्पादक न्यायालय ने डिक्रीधारकों द्वारा यथा प्रार्थीत संशोधन को अनुज्ञात करके कोई त्रुटि कारित नहीं की थी। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश किसी अवैधानिकता या अनैतिकता से ग्रस्त नहीं है जिसे इस न्यायालय का हस्तक्षेप वांछित हो।

16. ऊपर इंगित कारणो से, इस रिट आवेदन में कोई गुण नहीं है और 2,000/- रुपए के व्यय के साथ यह खारिज किया जाता है। परिणामत: स्थगन का अन्तरिम आदेश निष्प्रभावी किया जाता है।

माननीया ज्ञान सुधा मिश्रा, मुख्य न्यायाधीश

श्री कान्त मिश्र

बनाम

झारखण्ड राज्य एवं अन्य

अवमान केस (सिविल) सं॰ 847 वर्ष 2007. 9 अक्टूबर, 2009 को विनिश्चित।

विश्वविद्यालय विधि—UGC वेतनमान के आधार पर वेतनमान के अंतर के अधिशेषों का भुगतान न किए जाने के लिए सिद्दू कानू मुर्मु विश्वविद्यालय, दुमका, के विरुद्ध अवमान याचिका–अभिनिर्धारित, अवमान कार्यवाही का एक बहुत ही सीमित दायरा है एवं इसलिए, अवमान के माध्यम से इसके बारे में मुख्य विवाद कि UGC वेतनमान की दर पर याची या इसी प्रकार की स्थिति वाले व्यक्ति के पक्ष में किस प्रकार से निर्मुक्त किया जाना है, उठाया नहीं जा सकता–विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष एक पुनर्विलोकन दाखिल करने की स्वतंत्रता के साथ अवमान याचिका खारिज की गयी। (पैरा 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–M/s D.K. Dubey, S.S. Choudhary, For the Petitioner; Mr. A. Allam, For the State; Mr. S. Piprewal, For the University.

आदेश

यह अवमान याचिका दिनांक 19.4.2007 को डब्ल्यू० पी० (एस०) सं० 1164 वर्ष 2007 में पारित उस आदेश का अनुपालन नहीं करने का अभिकथन करते हुए दाखिल की गयी है। जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश ने याची को सिद्दू कानू मूर्मू विश्वविद्यालय, दुमका, सहित प्रत्यर्थियों के समक्ष एक अभ्यावेदन जिसमें UGC के वेतनमान के आधार पर वेतन के अंतर के बकाये के भुगतान का दावा कर रहा था, दाखिल करने की अनुमति दी थी, विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थियों को याची के दावे के संबंध में दिये गये अभ्यावेदन पर ऐसे अभ्यावेदन प्राप्त होने की तिथि से छः सप्ताह के अंदर एक युक्तिसंगत आदेश पारित करने का निर्देश दिया था और आगे यह निर्देश दिया था कि यदि याची द्वारा दावा की गई राशि भुगतान योग्य पायी जाती है तब उसे इसका भुगतान किया जाना चाहिए और ऐसा करने में विफल होने पर वह ब्याज के तौर पर और अधिक राशि पाने का हकदार होगा।

2. याची के अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया था कि विश्वविद्यालय ने अभ्यावेदन पर याची के पक्ष में निर्णय दिया है और उसे UGC के वेतनमान की दर से वेतन के अंतर के बकाये के भुगतान का हकदार पाया गया था और फिर भी याची को भुगतान नहीं किया गया है।

3. स्पष्टतया, इससे विश्वविद्यालय के अधिवक्ता से उत्तर पाने का एक हेतुक उत्पन्न हुआ जिन्होंने कथन किया कि यद्यपि याची UGC द्वारा निर्धारित स्वीकृत वेतनमान की दृष्टि में दावा किये गये बकाये का भुगतान पाने का हकदार है, फिर भी उसको भुगतान नहीं किया जा सकता है क्योंकि राज्य द्वारा कोष निर्मुक्त नहीं किया गया है और इस तरह गेंद प्रत्यर्थी-राज्य के पाले में आ गयी कि यह भुगतान नहीं करने का कारण स्पष्ट करें।

4. प्रत्यर्थी राज्य का अपना ही स्पष्टीकरण है और यह कथन किया गया था कि राज्य तब तक भुगतान नहीं कर सकता जबतक कि उसे केंद्र सरकार और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से अनुदान प्राप्त न हो जाए ताकि वह UGC के वेतन के दर से समस्त शिक्षकों को भुगतान निर्मुक्त कर सके।

5. इस प्रकार सिद्धान्ततः, यद्यपि सिद्दू कान्हू विश्वविद्यालय जहाँ याची अपनी सेवा दे रहा था, ने अभ्यावेदन पर याची के पक्ष में निर्णय दिया है, फिर भी विश्वविद्यालय द्वारा याची को भुगतान निर्मुक्त नहीं किया जा सकता है और याची अभिकथन करता है कि कुछ सेवा निवृत्त शिक्षकों के पक्ष में भुगतान निर्मुक्त किया जा रहा है जबकि याची को UGC के वेतनमान के मुताबिक वेतन के अंतर के बकाये का भुगतान नहीं किया जा रहा है।

6. उपर्युक्त तथ्य स्पष्टतः दर्शाता है कि यह विवाद कि क्या भुगतान सिर्फ कुछ या सारे शिक्षकों को निर्मुक्त किया जा सकता है और भुगतान का ढंग और तरीका क्या होगा अर्थात् क्या समस्त बकाये का एक साथ अथवा अंशतः भुगतान किया जाएगा, ऐसा मामला था जिसे प्रधान पीठ द्वारा निपटाया जाना था जिसने याची की रिट याचिका निपटायी थी। चूँकि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा उक्त विवाद संबोधित नहीं किया गया है क्योंकि याची को अभ्यावेदन दाखिल करने का निर्देश देते हुए

विश्वविद्यालय की ओर मोड़ दिया गया था, यह प्रश्न कि UGC और केन्द्र सरकार द्वारा कोष की निर्मुक्ति की अनुपस्थिति में याची को इसे पाने का हकदार होने पर भी, भुगतान किस प्रकार किया जाएगा, अंतत: कानूनी दाँव-पेंच में उलझा गया है जिसे अवमानना की याचिका द्वारा नहीं सुलझाया जा सकता है क्योंकि ऐसा उल्लिखित करना शायद ही जरुरी है कि अवमानना कार्यवाही का विस्तार अत्यधिक सीमित है और इस प्रकार अवमानना की याचिका के जरिए इस मुख्य विवाद कि याची अथवा समस्थित व्यक्ति के पक्ष में UGC के वेतनमान की दर से भुगतान कैसे निर्मुक्त किया जाए, को अवमानना कार्यवाही द्वारा संबोधित नहीं किया जा सकता है। अत: इस तथ्य की दृष्टि में कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने समस्त भुगतान निर्मुक्त नहीं किया है जिसे UGC के वेतनमान के आधार पर वेतन पाने के लिए पात्र शिक्षकों को संवितरित किया जाना है, विश्वविद्यालय और प्रत्यर्थी-राज्य के विरुद्ध इस चरण पर अवमानना का मामला निर्मित नहीं होता है। इस चरण पर याची के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वस्तुत: कोष राज्य के पक्ष में निर्मुक्त किया जा चुका है लेकिन इसे समरुप और नियत तरीके से संवितरित नहीं किया जा रहा है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अवमान याचिका के जरिए इसका विरोध करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

7. अत: अवमान याचिका पोषणीय अभिनिर्धारित नहीं की जा सकती है और इसलिए इस चरण पर इसे अस्वीकार किया जाता है। फिर भी, याची को विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण हेतु याचिका दाखिल करने की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है जहाँ उसे यह स्पष्ट करने की स्वतंत्रता होगी कि केन्द्र सरकार और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा समस्त भुगतान निर्मुक्त नहीं किए जाने के तथ्य की दृष्टि में याची को भुगतान का पात्र पाये जाने पर भुगतान का ढंग और तरीका क्या होगा और यदि भुगतान, जिसे विश्वविद्यालय के पक्ष में निर्मुक्त किया गया है, का संवितरण समरुप मानदंड के आधार पर नहीं बल्कि चुनिंदा तरीके से किया गया है, तब उक्त प्रश्न को पुनर्विलोकन याचिका द्वारा मुख्य पीठ के समक्ष संबोधित किया जा सकता है।

8. इस प्रकार अवमान याचिका इसमें ऊपर दर्शाये स्वतंत्रता के साथ खारिज की जाती है।